व्यावहारिक हिन्दी प्रयोग

(Applied Functional Hindi)

कामेश्वर यादव

व्यावहारिक हिन्दी प्रयोग

व्यावहारिक हिन्दी प्रयोग
(Applied Functional Hindi)

कामेश्वर यादव

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5641-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

'बोलचाल की भाषा' को समझने के लिए 'बोली' (Dialect) को समझना जरूरी है। 'बोली' उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है, जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है। विश्व में जब किसी जन-समूह का महत्त्व किसी भी कारण से बढ़ जाता है तो उसकी बोलचाल की बोली 'भाषा' कही जाने लगती है, अन्यथा वह 'बोली' ही रहती है। स्पष्ट है कि 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं, क्योंकि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है।

जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारस्परिक सम्पर्क होता है, तब बोल चाल की भाषा का प्रसार होता है। आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुई आपसी व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्यभाषा' के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

आमतौर से सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के कई रूप उभर कर आते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, ये रूप प्रमुखत: चार आधारों पर आधारित हैं—इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। इनमें प्रयोग क्षेत्र सबसे विस्तृत है। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारम्पारिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का

प्रसार होता है। पर किसी भी भाषा की भाँति यह परिवर्तनशील है, समकालीन, प्रयोगशील तथा भाषा का आधुनिकतम रूप है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय-बोध**	**1**
	भाषा की परिभाषा	2
	हिन्दी भाषा	4
	भाषा का माध्यम	5
	हिन्दी की उपभाषाएँ	7
	राजस्थानी हिन्दी	13
	दक्खिनी हिन्दी	15
	पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी की तुलना	17
	मानक हिन्दी	19
	मानक हिन्दी के स्वरूप एवं प्रकार	20
2.	**हिन्दी भाषा का व्यावहारिक रूप**	**24**
	बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी	24
	मानक भाषा के रूप में हिन्दी	26
	सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी	27
	राजभाषा	28
	राष्ट्रभाषा	28
	सम्पर्क भाषा–परिभाषा एवं सामान्य परिचय	29

मातृभाषा के रूप में हिन्दी 31
राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के रूप में हिन्दी 41
राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी 42
राजभाषा के रूप में हिन्दी 45
राजभाषा हिन्दी की विशेषताएँ 45
3. हिन्दी कम्प्यूटिंग एवं कार्यालय प्रयोग 49
इंटरनेट और हिन्दी 57
4. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण 60
व्याकरण के अंग 61
वाक्य-विचार 77
5. व्यावहारिक हिन्दी निबंध एवं पत्र लेखन 96
भीमराव अम्बेडकर 100
सुभाषचंद्र बोस 101
जवाहरलाल नेहरू 103
श्रीमती इंदिरा गांधी 105
बाल गंगाधर तिलक 108
सरोजिनी नायडू 110
अटल बिहारी वाजपेयी 111
राष्ट्रीय एकता 113
वन एवं पर्यावरण 116
पत्र-लेखन 117
6. हिन्दी अनुवाद का व्यावहारिक रूप 131
अनुवाद का अर्थ 132
अनुवाद के रूप 138
अनुवाद का क्षेत्र 139
हिन्दी साहित्य के अनुवाद का सैद्धान्तिक पक्ष 143
सारानुवाद 148
गद्य अनुवाद तथा पद्य अनुवाद से आशय 151
साहित्य अनुवाद व उससे जुड़ी समस्याएं 152
हिन्दी अनुवाद का व्यावहारिक पक्ष 159
अनुवाद अभ्यास 161

7. हिन्दी मीडिया लेखन **167**
मीडिया लेखन के सिद्धांत 169
मीडिया के मूलभूत सिद्धांत 170
मीडिया लेखन की विभिन्न विधाएँ 171
आकाशवाणी की भाषा 178
टेलीविजन की भाषा 179

1

विषय-बोध

'भाषा' शब्द भाष् धातु से निष्पन्न हुआ है। शास्त्रों में कहा गया है–''भाष् व्यक्तायां वाचि'' अर्थात् व्यक्त वाणी ही भाषा है। भाषा स्पष्ट और पूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट करती है। भाषा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना पुराना मानव का इतिहास। भाषा के लिए सामान्यत: यह कहा जाता है कि–'भाषा मनुष्य के विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' भाषा की परिभाषा पर विचार करते समय रवीन्द्रनाथ की यह बात ध्यान देने योग्य है कि–'भाषा केवल अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल और बहुस्तरीय नहीं है वरन् अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है।'

उदाहरण के लिए अगर भाषा व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, तब इसके साथ ही वह सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का उपकरण भी है, एक ओर अगर वह हमारे मानसिक व्यापार (चिन्तन प्रक्रिया) का आधार है तो दूसरी तरफ वह हमारे सामाजिक व्यापार (संप्रेषण प्रक्रिया) का साधन भी है। इसी प्रकार संरचना के स्तर पर जहाँ भाषा अपनी विभिन्न इकाइयों में सम्बन्ध स्थापित कर अपना संश्लिष्ट रूप ग्रहण करती है जिनमें वह प्रयुक्त होती है। प्रयोजन की विविधता ही भाषा को विभिन्न सन्दर्भों में देखने के लिए बाध्य करती है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न रूपों में देखने और परिभाषित करने का प्रयत्न किया है–

भाषा की परिभाषा

डॉ. कामता प्रसाद गुरु–'भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों तक भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।'

आचार्य किशोरीदास–'विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्दसमूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।''

डॉ. श्यामसुन्दर दास–'मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।'

डॉ. बाबूराम सक्सेना–'जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।'

डॉ. भोलानाथ–'भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक(Arbitrary) ध्वनि-प्रतीकों की वह संचरनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं ।'

रवीन्द्रनाथ–'भाषा वागेन्द्रिय द्वारा निःस्तृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिनके द्वारा किसी भाषा-समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं।'

महर्षि पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी महाभाष्य में भाषा की परिभाषा करते हुए कहा है–"व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है। दुनीचंद ने अपनी पुस्तक "हिन्दी व्याकरण" में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है–"हम अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उन्हें भाषा कहते हैं।"

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा है–"भाषा मुख से उच्चरित उस परम्परागत सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की व्यक्ति को कहते हैं, जिसकी सहायता से मानव आपस में विचार एवं भावों को आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसको वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।"

डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल के अनुसार–"भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छन्द प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है जिससे मानव समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरे को सहयोग देता है।"

श्री नलिनि मोहन सन्याल का कथन है–"अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं उनका संकेतों के सदृश व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं, उस साधन को भाषा कहते हैं।"

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के मतानुसार–"भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"

प्लेटो ने विचार तथा भाषा पर अपने भाव व्यक्त करते हुए लिखा है-'विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।'

मैक्समूलर के अनुसार-"भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा अविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"

क्रोचे द्वारा लिखित परिभाषा इस प्रकार है–"Language is articulated limited organised sound, employed in expression". अर्थात् भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।

ब्लॉक और ट्रेगर के अनुसार–"A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co&operates". अर्थात् भाषा व्यक्त ध्वनि चिह्नों की उस पद्धति को कहते हैं जिसके माध्यम से समाज-समूह परस्पर व्यवहार करते हैं।

हेनरी स्वीट का कथन है–"Language may be defined as expression of thought by means of speechsound." अर्थात् जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।

ए. एच. गार्डिनर के विचार से–"The common definition of speech is the use of articulate sound sybols for the expression of

thought" अर्थात् विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि–''मुख से उच्चरित ऐसे परम्परागत, सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की समष्टि ही भाषा है जिनकी सहायता से हम आपस में अपने विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं।''

हिन्दी भाषा

हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिंदुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हालांकि, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, क्योंकि भारत के संविधान में कोई भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया था। चीनी के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा भी है। किन्तु एथनॉलोग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

2001 की भारतीय जनगणना में भारत में 42 करोड़ 20 लाख लोगों ने हिन्दी को अपनी मूल भाषा बताया। भारत के बाहर, हिंदी बोलने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में 8,63,077, मॉरीशस में 6,85,170, दक्षिण अफ्रीका में 8,90,292, यमन में 2,32,760, युगांडा में 1,47,000, सिंगापुर में 5,000, नेपाल में 8 लाखय जर्मनी में 30,000 हैं। न्यूजीलैंड में हिंदी चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है।

इसके अलावा भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14 करोड़ 10 लाख लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू, मौखिक रूप से हिन्दी के काफी समान है।

एक विशाल संख्या में लोग हिंदी और उर्दू दोनों को ही समझते हैं। भारत में हिन्दी, विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है।

हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में आमतौर पर एक सरल रूप में समझी जानेवाली भाषा है। हिन्दी का कभी-कभी नौ भारतीय राज्यों के संदर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिंदी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिंदवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिंदुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिंदी के अन्य नाम हैं जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं।

भाषा का माध्यम

अभिव्यक्ति का माध्यम

अपने भावों को अभिव्यक्त करके दूसरे तक पहुँचाने हेतु भाषा का उद्‌भव हुआ। भाषा के माध्यम से हम न केवल अपने, भावों, विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओं को दूसरे पर प्रकट करते हैं, अपितु दसू रों द्वारा व्यक्त भावों, विचारों और इच्छाओं को ग्रहण भी करते हैं। इस प्रकार वक्ता और श्रोता के बीच अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय व्यापार चलते रहते हैं। इसलिए सुनना और सुनाना अथवा जानना और जताना भाषा के मूलभूत कौशल हैं जो सम्प्रेषण के मूलभूत साधन हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भाषा के अन्यतम कौशल है पढ़ना और लिखना जो विधिवत् शिक्षा के माध्यम से विकसित होते हैं।

चिन्तन का माध्यम

विद्याथ्री बहुत कुछ सुने, बोले या लिखें-पढ़े, इतना पर्याप्त नहीं है, अपितु यह बहुत आवश्यक है कि वे जो कुछ पढ़ें और सुनें, उसके आधार पर स्वयं चिन्तन-मनन करें। भाषा विचारों का मूल-स्रोत है। भाषा के बिना विचारों का कोई

अस्तित्त्व नहीं है और विचारों के बिना भाषा का कोई महत्त्व नहीं। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि ''बुद्धि के साथ आत्मा वस्तुओं को देखकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है। मन शारीरिक शक्ति पर दबाव डालता है जिससे वायु में प्रेरणा उत्पन्न होती है। वायु फेफड़ों में चलती हुई कोमल ध्वनि को उत्पन्न करती है, फिर बाहर की और जाकर और मुख के ऊपरी भाग से अवरुद्ध होकर वायु मुख में पहुँचती है और विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करती है। ''अत: वाणी के उत्पन्न के लिए चेतना, बुद्धि, मन और शारीरिक अवयव, ये चारों अंग आवश्यक हैं। अगर इन चारों में से किसी के पास एक या एकाधिक का अभाव हो तो वह भाषाहीन हो जाता है।

संस्कृति का माध्यम

भाषा और संस्कृति दोनों परम्परा से प्राप्त होती हैं। अत: दोनों के बीच गहरा सम्बन्ध रहा है। जहाँ समाज के क्रिया-कलापों से संस्कृति का निर्माण होता है, वहाँ सास्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा का ही आधार लिया जाता है। पौराणिक एवं साहसिक कहानियाँ, पर्व-त्यौहार, मेला-महोत्सव, लोक-कथाएँ, ग्रामीण एवं शहरी जीवन-शैली, प्रकृति-पर्यावरण, कवि-कलाकारों की रचनाएँ, महान विभूतियों की कार्यावली, राष्ट्रप्रेम, समन्वय-भावना आदि सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। दरअसल, किसी भी क्षेत्र विशेष के मानव समुदाय को परखने के लिए उसकी भाषा को समझना आवश्यक है। किसी निर्दिष्ट गोष्ठी के ऐतिहासिक उद्‌भव तथा जीवन-शैली की जानकारी प्राप्त करने हेतु उसकी भाषा का अध्ययन जरूरी है। संपृक्त जन-समुदाय के चाल-ढाल, रहन-सहन, वेशभूषा ही नहीं, अपितु उसकी सच्चाई, स्वच्छता, शिष्टाचार, सेवा-भाव, साहस, उदारता, निष्ठा, श्रमशीलता, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, कर्त्तव्यपरायणता आदि उसकी भाषा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाते हैं।

साहित्य का माध्यम

भाषा साहित्य का आधार है। भाषा के माध्यम से ही साहित्य अभिव्यक्ति पाता है। किसी भी भाषा के बोलने वालों जन-समुदाय के रहन-सहन, आचार-विचार आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला उस भाषा का साहित्य होता है। साहित्य के जरिए हमें उस निर्दिष्ट समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का परिचय मिलता है। केवल समकालीन जीवन का ही नहीं, बल्कि

साहित्य हमें अपने अतीत से उसे जोड़कर एक विकसनशील मानव-सभ्यता का पूर्ण परिचय देता है। साथ ही साहित्य के अध्ययन से एक उन्नत एवं उदात्त विचार को पनपने का अवसर मिलता है तो उससे हम अपने मानवीय जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अत: भाषा का साहित्यिक रूप हमारे बौद्धिक एवं भावात्मक विकास में सहायक होता है और साहित्य की यह अनमोल सम्पत्ति भाषा के माध्यम से ही हम तक पहुँच पाती है। उत्तम साहित्य समृद्ध तथा उन्नत भाषा की पहचान है।

हिन्दी की उपभाषाएँ

भारत का उत्तर और मध्य देश बहुत समय पहले से हिंदी-क्षेत्र नाम से जाना जाता है। हिंदी-प्रयोग-क्षेत्र के विस्तृत होने के कारण अध्ययन सुविधा के लिए उसे विविध वर्गो में विभक्त किया गया है। जॉर्ज इब्राहिम ग्रियर्सनने हिंदी के मुख्य दो उपवर्ग बनाए हैं– (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी। उन्होंने बिहारी को अलग भाषा के रूप में व्यवस्थित किया है।

हिंदी भाषा के ऐतिहासिक और स्त्रोत-आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश की शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस शाखाओं से हिंदी का विकास विविध क्षेत्र में हुआ है। इसे मुख्यत: पाँच उपवर्गो में विभक्तकर सकते हैं– 1.पश्चिमी हिंदी, 2. पूर्वी हिंदी, 3. बिहारी हिंदी, 4. राजस्थानी हिंदी, 5. पहाड़ी हिंदी।

पश्चिमी हिन्दी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यत: पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

कौरवी–प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी-बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ

भाषाविदों का कहना है कि खड़ी-पाई (आ की मात्रा 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी-बोली नाम पड़ा है।

वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ–

1. क्रिया रूप अकारांत होता है, यथा–आना, खाना, दौड़ना, हँसना, फैलना और सींचना आदि।
2. कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।
3. कहीं-कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का का प्रयोग मिलता है।
4. इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।
5. अरबी और फारसी के शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं।
6. वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त सहित्य रचा गया है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यत: रचना होती थी। रीतिकाल ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वीकृति मिली थी। विशेष महत्त्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगता वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है।

इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

इसकी कुछ विशेषताएँ उल्ले खनीय हैं–

पद-रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है, जैसे–

खाया - खायौ - गया - गयो या गयौ।

बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है, यथा–लोग - लागनय बात - बातन।
'उ' विपर्यय रूप मिलता है, जैसे–कुछ - कछु।
संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं–
मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो, आदि।
तद्भव शब्दों की बहुलता है।

वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। इसके प्रमुख कवि हैं– सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण और रसखान आदि।हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

हरियाणवी

इसे बाँगारू या हरियानी नाम भी दिया जाता है। किन्तु जब हरियाणवी ही सर्वप्रचलितऔर मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती हैं। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं।

केन्द्रीय हरियाणवी–इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्रायः इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारण 'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ळ' विशेष ध्वनि सुनाई देती है, यथा–बालक - बाळक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता है।

ब्रज हरियाणवी–फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के हरियाणा के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है, यथा–खायौ, खायो गयो, गयोय नाच्यो, नाच्यौ आदि। 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है–काला - कारा, बिजली - बिजुरी आदि।

मेवाती हरियाणवी–मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।

अहीरवाटी हरियाणवी–रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ हैं। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी(बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है, यथा–था झथो।

बागड़ी हरियाणवी–इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान सकते है। बहुवचन रचन में आँ' प्रत्यय का योग मिलता है, यथा–बात झबाताँ। लोपका बहुल रूप सामने आता है, जैसे-अहीर - हीर, अनाज ठाना, नाज, उठाना।

कौरवी हरियाणवी–कौरवी क्षेत्र से जुड़ें हरियाणा के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता हैं। आकारांत शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है, यथा–खाना, धोना, सोना आदि।

अबदालवी हरियाणवी–अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्टप्रमुख दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है–हाथ - हात, साथ - सात। लोप की बहुलता भी दिखाई देती है–कृपया - कृप्या, मिनट - मिन्ट।

कन्नौजी

कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ हैं। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत हैं। इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

बुंदेली

बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी है इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग

प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं– अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधी

'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं–

इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है–शंकर - संकर, शाम - साम आदि।

इसमें 'व' ध्वनि प्राय: 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है, जैसे वन - बन, वाहन - बाहन आदि। 'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है। इ आगम-स्कूल - इस्कूल, स्त्री - इस्त्री उ आगम-सूर्य - सूरज - सूरूजु

'ण' ध्वनि के स्थान पर प्राय: 'न' का प्रयोग होता है।

ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

भक्तिकाल में समृद्ध साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास कृत 'रामचरित मानव' और जायसीकृत 'पद्मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य-धारा के सभी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया। समृद्ध लोक-साहित्य मिलता है।

बघेली

इस बोली का केन्द्र रीवाँ हैं। मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है।

छत्तीसगढ़

'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसमें कहीं-कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है। अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है।

बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्‌भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलवर्ग में व्यवस्थित किया है। ये भाषाएँ आकार बहुल हैं। बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है, यथा–लोग - लागनि, लोगन सर्वमान के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं–तोहनी हमनी आदि। बिहारी की अनेक प्रवृत्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं–इससे मुख्यत: तीन बोली भागों में विभक्त करते हैं।

भोजपुरी

भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्तृत क्षेत्र में पयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आशिंक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है। इस भाषा में अवधी की कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

इसमें 'र' ध्वनि का प्राय: लाप हो जाता है, यथा–लरिका - लरका (लड़का), करया - कइया (काला)'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है, जैसे खाइल, चलल, पाइल आदि। इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है।

समृद्ध लोक-साहित्य मिलता है।

मैथिली

मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है। इसमें शब्द स्वरांत होते हैं।

इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप भी प्रयुक्त होता है। इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं, यथा–छथि, छल आदि। इ, उ बहुला रूप अवधी के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दाबली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्कृत ज्ञान का परिचायक है। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य और आकर्षक साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

मगही

'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है। इसमें सहायक 'हल' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते है। कारक-चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते हैं, यथा–संप्रदान-ला, लेन, आधकरण-मों। शब्दों में तद्भव या बहुल तद्भव रूप मिलते है, यथा–बच्चे के लिए 'बुतः' का प्रयोग। उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

राजस्थानी हिन्दी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं।

इसमें टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता होती है, यथा–ड, ड़, ण, ळ। महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने की भी प्रवृत्ति है। बहुबचन परिवर्तन में मुख्यतः 'आँ' का प्रयोग होता है। तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है। राजस्थानी में एक ओर वीर रस की ओजप्रधान रचनाएँ मिलती है, तो श्रंगार रासो, दूहा काव्य-ग्रंथो की रचना हुई है। इसमें समृद्ध साहित्य और लोक-साहित्य सृजन क्रम चल रहा है।

राजस्थानी में चार प्रमुख बोलियों के रूप मिलते हैं–मेवाती, जयपुरी, मारबाड़ी और मालवी।

मेवाती

मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारण इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवती में समृद्ध लोक-साहित्य है।

जयपुरी

इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसर्गो में कर्म-संप्रदान-नै, कैय करण-अपादान-सूं, सौय अधिकरण-मै, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य मिलता है।

मारबाड़ी

इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध कवि नरपतिनाल्ह, चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं। इसमे 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है। अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग। तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

मालवी

मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं। हिन्दी और उसका विकास इसमें 'ड़' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है। इसमें 'ण' ध्वनि नहीं है।

विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य मिलता है।

पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्‌भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथिलता के कारण भाषा में विविधता का होना निश्चित रहा। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है–पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

पश्चिमी पहाड़ी

इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती है। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यत: टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है।

मध्य पहाड़ी

नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते हैं। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्‌भव शब्द है। आर्यो का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजरात और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में, हिंदी दक्षिण के प्रांतो में आकर्षक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय में दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है। उद्‌भव-विकास–चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद-बिन-तुगलग था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद-बिन-तुगलक के जाने से पूर्व

निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह-यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी-संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि उवश्य मिली, किन्तु इससे दर्क्षिण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी-बोली, ब्रज, अवधी, पंजावी आदि के मिश्रित के रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंन्दी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में डॉ. परमानंद पांचाल का कथन इस प्रकार है-''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14 वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आसपास की हरियाणवी एवं खड़ी-बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।'' डा. श्रीराम शर्मा के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्‌भव विकास हुआ है। इसमें अव्यय शब्द 'और' के स्थान पर 'होर' का प्रयोग होता है।

नकारात्मक शब्द 'नही' के लिए 'नक्को' का प्रयोग होता है।

विविध भारतीय भाषाओं के तत्सम और तत्सम शब्दों के साथ अरबी, फारसी शब्दों का प्रभावी प्रयोग मिलता है। शब्द रूप में पर्याप्त विधिता मिलती है, यथा-एक झयेक, यकी, यक्की, इक आदि दक्खिनी हिंदी का भाषायी स्वरूप, भक्ति का तीन संत काव्य की भाषा से बहुत कुछ मेल खाता है-

''वे अरबी बोल न जाने,,
न फारसी पछाने
यूँ देखत हिंदी बोल
पन मानी है नफ्तोल''
दृ मीराँजी शम्सुल उश्शाक

''ऐब न राखे हिंदी बोल,
माने तो चख देख घंडोल।''
दृ शेख बुराहानुददीन जानम
''तुलना-
''लूंचत मूंडत फिर फोकट तीरथ करे या हज।
थान देख जे भान भई मूरख भज।।''
दृ मीरँजी शम्सुल उश्शाक
''मूड़ मड़ाइ हरि मिले, तो सब कोउ लेठ मुड़ाय।
बार-बार के मूड़ते भेड़ न बैकुंठ जाय।।''
– कबीर

दक्खिनी हिंदी में समृद्ध साहित्य है। इसके कुछ प्रतिनिधि साहित्यकार हैं-उश्शक, शेख बुराहानुददीन जानम, काजी महमूद बहरी, गुलाम अली, और मुहम्मद अमीन आदि। निश्चय ही दक्खिनी हिंदी में हिंदी भाषा का एक विशेष स्वरूप है और इसमें समृद्ध साहित्य है। इसलिए हिंदीभाषा और हिंदी साहित्य के इतिहास में दक्खिनी हिंदी का महत्व स्वत: सिद्ध है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छ: भागों-पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्ही दो वर्गो की अवधी और ब्रज दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य-रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधि और ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य-सृजन में अपनाई जाती रही हैं और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है। जायसी ने 'पदमावत' की रचना ठेठ अवधि में की है। 'प्रमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्ति काल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ-मागधी से हुआ।

पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं-कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीनप्रमुख बोलियाँ है–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र-तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।

पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।

पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा–बालक - बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती है।

पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-और - क अउर ऐनक - अइनक। पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा-कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा-केला - केरा, फर - फल आदि।पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्राय: 'स' के रूप में प्रयुक्त होती है, यथा-शंकर - संकर, शेर - सेर। पश्चिमीहिंदी में प्राय: मूल रूप प्रयुक्त होता है।

पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्राय: 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा-वन - बन, आशर्वाद - आसीर्वाद आदि। पश्चिमी हिंदी में प्राय: मूल रूप प्रयुक्त होता है।

पूर्वी हिंदी में कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।

पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हम सब'प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी हिंदी में प्राय: एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र-तत्र 'ब' का प्रयोग होता है-चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकार रूप सामने आता है–चलना - चलनों, करना - करनो।

क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारण में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किन्तु पूर्वी हिंदी में रूप-विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं-पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ की शब्द-संपदा में बहुत कुछ समानता है,

वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द-संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियो की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप-भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्त्व स्वत: सिद्ध है।

मानक हिन्दी

मानक हिन्दी के अर्थ

मानक हिन्दी भाषा का अर्थ हिन्दी भाषा के उस स्थिर रूप से है जो अपने पूरे क्षेत्र में शब्दावली तथा व्याकरण की दृष्टि से समरूप है। इसलिए वह सभीलोगों द्वारा मान्य है, सभी लोगों द्वारा सरलता से समझी जा सकती है। अन्य भाषा रूपों के मुकाबले वह अधिक प्रतिष्ठित है। मानक हिन्दी भाषा ही देश की अधिकृत हिन्दी भाषा है। वह राजकाज की भाषा है। ज्ञान, विज्ञान की भाषा है, साहित्य-संस्कृति की भाषा है। अधिकांश विद्वान, साहित्यकार, राजनेता औपचारिक अवसरों पर इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। आकाशवाणी व दूरदर्शन पर जिस हिन्दी में समाचार प्रसारित होते हैं, प्रतिष्ठित समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में जिस हिन्दी का प्रयोग होता है, जिस हिन्दी में सामान्यत: मूललेखन व अधिकृत अनुवाद होता है, वह मानक हिन्दी भाषा ही है। मानकहिन्दी भाषा, हिन्दी के विभिन्न रूपों में सर्वमान्य रूप है। वह रूप पूरी तरह सुनिश्चित व सुनिर्धारित है तथापि इसमें गतिशीलता भी है।

मानक हिन्दी की विशिष्टताएँ

मानक भाषा के जितने लक्षण ऊपर बतलाए गए हैं वे सभी लक्षण मानक हिन्दी भाषा में विद्यमान हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मानक भाषा में चार तत्त्वों का होना आवश्यक है–

1. ऐतिहासिकता,
2. मानकीकरण,
3. जीवन्तता और
4. स्वायत्तता। ये चारों तत्त्व मानक हिन्दी भाषा में विद्यमान हैं।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिकता तो सर्वविदित है। इसका एक गौरवशाली इतिहास है, विपुल साहित्यिक परम्परा है। शताब्दियों से लोग हिन्दी भाषा का प्रयोग करते आर हे हैं। हिन्दी का मानक रूप भी गत शताब्दी में आकार लेने

लगा था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हिन्दी का मानक स्वरूप विकसित होने लगा और स्वतंत्रता के पश्चात तो हिन्दी का मानक स्वरूप सुनिश्चित व सुनिर्धारित हो गया। मानक हिन्दी में जीवन्तता भी है। जीवन्तता इसी से सिद्ध होती है कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जयन्त नारलीकर 'ब्रह्माण्ड के स्वरूप' पर अपना व्याख्यान मानक हिन्दी भाषा में देते हैं। कविता और कहानी से लेकर विज्ञानऔर दर्शन तक सभी क्षेत्रों में आज मानक हिन्दी भाषा का प्रयोग होता है। यह भाषा नए युग के साथ चलने में पूरी तरह सक्षम है। मानक हिन्दी में स्वायत्तता भी है। वह किसी अन्य भाषा पर टिकी हुई नहीं है। उसकी स्वतंत्र शब्दावली और अपना व्याकरण है। इन चारों तत्त्वों के प्रकाश में यही कहा जा सकता है कि मानक हिन्दी भाषा एक सशक्त गतिशील और सर्वमान्य भाषा है।

मानक हिन्दी के स्वरूप एवं प्रकार

मानक हिन्दी के स्वरूप

हिन्दी की आधुनिक मानक शैली का विकास हिन्दी भाषा की एक बोली, जिसका नाम खड़ी बोली है के आधार पर हुआ है। हिन्दी मानक भाषा है, जबकि खड़ीबोली उसकी आधारभूत भाषा का वह क्षेत्रीय रूप है जो दिल्ली,रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, सहारनपुर आदि में बोला जाता है। खड़ीबोली क्षेत्र में रहने वाले प्रायः प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति द्वारा जो कुछ बोला जाता है वह खड़ी बोली है, किन्तु जैसे ब्रज, बुन्देली, निमाड़ी अथवा मारवाड़ी क्षेत्रों में हिन्दी की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति परस्पर सम्भाषण अथवा औपचारिक अवसरों पर मानक हिन्दी बोलते हैं वैसे ही खड़ी बोली क्षेत्र के व्यक्ति भी औपचारिक अवसरों पर मानक हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हम इसको इस तरह समझें–मैथिलीशरण गुप्त चिरगाँव के थे। वे घर में बुन्देलखण्डी बोलते थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी बलिया के थे, वे घर में भोजपुरी बोलते थे किन्तु ये सभीव्यक्ति जब साहित्य लिखते हैं तो मानक हिन्दी का व्यवहार करते हैं। संक्षेप में मानक भाषा अपनी भाषा का एक विशिष्ट प्रकार्यात्मक स्तर है। अब हम हिन्दीके निम्नलिखित चार वाक्य लेंगे और देखेंगे कि मानक भाषा की कसौटी पर कौन-सा वाक्य सही उतरता है।

मैंने भोजन कर लिया है।

मैंने खाना खा लिया है।

मैंने खाना खा लिया हूँ।

हम खाना खा लिये हैं।

विभिन्न क्षेत्रीय एवं सामाजिक भिन्नताओं के आधार पर तीसरे एवं चौथे प्रकार्यात्मक स्तरों के अनेक भेद हो सकते हैं। किन्तु पहले या दूसरे वाक्य का व्यवहार औपचारिक स्तर पर मानक भाषा में सर्वत्र होगा। हिन्दी का सही रूप जो सर्वत्र एक-सा है, सर्वमान्य है, व्याकरणसम्मत है और सम्भ्रांत है, मानकहिन्दी का वाक्य है।

मानक हिन्दी के प्रकार

हिन्दी के अनेक रूप हैं और अनेक अर्थ हैं। हिन्दी के सारे रूपों को हम सुविधा के लिए दो वर्गों में बाँट सकते हैं–

सामान्य हिन्दी

क्षेत्रीय बोलियाँ

हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियाँ छोटे-छोटे क्षेत्रों या छोटे-छोटे समुदायों के बीच ही प्रचलित हैं। सामान्य हिन्दी इन सब रूपों का महत्तम-समापवर्तक रूप है। यदि बोलीगत सारे रूप हिन्दी की परिधि पर हैं तो उनका एक रूप ऐसा भी है जो केन्द्रवर्ती रूप है। वह केन्द्रवर्ती रूप ही मानक हिन्दी का रूप है। विभिन्न बोलियों के क्षेत्रीय अथवा सामुदायिक रूपों का मानक भाषा के रूप में पर्यवसान कई कारणों से होता है। इन कारणों को हम संक्षेप में निम्नानुसार उल्लिखित कर सकते हैं–

एक-सी शिक्षा का प्रसार

यातायत की सुविधाओं का विस्तार

जनसंचार माध्यमों की लोकप्रियता

महानगरों का विकास

साहित्य की वृद्धि और मुद्रित अक्षर की व्यापकता

सिनेमा का प्रभाव

सरकारी नौकरी में स्थानान्तरण

सैनिकों की भर्ती

राष्ट्रीय एकता की चेतना।

उपर्युक्त कारणों से धीरे-धीरे ऐसी हिन्दी का निर्माण और प्रचलन हुआ जो हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों में समान रूप से समझी जा सकती है और उसका व्यवहार किया जा सकता है।

हमारे देश में औद्योगिकीकरण जिस गति से हो रहा है उससे भी क्षेत्रीय और सामुदायिक बोलियों के स्थान पर एक सामान्य भाषा फैल रही है। हिन्दी की शिक्षा का प्रसार भी इन दिनों बहुत हुआ है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रभाव के कारण मानक हिन्दी सामान्य जन तक पहुँच रही है।

हिन्दी भाषा के मानक और अमानक की पहचान

मानक भाषा लिखने के काम आती है और बोलने के भी। लिखित और उच्चरित मानक हिन्दी के जो प्रयोग व्याकरणसम्मत, सर्वमान्य, एकरूप और परिनिष्ठित है उनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है।

बहुत से लोग बड़ी 'ई' की मात्रा का गलत प्रयोग करते हैं, जैसे शक्ती, तिथी, कान्ती, शान्ती। वास्तव में इनके मानक रूप है–शक्ति, तिथि, कान्ति, शान्ति आदि।

बहुत से लोग 'ऋ' को रि बोलते हैं जैसे रिण, रीता। यह अमानक प्रयोग है, किन्तु 'ऋ' अब शुद्ध स्वर नहीं रह गया है। उच्चारण में 'रि' को 'ऋ' का उच्चारण स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु लिखने में संस्कृत शब्दों में 'ऋ' ही मानक प्रयोग है जैसे–ऋण, ऋता आदि।

हिन्दी में अंग्रेजी के कुछ ऐसे शब्द प्रचलित हो गए हैं जिनमें 'ॉ' की ध्वनि होती है। जैसे–डॉक्टर, कॉलेज, ऑफिस। हिन्दी में डाक्टर, कॉलेज, आफिस बोलना या लिखना अमानक प्रयोग माना जाता है।

कुछ शब्द 'इ' और 'ई' देनों मात्राओं से लिखे जाते हैं जैसे–हरि/हरी, स्वाति/स्वाती। किन्तु व्यक्ति के नाम का मानक रूप वही माना जाता है जो नियम द्वारा मान्य है या वह स्वयं लिखता है जैसे-डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सही है, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय नहीं, क्योंकि डॉ. हरीसिंह, अपना नाम हरीसिंह लिखते थे।

कुछ लोग कुछ शब्दों में बड़ी 'ई' के स्थान पर छोटी 'इ' की मात्रा लगाते हैं। जैसे श्रीमति, मैथिलिशरण। ये अमानक प्रयोग है। इनके मानक रूप है–श्रीमती, मैथिलीशरण।

ऐसे ही निम्नलिखित शब्दों के अन्त में ह्रस्व 'उ' का प्रयोग मानक है, दीर्घ 'ऊ' का नहीं

मानक	अमानक
इन्दु	इन्दू
प्रभु	प्रभू
शम्भु	शम्भू

हिन्दी में 'र' के साथ जब 'उ' अथवा 'ऊ' की मात्रा लगायी जाती है तब उसका रूप होता है 'रुपया' अथवा 'रूप'। जिन शब्दों में हिन्दी में 'औ' की मात्रा होती है, उनका उच्चारण 'अ"उ' की तरह करना चाहिए, ओ की तरह नहीं। जैसे 'औरत' का मानक उच्चारण 'अउरत' की तरह होगा, 'ओरत' की तरह नहीं। इसी प्रकार 'ए' का उच्चारण भी सावधानी से करना चाहिए। 'मैं' का उच्चाारण 'मँय' की तरह होगा 'में' की तरह नहीं। 'सेनिक', 'गोरव' उच्चारणअमानक है, 'सैनिक', 'गौरव' आदि मानक।

हिन्दी के कारक चिह्नों में सबसे अधिक कठिनाई 'ने' को लेकर होती है। मानक हिन्दी में 'ने' का प्रयोग कर्ता-कारक में सकर्मक धातुओं से बने भूतकालिक क्रिया रूपों के साथ होता है। जैसे–

मैंने कहा।

राम ने रावण को मारा

मैंने गाना गायां

किन्तु निम्न वाक्यों में 'ने' का प्रयोग अमानक है–

मैं ने हँसा।

राम ने बहुत रोया।

मानक हिन्दी में विशेषण का लिंग, संज्ञा के लिंग के अनुरूप बदलने की परिपाटी नहीं है। संस्कृत में सुन्दर बालक किन्तु सुन्दरी बालिका जैसे प्रयोग प्रचलित है। हिन्दी में हम सुन्दर लड़की और सुन्दर लड़का कहते हैं। वास्तव में हिन्दी में संज्ञा के लिंग के अनुरूप विशेषण का लिंग नहीं बदला जाना चाहिए।

निश्चयवाचक अव्यय के रूप में हिन्दी में 'न', 'नहीं' और 'मत' मानकहैं, 'ना' नहीं। इस तरह के वाक्य ठीक नहीं हैं–'ना वह बैठा और ना ही उसने बात की।'

वास्तव में भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया एक लम्बी प्रक्रिया है। अत: जिन शब्दों, अभिव्यक्तियों और वाक्य रूपों का मानकीकरण हो चुका है, उनका पालन करना चाहिए।

2

हिन्दी भाषा का व्यावहारिक रूप

भाषा का सर्जनात्मक आचरण के समानान्तर जीवन के विभिन्न व्यवहारों के अनुरूप भाषिक प्रयोजनों की तलाश हमारे दौर की अपरिहार्यता है। इसका कारण यही है कि भाषाओं को सम्प्रेषणपरक प्रकार्य कई स्तरों पर और कई सन्दर्भों में पूरी तरह प्रयुक्ति सापेक्ष होता गया है। प्रयुक्ति और प्रयोजन से रहित भाषा अब भाषा ही नहीं रह गई है। भाषा की पहचान केवल यही नहीं कि उसमें कविताओं और कहानियों का सृजन कितनी सप्राणता के साथ हुआ है, बल्कि भाषा की व्यापकतर संप्रेषणीयता का एक अनिवार्य प्रतिफल यह भी है कि उसमें सामाजिक सन्दर्भों और नये प्रयोजनों को साकार करने की कितनी संभावना है। इधर संसार भर की भाषाओं में यह प्रयोजनीयता धीरे-धीरे विकसित हुई है और रोजी-रोटी का माध्यम बनने की विशिष्टताओं के साथ भाषा का नया आयाम सामने आया है –वर्गाभाषा, तकनीकी भाषा, साहित्यिक भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा, बोलचाल की भाषा, मानक भाषा आदि।

बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी

'बालेचाल की भाषा' को समझने के लिए 'बोली' (Dialect) को समझना जरूरी है। 'बोली' उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह

मिश्रित रूप है जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है। विश्व में जब किसी जन-समूह का महत्त्व किसी भी कारण से बढ़ जाता है तो उसकी बोलचाल की बोली 'भाषा' कही जाने लगती है, अन्यथा वह 'बोली' ही रहती है। स्पष्ट है कि 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं क्योंकि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है।

जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारस्परिक सम्पर्क होता है, तब बोल चाल की भाषा का प्रसार होता है। आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुई आपसी व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्यभाषा' के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र मेंप्रयुक्त होती है।

आमतौर से सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के कई रूप उभर कर आते हैं। डॉ. भोलानाथ के अनुसार, ये रूप प्रमुखत: चार आधारों पर आधारित हैं–इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। इनमें प्रयोग क्षेत्र सबसे विस्तृत हैं। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारम्पारिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का प्रसार होता है। दूसरे शब्दों में, आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुए व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से जाना जाता है। पर किसी भी भाषा की भाँति यह परिवर्तनशील है, समकालीन, प्रयोगशील तथा भाषा का आधुनिकतम रूप है।

साधारणत: हिन्दी की तीन शैलियों की चर्चा की जाती है। हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी। शिक्षित हिन्दी भाषी अक्सर औपचारिक स्तर पर (भाषण, कक्षा में अध्ययन, रेडियो वार्ता, लेख आदि में) हिन्दी या उर्दू शैली का प्रयोग करते हैं। अनौपचारिक स्तर पर (बाजार में, दोस्तों में गपशप करते समय) प्राय: हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। जिसमें हिन्दुस्तानी के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप वह है जिसमें अंग्रेजी के प्रचलित शब्द हैं और दूसरे में अगृहीत अंग्रजी शब्द का प्रचलन है। बोलचाल की हिन्दी में ये सारी शैलियाँ मौजूद रहती हैं। अर्थात् इसमें सरल बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। चाहे वह तत्सम प्रधान हिन्दी हो या परिचित उर्दू अथवा अंग्रजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी, व्याकरण तो हिन्दी का ही रहता है।

बोलचाल की भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। भक्तों द्वारा, साधु-संतों द्वारा, व्यापारियों के जरिए, तीर्थस्थानों में, मेला-महोत्सव में, रेल के डिब्बों में, सेना द्वारा, शिक्षितों में, मजदूर और मालिक के बीच, किसान और

जमींदार के बीच बोलचाल की भाषा बड़ी तेजी से फैलने लगती है। यह प्रेम की, भाई-चारे की, इस मिट्टी की तथा हमारी संस्कृति की भाषा है। चूंकि भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति के रूप में समूचे विश्व में शुमार होती है, इसमें भाषाई अनेकरूपता का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। हमारी संस्कृति की भाँति हमारी भाषा हिन्दी भी अनेकता को अपने में समाहित कर राष्ट्रीय एकता की पहचान कराती है। बहुभाषी राष्ट्र की विविधता, सांस्कृतिक विशालता एवं भौगोलिक वैभिन्न्य के कारण सृष्ट बहुविध शब्दों में से कई मधुर क्षेत्रीय शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में समाये हुए हैं। इससे सहजता, बोधगम्यता के साथ-साथ एक अपनापन भी अनायास आ जाता है।

संसार की प्रत्येक बोलचाल की भाषा आगे चलकर मानक भाषा बन जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सहजता और सरलता। मौखिक प्रयोग के कारण कहीं कहीं शुद्धता भले ही न हो, पर बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता में यह सबसे आगे है। जो भाषा जितनी सम्प्रेषणीय है, वह उतनी ही समर्थ है। सम्प्रेषणीयता के बिना भाषा की उपयोगिता कहाँ रह जायगी ? सच पूछिये तो भाषा दूसरे के लिए अभिप्रेत है। वक्ता और श्रोता के बिना भाषा की कोई परिचिति नहीं है। इसी सम्प्रेषण के चलते मनुष्य अपने आसपास से लेकर सारे संसार से जुड़ता है। अपने को अच्छी तरह अभिव्यक्त करने हेतु वह अन्यन्त प्रभावशाली ढंग से भाषा का प्रयोग करता है।

सतत परिवर्तनशील होने के कारण भाषा में भिन्नता पायी जाती है। भाषा पर क्षेत्रीय प्रभाव को भी झूठलाया नहीं जा सकता। लेकिन यह भी सत्य है कि भाषा की इन विविधताओं के बावजूद उसका एक मानक रूप होता है। फिर भी 'भाषा बहता नीर' कभी स्थिर कैसे रह सकता है। जन-जन तक फैलकर सबसे घुलमिल कर उसका एक मौखिक रूप सदा बरकरार रहता है, जो सरल, सहज, बोधगम्य और मधुर भी है।

मानक भाषा के रूप में हिन्दी

भाषा के स्थिर तथा सुनिश्चित रूप को मानक या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। भाषाविज्ञान कोश के अनुसार 'किसी भाषा की उस विभाषा को परिनिष्ठित भाषा कहते हैं जो अन्य विभाषाओं पर अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित कर लेती है तथा उन विभाषाओं को बोलने वाले भी उसे सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं।

मानक भाषा शिक्षित वर्ग की शिक्षा, पत्राचार एवं व्यवहार की भाषा होती है। इसके व्याकरण तथा उच्चारण की प्रक्रिया लगभग निश्चित होती है। मानक भाषा को टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसी भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता है। हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत तथा ग्रीक इत्यादि मानक भाषाएँ हैं।

किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहींतो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज है, अर्थात यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प नहो तब तो वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हो तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है, जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है। उस भाषा के लगभग समूचे क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग होता है।

मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलत: उसी वर्ग की भाषा होती है।

सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी

अनेक भाषाओं के अस्तित्त्व के बावजूद जिस विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है उसे सम्पर्क भाषा कहते हैं। एक ही भाषा परिपूरक भाषा और सम्पर्क भाषा दोनों ही हो सकती है। आज भारत में सम्पर्क भाषा के तौर पर हिन्दी प्रतिष्ठित होती जा रही है जबकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। सम्पर्क भाषा के रूप में जब भी किसी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा के पद पर आसीन किया जाता है तब उस भाषा से कुछ अपेक्षाएँ भी रखी जाती हैं।

जब कोई भाषा 'सपदहनं तिंदबं' के रूप में उभरती है तब राष्ट्रीयता या राष्ट्रता से प्रेरित होकर वह प्रभुता सम्पन्न भाषा बन जाती है। यह तो जरूरीनहीं

कि मातृभाषा के रूप में इसके बोलने वालों की संख्या अधिक हो पर द्वितीय भाषा के रूप में इसके बोलने वाले बहुसंख्यक होते हैं।

राजभाषा

जिस भाषा में सरकार के कार्यों का निष्पादन होता है उसे राजभाषा कहते हैं। कुछ लोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अन्तर नहीं करते और दोनों को समानार्थी मानते हैं। लेकिन दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। राष्ट्रभाषा सारे राष्ट्र के लोगों की सम्पर्क भाषा होती है जबकि राजभाषा केवल सरकार के कामकाज की भाषा है। भारत के संविधान के अनुसार हिन्दी संघ सरकार की राजभाषा है। राज्य सरकार की अपनी-अपनी राज्य भाषाएँ हैं। राजभाषा जनता और सरकार के बीच एक सेतु का कार्य करती है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की उसकी अपनी स्थानीय राजभाषा उसके लिए राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान का प्रतीक होती है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अपनी स्थानीय भाषाएँ राजभाषा हैं। आज हिन्दी हमारी राजभाषा है।

राष्ट्रभाषा

देश के विभिन्न भाषा-भाषियों में पारस्परिक विचार-विनिमय की भाषा को राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा को देश के अधिकतर नागरिक समझते हैं, पढ़ते हैं या बोलते हैं। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश के नागरिकों के लिए गौरव, एकता, अखंडता और अस्मिता का प्रतीक होती है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की आत्मा की संज्ञा दी है। एक भाषा कई देशों कीराष्ट्र भाषा भी हो सकती है, जैसे अंग्रेजी आज अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा कनाडा इत्यादि कई देशों की राष्ट्रभाषा है। संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो नहीं दिया गया है लेकिन इसकी व्यापकता को देखते हुए इसे राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में राजभाषा के रूप में हिन्दी, अंग्रेजी की तरह नकेवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा है, बल्कि उसकी भूमिका राष्ट्रभाषा केरूप में भी है। वह हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा है। महात्मागांधी जी के अनुसार किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम होय जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप में उपलब्ध हो। उनके अनुसार भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के निर्धारित अभिलक्षणों से युक्त है।

उपर्युक्त सभी भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इसलिए यह प्रश्न निरर्थक है कि राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा आदि में से कौन सर्वाधिक महत्त्व का है, जरूरत है हिन्दी को अधिक व्यवहार में लाने की।

भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में सम्पर्क भाषा की महत्ता असंदिग्ध है। इसी के मद्देनजर 'सम्पर्क भाषा (जनभाषा) के रूप में हिन्दी' शीर्षक इस अध्याय में सम्पर्क भाषा का सामान्य परिचय देने के साथ-साथ सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी के स्वरूप एवं राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा के अंत:सम्बन्ध पर भी विचारकिया गया है।

सम्पर्क भाषा–परिभाषा एवं सामान्य परिचय

भाषा की सामान्य परिभाषा में यह कहा जा चुका है कि 'भाषा मनुष्य के विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' सम्पर्क भाषा का आशय जनभाषा है। किसी क्षेत्र का सामान्य व्यक्ति प्रचलित शैली में जो भाषा बोलता है वह जनभाषा है। दूसरे शब्दों में क्षेत्र विशेष की संपर्क भाषा ही जनभाषा है। इसलिए जरूरी नहीं कि जनभाषा शुद्ध साहित्यिक रूप वाली ही हो या वह व्याकरण के नियम से बंधी हो।

सम्पर्क भाषा या जनभाषा वह भाषा होती है जो किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश के ऐसे लोगों के बीच पारस्परिक विचार-विनिमय के माध्यम का काम करे जो एक दूसरे की भाषा नहीं जानते। दूसरे शब्दों में विभिन्न भाषा-भाषी वर्गों के बीच सम्प्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, वह सम्पर्क भाषा कहलाती है। इस प्रकार 'सम्पर्क भाषा' की सामान्य परिभाषा होगी–'एकभाषा-भाषी जिस भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सके, उसे सम्पर्क भाषा या जनभाषा (Link Language) कहते हैं।'

बकौल डॉ. पूरनचंद टंडन 'सम्पर्क भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो समाज के विभिन्न वर्गों या निवासियों के बीच सम्पर्क के काम आती है। इस दृष्टि से भिन्न-भिन्न बोली बोलने वाले अनेक वर्गों के बीच हिन्दी एक सम्पर्क भाषा है और अन्य कई भारतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वालों के बीच भी सम्पर्क भाषा है।' डॉ. महेन्द्र सिंहराणा ने सम्पर्क भाषा को इन शब्दों में परिभाषित किया है–'परस्पर अबोधगम्यभाषा या भाषाओं की उपस्थिति के कारण

जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से दो व्यक्ति, दो राज्य, कोई राज्य और केन्द्र तथा दो देश सम्पर्क स्थापित कर पाते हैं, उस भाषा विशेष को सम्पर्क भाषा या सम्पर्क साधक भाषा (Contact Language or Interlink Language) कहा जा सकता है।' इस क्रम में डॉ. दंगल झाल्टेद्वारा प्रतिपादित परिभाषा उल्लेखनीय है–'अनेक भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य, राज्य-केन्द्र तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है, उसे सम्पर्क भाषा (Contact or Inter Language) की संज्ञा दी जा सकती है।' उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सम्पर्क भाषा मात्र दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्क का माध्यम नहीं बनती, जो एक-दूसरे की भाषा से परिचित नहीं है, अपितु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी राज्यों के बीच तथा केन्द्र और राज्यों के बीच भी सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है।

हिन्दी ने पिछले हजार वर्षों में विचार-विनिमय का जो उत्तरदायित्व निभाया है वह एक अनूठा उदाहरण है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी पहले 'राष्ट्रभाषा' कहलाती थी, बाद में इसे 'सम्पर्क भाषा' कहा जाने लगा और अब इसे 'राजभाषा' बना देने से इसका क्षेत्र सीमित हो गया है। वस्तुतः यह उनका भ्रम है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी सदियों से सम्पर्क भाषा और राष्ट्रभाषा एक साथ रही है और आज भी है। भारत की संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर, 1949 को इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लेने से उसके प्रयोग का क्षेत्र और विस्तृत हुआ है। जैसे बंगला, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि को क्रमशः बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल आदि की राजभाषा बनाया गया है। ऐसा होने से क्या उन भाषाओं का महत्त्व कम हो गया है? निश्चय ही नहीं, बल्कि इससे उन सभी भाषाओं का उत्तरदायित्व और प्रयोग क्षेत्र पहले से अधिक बढ़ गया है। जहाँ पहले केवल परस्पर बोलचाल में काम आती थी या उसमें साहित्य की रचना होती थी, वहीं अब प्रशासनिक कार्य भी हो रहे हैं। यही स्थिति हिन्दी की भी है। इस प्रकार हिन्दी सम्पर्क और राष्ट्रभाषा तो है ही, राजभाषा बनाकर इसे अतिरिक्त सम्मान प्रदान किया गया है। इस प्रसंग में डॉ. सुरेश कुमार का कथन बहुत ही प्रासंगिक है–'हिन्दी को केवल सम्पर्क भाषा के रूप में देखना भूल होगी। हिन्दी, आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्भव काल से मध्यदेश के निवासियों के सामाजिक सम्प्रेषण तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक

अभिव्यक्ति की भाषा रही है और अब भी है। भाषा-सम्पर्क की बदली हुई परिस्थितियों में (जो पहले फारसी-तुर्की-अरबी तथा बाद में मुख्य रूप से अंग्रेजी के साथ सम्पर्क के फलस्वरूप विकसित हुई) तथा स्वतंत्र भारतीय गणराज्य में सभी भारतीय भाषाओं को अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्र में व्यावसायिक और सांस्कृतिक व्यवहार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग में लाने के निर्णय के बाद, हिन्दी का सम्पर्क भाषा प्रकार्य, गुण और परिमाण की दृष्टि से इतना विकसित हो गया है कि उसके सम्बन्ध में चिन्तन तथा अनुवर्ती कार्य, एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आवश्यकता बन गए हैं।' वास्तव में भाषा सम्पर्क की स्थिति ही किसी सम्पर्क भाषा के उद्‌भव और विकास को प्रेरित करती है या एक सुप्रतिष्ठित भाषा के सम्पर्क प्रकार्य को संपुष्ट करती है। हिन्दी के साथ दोनों स्थितियों का सम्बन्ध है। आन्तरिक स्तर पर हिन्दी अपनी बोलियों के व्यवहारकर्ताओं के बीच सम्पर्क की स्थापना करती रही है और अब भी कर रही है, तथा बाह्य स्तर पर वह अन्य भारतीय भाषा भाषी समुदायों के मध्य एकमात्र सम्पर्क भाषा के रूप में उभर आई है जिसके अब विविध आयाम विकसित हो चुके हैं। कुल मिलाकर हिन्दी का वर्तमान गौरवपूर्ण है। उसकी भूमिका आज भी सामान्य-जन को जोड़ने में सभी भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक कारगर है।

मातृभाषा के रूप में हिन्दी

भारतीय मातृ-प्रधान संस्कृति के ही समान भाषा को विशेष महत्त्व देने के लिए मातृभाषा नाम दिया गया है। भाषा मानव की उन्नति का सर्वप्रथम और महत्त्वपूर्ण माध्यम है। भाषा के आधार पर समाज का विकास हुआ है और समाज के आधार पर भाषा का विकसित रूप सामने आया है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी भाषा से आत्मीय रूप से जुड़ा होता है। इस भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति का व्यक्तित्त्व विकसित होता है और उसके जीवन को गतिशीलता मिलती है। व्यक्ति ऐसी ही भाषा के माध्यम से परिवार और समाज में अपना स्थान बनाता है। मनुष्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक भाव, विचार ऐसी भाषा के ही आधार पर विकसित होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि जन्म के बाद बालक जिस भाषायी परिवेश में रहकर बाल्यपन में विचारों का आदान-प्रदान करता है, उसे भाषा की संज्ञा देनी चाहिए। माना एक बालक अवधी क्षेत्र में रहकर बड़ा होता है तो उसकी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति की भाषा अवधी होगी। यह सच है कि अवधी देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण

बोली है। इसे ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि उस बालक की मातृभाषा अवधी नहीं, हिंदी है।

मनोवैज्ञानिक रूप में इसके बारे में जब विचार करते हैं तो यह सहजता से समझ में आ जाता है कि अवधी भाषा क्षेत्र में जन्म लेने वाला बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है, वैसे-वैसे इस भाषा में भावाभिव्यक्ति कराने लगता है। इसका प्रयोग बोलचाल या सामान्य व्यवहार में प्रभावी रूप में होता है। जब वह विद्यालय जाने के योग्य होता है तो मुख्यत: हिंदी भाषा सीखता है। अवधी अवध प्रांत में प्रयुक्त जनपदीय भाषा है। पश्चिमी हिंदी की एक संरचना को वह सरलता से ग्रहण कर लेता है। वह समाज, शिक्षा, राजनीति और धर्म आदि के क्षेत्रों में गतिशील रहने के लिए हिंदी भाषा को ही अपनाता है। ऐसी प्रक्रिया भाषा और बोली के सहज सम्बन्धों के कारण होती है, इसी प्रकार की बातें हिंदी या इसकी किसी भाषा की विभिन्न बोलियों के बारे में भी कही जा सकती है।

मातृभाषा से हमारा आशय इस भाषा से है जिससे मनुष्य जन्म के बाद परिवार या अपने घर के आसपास के बोलचाल में धीरे-धीरे सीखता है मातृभाषा को मनुष्य की मूल या प्रारंभिक भाषा के रूप में देखा जाता है।

यहां यह भी ध्यातव्य है कि यदि कोई हिन्दी भाषा-भाषी परवर्ती समय में जर्मन या अंग्रेजी भाषा सीखकर अपने जीवन में विशेष उन्नति कर ले तो उसकी मातृभाषा अंग्रेजी या जर्मन न होकर हिंदी ही होगी। यह भी निर्विवाद सत्य है कि मातृभाषा में भावाभिव्यक्ति सरल है और अधिक प्रभावी होती है। मातृभाषा से भली भांति अवगत होने के पश्चात् किसी भी अन्य भाषा का शिक्षण सरल होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी को मातृभाषा के रूप में याद करते हुए इसे 'निजभाषा' की संज्ञा दी है।

मातृभाषा के रूप में हिन्दी की उपादेयता

1. शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम–किसी बच्चे को उसकी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना काफी सहज होता है। क्योंकि बच्चा उस भाषा को पूर्णरूपेण बोलता, लिखता और समझता है। यही वजह है कि बालक किसी अन्य भाषा को आसानी से नहीं रख सकता। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्रभावकारी एवं स्थायी भी होती है। शिक्षक जितने सरल तथा प्रभावकारी रूप से अपने विचारों को प्रकट करता है। छात्र भी उतनी आसानी तथा रुचि से उन्हें ग्रहण करता है। समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित आदि सभी विषय मातृभाषा के माध्यम से सिर्फ

सरल बनाए जा सकते हैं, बल्कि उनका शिक्षण लाभकारी एवं स्थायी भी होगा। अपरिपक्व मस्तिष्क वाले छात्र विदेशी भाषा में अधूरा ज्ञान रखने के कारण उसके माध्यम से किसी भी विषय को सुंदर तरीके से समझने एवं ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। अपनी मातृभाषा में अनुसंधान करने के कारण ही आज अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, जर्मनी, फ्रांस, जापान और चीन इतनी प्रगति कर सके हैं जिससे इनकी गिनती विश्व के विकसित देशों में की जाती है। इन सभी देशों में सम्पूर्ण विषयों की शिक्षा मातृभाषा अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, जापानी और चीनी भाषा में दी जाती है। परिणामस्वरूप उन देशों में टेक्नोलॉजी, विज्ञान, साहित्य तथा अन्य विषय अपनी सर्वोच्चता पर हैं। इसके प्रतिकूल हमारे देश में विदेशी भाषा का माध्यम रहने के कारण आज भी इन विषयों का अपेक्षित विकास नहीं हुआ है। शिक्षा-क्षेत्र में मातृभाषा की उपेक्षा न सिर्फ व्यक्ति को कमजोर बनाती है, बल्कि इससे देश का प्रगति भी काफी धीमी पड़ जाती है। यहां यह भी ज्ञातव्य है कि छात्रों का अधिकांश समय हमारे देश में अंग्रेजी सीखने में ही चला जाता है। अन्य विषयों में वे स्वभावत: पिछड़ जाते हैं। साथ ही विदेशी भाषा में पूर्ण निपुण न होने के कारण विषयों को पूर्ण रूप से समझ भी नहीं पाते। अतएव निर्विवाद रूप से शिक्षा का सरलतम एवं सर्वोत्तम साधन मातृभाषा है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी कहा है–'अंग्रेजी भाषा के घूंघट में छिपी हुई विद्या, स्वभाव से हमारे मन की सहवर्तनी होकर नहीं चल सकती। यही वजह है कि हममें से अधिकांश लोगों को जितनी शिक्षा मिलती है, उतनी विद्या नहीं मिलती।' इसी तरह गांधीजी के शब्द भी इस महत्व को उजागर करते हैं–'बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उसके मानसिक विकास के लिए उसके ऊपर मातृभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा लादना मैं मातृभूमि के विरुद्ध पाप समझता हूं।' इन कथनों से भी इस महत्व की पुष्टि होती है।

2. विचार संप्रेषण का सरलतम साधन–विचार प्रकट करने का मातृभाषा सरलतम साधन है, वस्तुत: शिशु जन्म के कुछ ही दिनों बाद भाषा सीखने लगता है। यह उसकी अनुकरण की स्थिति होती है। प्रारंभ में वह अपने मां-बाप तथा परिवार के अन्य सदस्यों का अनुकरण करके भाषा सीखता है। तत्कालीन जीवन से संबंधित तथा रुचि की वस्तुओं के नाम का उच्चारण करता है। मां, दूध, पानी, खाना, कौआ, बिल्ली, कुत्ता, खिलौना, आदि ऐसी वस्तुएं एवं प्राणी हैं जिनसे उसका नजदीक का संबंध होता है अथवा जिनके प्रति उनकी रुचि होती है। इनके नाम वह बार-बार लेना पसंद करता है। बच्चों में सामान्य

रूप से आवृत्ति की यह मनोवृत्ति पाई जाती है। इस प्रकार प्रारंभिक जीवन, आवश्यकताओं तथा रुचि से संबंधित शब्दोंवाली भाषा से शिशु का संबंध अत्यंत निकट का हो जाता है। आगे चलकर इस भाषा से वह बड़ी सुगमता से अपने विचारों को प्रकट कर सकता है। इतना ही नहीं उसके विचार तथा भाव भी इसी भाषा में उठते तथा स्वरूप ग्रहण करते हैं। जन्म और जीवन के संबंध रहने के कारण मातृभाषा मानव के जीवन एवं विकास का आवश्यक अभिन्न अंग बन जाती है। फलस्वरूप जितनी सुगमता से मानव अपनी मातृभाषा में भाव एवं विचार अभिव्यक्त कर सकता है, उतनी सुगमता से किसी भी अन्य भाषा में नहीं। सत्य तो यह है कि मातृभाषा का हमारे जीवन से अन्योन्याश्रित संबंध है। मातृभाषा मानव के अचेतन मन के तल तक पहुंच जाता है। जब अत्यधिक विपत्ति अथवा संकट में वह पड़ जाता है, तब अनायास ही उसके मुंह से त्राण के शब्द मातृभाषा में ही निकल जाते हैं। स्पष्ट है कि मातृभाषा के समान निपुणता किसी भी अन्य भाषा में नहीं प्राप्त हो सकती। अत: 'अभिव्यक्ति के सरलतम साधन' के रूप में मातृभाषा का महत्व निर्विवाद है।

3. सांस्कृतिक विकास में सहायक–मातृभाषा का महत्व उसके बोलनेवाले समाज की संस्कृति के विकास में है। वस्तुत: किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक एवं मानवीय उपलब्धियां उसकी मातृभाषा के साहित्य में प्रधान रूप से संग्रहीत होती हैं। अत: अपनी संस्कृति का समुचित ज्ञान प्राप्त करने तथा उसके साथ आंतरिक संबंध स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि अपनी मातृभाषा में उपलब्ध साहित्य का अध्ययन एवं मनन-चिंतन किया जाए। इस कार्य को पूर्ण दक्षता तथा निपुणता से करने के लिए मातृभाषा में निष्णात होना आवश्यक है। इस प्रकार अपनी सामाजिक संस्कृति को समझने तथा उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि मातृभाषा के ज्ञान में पूर्ण दक्ष हुआ जाए। 'रामचरितमानस', 'महाभारत', 'कबीर-काव्य' आदि का ज्ञान मातृभाषा के माध्यम से ही पूर्णरूप से हो सकता है। सूर, तुलसी, कबीर, प्रसाद, दिनकर, पंत, निराला आदि महान् कवियों की कविताओं का वास्तविक आनंद हिन्दी का पूर्ण ज्ञाता ही उठा सकता है। अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से इनकी आत्मा में प्रवेश पाना सर्वथा असंभव है। इस प्रकार हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वे अपनी मातृभाषा में निष्णात होकर ही अपनी संस्कृति से परिचित हो सकते हैं। इतना ही नहीं, वे अपनी मातृभाषा में प्रवीणता प्राप्त कर ही अपनी संस्कृति का उत्थान कर सकते हैं। मातृभाषा का अमृत डालकर ही अपनी संस्कृति को पल्लवित और पुष्पित

किया जा सकता है। स्पष्ट है कि मातृभाषा किसी भी राष्ट्र अथवा समुदाय की संस्कृति की संरक्षिका तो होती ही है, संवाहिका और उद्‌भाषक भी होती है।

4. सामाजिक विकास में सहायक–यह निर्विवाद है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अंदर वह विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान करता है और यह भाषा मुख्य रूप से मातृभाषा होती है। अतएव मानव सामाजिक जीवन में अपने विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान मातृभाषा द्वारा ही प्रभावपूर्ण ढंग से कर पाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मातृभाषा मानव के सामाजिक विकास में बहुत ही मूल्यवान रूप से सहायक है। नागरिकता तथा मानसिक विकास का भी सामाजिक जीवन से बहुत गहरा संबंध है। मानसिक विकास का आधार विचार-शक्ति है। दूसरी ओर विचार भाषा को जन्म देते हैं। इस प्रकार भाषा और विचार का बहुत अधिक संबंध है। हम यह भी सोचते हैं कि हमारा विचार केवल मातृभाषा ही में उत्पन्न होना चाहिये। नैतिकता तथा भाव-प्रकाशन शक्ति मातृभाषा ही प्रदान करती है। सामाजिक तथा नागरिक के गुणों के विकास में मातृभाषा का योग सर्वोच्च है। रायबर्न के विचार भी इस मान्यता को पुष्ट करते हैं–'वे समस्त गुण जो एक अच्छे नागरिक के लिए आवश्यक हैं–स्पष्ट विचार-क्षमता, स्पष्ट अभिव्यक्ति, भावना, विचार एवं क्रिया की सत्यता, भावात्मक एवं सृजनात्मक जीवन की पूर्णता–इन सभी गुणों का विकास तभी संभव है जब केवल भावात्मक तथा बौद्धिक जीवन के आधार मातृभाषा पर पूर्ण ध्यान दिया जाए।' अत: मातृभाषा का सामाजिक महत्व भी सिद्ध ही है।

5. व्यक्तित्त्व के विकास में सहायक–मातृभाषा का बच्चे के जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। वस्तुत: मातृभाषा के अध्ययन से बच्चों के व्यक्तित्त्व का विकास होता है। मातृभाषा की शिक्षा के द्वारा बच्चों में आत्मप्रकाशन की क्षमता का आश्चर्यजनक रूप से विकास होता है। साथ ही दूसरे के प्रकाशित भावों और विचारों को समझने की क्षमता भी प्राप्त होती है। यह भी सत्य है कि मातृभाषा के माध्यम से आत्म प्रकाशन सर्वोत्तम ढंग से हो सकता है। आत्मप्रकाशन में सक्षम तथा विचार-ग्रहण में प्रवीण बच्चों के अंदर आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। यह आत्मविश्वास का गुण व्यक्तित्त्व को प्रशस्त बनाने एवं विकसित करने के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस गुण से संपन्न बच्चे अपने विचारों को निर्भीक होकर प्रकट करते हैं तथा उनके अंदर के सुषुप्त नैसर्गिक गुणों का सुंदर ढंग से विकास होता है। इतना ही नहीं, अपनी तथा अन्य जातियों की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान तो भाषा के माध्यम से ही होता है। मातृभाषा

इस दिशा में सहायक तो होती ही है, साथ-साथ समाज-सम्मत आचरण को समझने में भी सहायक होती है। इसके फलस्वरूप बच्चों का सामाजिक व्यक्तित्त्व भी स्वाभाविक रूप से विकसित होता चलता है। अत: मातृभाषा की शिक्षा का महत्व स्वयंसिद्ध है।

6. मानसिक एवं बौद्धिक विकास का साधन–मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानसिक एवं बौद्धिक विकास का आधार विचार-शक्ति है। विचार और विवेक के सहारे ही मानव की बुद्धि विकसित होती है। विचार के द्वारा ही मानव-बुद्धि को निश्चित दिशा एवं गति प्राप्त होती है। इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि विचार तथा भाषा का अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। विचार के गर्भ से भाषा का जन्म होता है तथा भाषा के शरीर में विचार प्रकट होता है। मातृभाषा का संबंध व्यक्ति के जन्म से ही होता है, अत: उसके विचार सामान्यत: मातृभाषा में ही उद्‌भूत होते हैं। जिसकी भाषा जितनी ही प्रसशक्त होगी, विचार भी उसके उतने ही सुदृढ़ एवं प्रखर होंगे। महात्मा गांधी के विचार के अनुसार, 'मानसिक शक्ति के लिए भाषा उतनी ही आवश्यक है, जितना शिशु के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध। मातृभाषा ही ऐसी भाषा हो सकती है।' मातृभाषा के माध्यम से बच्चे ज्ञान-विज्ञान, साहित्य एवं अन्य विषयों का अध्ययन करने और समझने में समर्थ होते हैं। इससे उनका मानसिक एवं बौद्धिक विकास होता है।

7. आंतरिक गुणवत्ता में सहायक–मातृभाषा का संबंध मानव के शैशवावस्था से होता है। इसी भाषा में वह बचपन में अपनी आवश्यकता तथा रुचि की वस्तुएं मांगता है। इसी भाषा के साथ जीवन का विकास, सामाजिक, पारिवारिक संबंध तथा कड़वे-मीठे अनुभव जुड़े हुए हैं। मां की प्रथम बोली इसी भाषा में फूटती है। मां-बाप तथा परिजन-समाज का स्नेह, दुलार-प्यार इसी भाषा के माध्यम से प्रकट होता है। अत: स्वाभाविक ही है कि इस भाषा के बोलनेवालों में सद्‌भाव एवं अपनापन का विकास हो। ऐसा देखा भी जाता है कि अपनी मातृभाषा में बोलनेवाले के प्रति हम अधिक आकर्षित होते हैं, अधिक अपनापन का अनुभव करते हैं। इस प्रकार मातृभाषा के सहारे हम समाज के सदस्यों के बीच सद्‌भावना एवं भावात्मक एकता का अनुभव करते हैं। वस्तुत: मातृभाषा भावात्मक सद्‌भावना एवं एकता के विकास में सक्रिय रूप से सहायक होती है। इसके अतिरिक्त अपनी मातृभाषा के साहित्य एवं कला-उपलब्धियों के प्रति भी आंतरिक एवं भावात्मक अनुराग उत्पन्न होता है। इससे मातृभाषा के साहित्य एवं कला के विकास की दिशा में भी हम प्रवृत्त होते हैं। स्पष्ट है कि मातृभाषा की

शिक्षा न केवल बच्चों के भावात्मक विकास में सहायक है, बल्कि उन्हें साहित्य एवं कला के क्षेत्र में सृजनात्मकता की ओर भी अग्रसर करती है।

अंत में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मातृभाषा का महत्व मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास के लिए सर्वोपरि है। वस्तुतः मातृभाषा मात्र एक विषय नहीं है, बल्कि वह तो सभी विषयों में प्रवेश का साधन है। उसके आधार पर ही तो अन्य सभी विषयों के महल खड़े होते हैं। अतएव मातृभाषा की शिक्षा का महत्व सर्वमान्य एवं सर्वोपरि है। इसी भाषा में तो शिशु विचार करता तथा स्वप्न देखता है। यह मानवीय संस्कृति एवं शिक्षा की प्राण-धारा है।

8. राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक–विश्व में हिन्दी तीसरी सबसे ज्यादा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारत के अतिरिक्त फिजी, मॉरिशस, गुयाना, त्रिनीदाद, बारबाडोस, सूरीनाम, इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा और दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी बोली और समझी जाती है। भारत में हिन्दी सर्वाधिक लोगों द्वारा व्यवहृत की जाने वाली भाषा है। हिन्दी भारत के बड़े शहरों और राज्यों की मातृभाषा है, यथा–उत्तर प्रदेश उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली। साथ ही संविधान के अनुसार यह भारत की राष्ट्रभाषा भी है। अतः राष्ट्रभाषा के रूप में इसके क्षेत्र तथा उत्तरदायित्व दोनों बहुत ही विस्तृत हो जाते हैं। यह समस्त देश के विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों एवं राज्यों के बीच संपर्क-भाषा का भी रूप ले लेती है। प्रशासन में तथा अन्य राज्यों में पत्र-व्यवहार में भी इसको प्रश्रय प्राप्त है। किंतु, खेद का विषय है कि संविधान सम्मत अवधि (1965 ई.) समाप्त होने पर भी हिन्दी को पूर्ण रूप से राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं दिया गया। केंद्रीय सरकार के एक परिपत्र के द्वारा अंग्रेजी को असीमित काल तक अंतर्राज्यीय संपर्क की भाषा बने रहने की छूट दे दी गई। फिर भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान तो संविधानतः प्राप्त है ही। इसे टाला जा सकता है, बिल्कुल इसको खत्म नहीं किया जा सकता। हां, तो राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का दायित्व और भी गुरुतर हो जाता है। इसे विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों के बीच एकसूत्रता स्थापित करने की पवित्र संकल्पना पूरी करनी है। हिन्दी मातृभाषा वाले क्षेत्रों के लोगों का भी यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने अंदर सहिष्णुता, उदारता और सहृदयता के गुणों का विकास करें। इन्हीं गुणों के द्वारा वे अन्य भाषाभाषी क्षेत्रों की जनता का हृदय जीत सकेंगे तथा उनके हृदय से

हिन्दी साम्राज्यवाद का भ्रम दूर कर सकेंगे। इस प्रकार मातृभाषा हिन्दी राष्ट्रीय एकता, सद्भावना, एकात्मकता तथा सहृदयता के संकल्प को भी पूर्ण करके राष्ट्रभाषा के सच्चे गौरव को प्राप्त कर सकेगी। हिन्दी मातृभाषा के शिक्षण को इस दिशा की ओर अग्रसर करना हिन्दीभाषी के लिए लाभप्रद होगा।

9. व्यक्तित्त्व के विकास में अमूल्य वस्तु है–हम सभी इस सामान्य सत्य से परिचित हैं कि शारीरिक विकास के लिए संतुलित भोजन अत्यावश्यक है। वस्तुतः भोजन स्थूल शारीरिक विकास का आधार है। इसके बिना शारीरिक विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती। किंतु, मात्र भोजन ही शारीरिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं है। सम्यक् शारीरिक विकास के लिए तो निद्रा एवं आंतरिक प्रसन्नता की भी उतनी ही आवश्यकता होती है। एक पागल मनुष्य भोजन तो करता ही है, फिर भी उसकी शारीरिक शक्ति का न तो सदुपयोग किया जा सकता है और न उसे क्षीण होने से रोका जा सकता है। 'अतः मातृभाषा द्वारा वह क्षमता प्राप्त होती है जिससे साहित्य, कहानी, कविता, मनोरंजक साहित्य, विज्ञान आदि का अध्ययन एवं मनन-चिंतन करके प्रसन्न चित्तता एवं निश्चिंत निद्रा के वरदान प्राप्त किए जा सकते हैं। मातृभाषा आनंद, प्रसन्नता एवं ज्ञान का एक स्रोत है, मातृभाषा दक्ष बच्चों को उसके साहित्य की ओर प्रवृत्त करती है तथा साहित्य का अध्ययन उन्हें प्रसन्नता तथा ज्ञान का वरदान देता है। इस प्रकार मातृभाषा का ज्ञान उनके शारीरिक एवं मानसिक दोनों पक्षों का विकास करने में सक्षम है।

मातृभाषा के रूप में मानक हिन्दी का प्रयोजन

यह मानवीय एवं सर्वविदित तथ्य है कि कोई भी भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। लेकिन इसका निष्कर्ष यह बिल्कुल नहीं कि भाषा को सीखने की जरूरत ही नहीं। घरेलू वातावरण में सीखी गई पारिवारिक भाषा पूर्ण रूप से शुद्ध, परिमार्जित व व्याकरण-सम्मत हो यह आवश्यक नहीं। भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा को शुद्ध, व्याकरण-सम्मत व परिमार्जित होना आवश्यक है। अतः बच्चे के विकास के लिए भाषा की शिक्षा आवश्यक है। भाषा की शिक्षा से आवश्यक है उसका मौखिक तथा लिखित ज्ञान। बालक के सुनने, बोलने, पढ़ने एवं लिखने के कौशल को विकसित करना भाषा-शिक्षण के मुख्य उद्देश्य हैं। फिर भी हम निम्न रूप से भाषा शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं–

1. ग्राह्यात्मक उद्देश्य–ग्राह्य शब्द का अर्थ है ग्रहण करना, अर्थात् बच्चों में उन कौशलों का विकास करना जो किसी के द्वारा व्यक्त, बोले अथवा लिखे भावों को ग्रहण कर सकें। इस प्रकार–

(क)छात्रों को इस योग्य बनाना कि सुनकर विचारों को ग्रहण कर सकें। इसमें उन्हें ध्वनि, शब्द, स्वराघात, बलाघात, एकाग्रता आदि के प्रति जागरूक किया जाएगा।

(ख)पढ़कर विचारों को ग्रहण करना सिखाना, इसमें छात्रों के शब्द-भंडार में वृद्धि करना, शब्दों को पढ़कर अर्थ ग्रहण करना, क्षमता का विकास करना, भाषा का शुद्ध उच्चारण करना, मुहावरे व लोकोक्तियों व पाठ का केन्द्रीय भाव ग्रहण करना आदि है। इससे छात्रों की चिंतन-मनन की शक्ति का भी विकास होता है।

2. अभिव्यंजनात्मक उद्देश्य–विद्यार्थियों को इस लायक बनाना कि वह अपनी बात दूसरों तक पहुंचा सकें ही, राष्ट्रभाषा का प्रधान प्रयोजन है। इसमें इस प्रकार अभिव्यक्ति के स्तर पर दो उद्देश्य हैं–

(क) बोलकर विचारों की अभिव्यक्ति का विकास करना, विचारों का आदान-प्रदान ही सामाजिकता है। अत: छात्र को इस योग्य बनाना कि वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति में शुद्ध बोले। शब्दों का सही चयन करे तथा बोलने के शिष्टाचार का पालन करते हुए उचित गति व हाव-भाव के साथ बोले। अपनी भाषा को प्रभावशाली बनाने हेतु मुहावरे-लोकोक्तियां व सूक्तियों का प्रयोग करे। इसमें क्रमबद्धता का ध्यान रखना भी नितांत आवश्यक है।

(ख) लिखित रूप से विचाराभिव्यक्ति की क्षमता का विकास करना। भाषा का लिखित रूप उसे स्थायित्व प्रदान करता है। बच्चों में इस क्षमता का विकास करना कि वे शुद्ध व स्पष्ट अक्षरों को लिख सकें। लेखन में क्रमबद्धता का ध्यान रखना तथा प्रसंगानुकूल शब्द, मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग करना मुख्य उद्देश्य है।

3. समालोचनात्मक उद्देश्य–समालोचना का तात्पर्य है साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात उसके गुण-दोषों के विवेचन की क्षमता। उच्च प्राथमिक स्तर पर इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

4. साहित्य की ओर छात्रों को आकर्षित करना–साहित्य ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विद्यार्थियों की रुचि की दिशा तय की जाती है। इसके

लिए छात्रों में अतिरिक्त पठन, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने की आदतों का विकास करना है। इससे छात्र विद्यालय में होने वाली अन्य गतिविधियों में भाग लेने के प्रति अभिप्रेरित होते हैं। कविता-वाचन, वाद-विवाद, भाषण, नाटक आदि से इस उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

5. सराहना करने की क्षमता का विकास—इससे छात्रों की साहित्यिक रुचि विकसित की जाती है। छात्र किसी भी साहित्यकार की कृति का अध्ययन करके इस योग्य बने जिससे उसके शब्द चुनाव, कला-भाव व शैली की प्रशंसा कर सके। इसमें छात्र कविता का हाव-भाव सहित वाचन कर सकें तथा घटना के आधार पर कहानी को समझ सकें।

6. सृजनात्मक उद्देश्य—सृजन का आशय है नई मौलिक रचना करना। अध्यापक का कर्तव्य है कि बच्चों में इस क्षमता का विकास करे जिससे वे चिंतन-मनन करके मौलिक रूप से लिख सकें। यही वजह है कि इस क्षमता के अभाव में दसवीं कक्षा तक के छात्र निबंध रट तो लेते हैं, परन्तु अपने आप किसी भी विषय पर मौलिक रूप से लिखने में पंगु हैं। इससे छात्रों में आत्मविश्वास तथा लेखन के प्रति रुझान उत्पन्न होता है। इसके लिए अध्यापक छात्रों से कहानी, कविता, पत्र, निबंध, अनुच्छेद, भावपल्लवन इत्यादि कार्य करवा सकता है। आज के भाषा शिक्षण में इस उद्देश्य का ध्यान नहीं रखा जाता है।

7. सद्वृत्तियों का विकास करना—शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों में सद्गुणों व सद्वृत्तियों का विकास करना ही है। साहित्य में अभिरुचि के पश्चात् उनमें देश-प्रेम, राष्ट्रीय भावना, दया, प्रेम एवं संवेदनशीलता का विकास होता है।

इन उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही भाषा की पाठ्य-पुस्तक की रचना की जाती है। अध्यापक का यह प्रयास होना चाहिए कि वह शिक्षण के समय छात्रों को इन उद्देश्यों की सम्प्राप्ति में मदद करें। इसके लिए छात्रों को सस्वर वाचन करवाना, प्रश्नोत्तर करना, चित्र का वर्णन करवाना, प्रश्न पूछने के लिए छात्रों को प्रेरित कर सकते हैं। लिखित के लिए सुंदर से सुंदर अक्षर लिखना, लिखित रूप से उल्लेख करना, प्रश्नों का लिखित उत्तर देना, व्याख्यान, भावपल्लवन, संक्षिप्तीकरण व अनुच्छेद लेखन का अभ्यास करवाना चाहिए। वास्तव में अध्यापक को शिक्षण कार्य करवाते समय उद्देश्यों का ध्यान रखना परम आवश्यक है।

राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के रूप में हिन्दी

'राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी' शीर्षक इस लेख में राजभाषा एवंराष्ट्रभाषा का सामान्य परिचय व उनके स्वरूप की चर्चा की गई है। इसकेअलावा राजभाषा की विशेषताएँ एवं उसके प्रयोग क्षेत्र पर भी सविस्तार विचारकिया गया है।

समाज में जिस भाषा का प्रयोग होता है साहित्य की भाषा उसी का परिष्कृत रूप है। भाषा का आदर्श रूप यही है जिसमें विशाल समुदाय अपने विचार प्रकट करता है। अर्थात् वह उसका शिक्षा, शासन और साहित्य की रचना के लिए प्रयोग करता है। इन्हीं कारणों से जब भाषा का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत होकर समस्त राष्ट्र में व्याप्त हो जाता है तब वह भाषा 'राष्ट्रभाषा' कहलाती है।

'राष्ट्रभाषा' का सीधा अर्थ है राष्ट्र की वह भाषा, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र में विचार विनिमय एवं सम्पर्क किया जा सके। जब किसी देश में कोई भाषा अपने क्षेत्र की सीमा को लाँघकर अन्य भाषा के क्षेत्रों में प्रवेश करके वहाँ के जन मानस के भाव और विचारों का माध्यम बन जाती है तब वह राष्ट्रभाषा के रूप में स्थान प्राप्त करती है। वही भाषा सच्ची राष्ट्रभाषा हो सकती है जिसकी प्रवृत्ति सारे राष्ट्र की प्रवृत्ति हों जिस पर समस्त राष्ट्र का प्रेम हो। राष्ट्र के अधिकाधिक क्षेत्रों में बोली जाने वाली तथा समझी जाने वाली भाषा ही राष्ट्रभाषा कहलाती है। राष्ट्रभाषा में समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने, राष्ट्रीय भावना को जागृत करने तथा राष्ट्रीय गौरव की भावना को संवहन करने की शक्ति होती है। राष्ट्रभाषा में समस्त राष्ट्र के जन-जीवन की आशाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं एवं आदर्शों को चित्रित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। एक देश में कई भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु उनमें से किसी एक भाषा को ही राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाता है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र के बहुसंख्यक लोगों के द्वारा समझी और बोली जाने वाली भाषा होती है।

'राजभाषा' का सामान्य अर्थ है–राजकाज की भाषा। दूसरे शब्दों में जिस भाषा के द्वारा राजकीय कार्य सम्पादित किए जाएँ वही 'राजभाषा' कहलाती है। भारत जैसी जनतंत्रत्मक प्रणाली में दोहरी शासन पद्धति होती है–1. केन्द्र की शासन पद्धति और 2. राज्य की शासन पद्धति। इस कारण राजभाषा की स्थिति भी दो प्रकार की होती है। प्रथम केन्द्रीय अथवा संघ की राजभाषा तथा द्वितीय

राज्यों की राजभाषा। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'राजभाषा' को परिभाषित करते हुए कहा है–'राजभाषा उसे कहते हैं जो केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा पत्र-व्यवहार, राजकाज और सरकारी लिखा-पढ़ी के काम में लाई जाए।'

उल्लेखनीय बात यह है कि संविधान में 'राष्ट्रभाषा' शब्द का कहीं प्रयोग नहीं किया गया है। संविधान के भाग-17 का शीर्षक है 'राजभाषा'। इसका अध्याय-1 'संघ की भाषा' के विषय में है। इसके अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा का उल्लेख है और अनुच्छेद 344 'राजभाषा' के सम्बन्ध में आयोग और संसद की समिति के बारे में है। अध्याय-2 का शीर्षक है–'प्रादेशिक भाषाएँ', इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 345 'राज्य की राजभाषा या राजभाषाएँ' सम्बन्धी है, अनुच्छेद 346 'एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रदि की राजभाषा' विषयक है। इन अनुच्छेदों में कहीं किसी भाषा को 'राष्ट्रीय भाषा' भी नहीं कहा गया। परन्तु उसके अनुच्छेद 351में हिन्दी के 'राष्ट्रभाषा' रूप की ही कल्पना की गई है। राजभाषा आयोग की सिफारिश पर जो वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दवली आयोग बना, उसने शब्दावली इस प्रकार तैयार की है कि वह केवल हिन्दी भाषा के लिए ही काम न आए बल्कि उसका प्रयोग सामान्यत: अन्य भाषाओं में भी हो सके। जिन दिनों संविधान सभा में भाषा के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा हुई, अनेक सदस्यों ने हिन्दी के लिए राष्ट्रभाषा शब्द का प्रयोग किया। इससे संविधान सभा के सदस्यों की भावना का पता चलता है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी

हिन्दी का लगभग एक हजार वर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी ग्यारहवीं शताब्दी से ही प्राय: अक्षुण्ण रूप से राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही है। चाहे राजकीय प्रशासन के स्तर पर कभी संस्कृत, कभी फरासी और बाद में अंग्रजी को मान्यता प्राप्त रही, किन्तु समूचे राष्ट्र के जन-समुदाय के आपसी सम्पर्क, संवाद-संचार, विचार-विमर्श, सांस्कृतिक ऐक्य और जीवन-व्यवहार का माध्यम हिन्दी ही रही।

ग्यारहवीं सदी में हिन्दी के आविर्भाव से लेकर आज तक राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की विकास परम्परा को मुख्यत: तीन सोपानों में बाँटा जा सकता है–आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। आदिकाल के आरम्भ में तेरहवींसदी तक भारत में जिन लोक-बोलियों का प्रयोग होता था, वे प्राय:

संस्कृत की उत्तराधिकारिणी प्राकृत और अपभ्रंश से विकसित हुई थीं। कहीं उन्हें देशी भाषा कहा गया, कहीं अवहट्ट और कहीं डींगल या पिंगल। ये उपभाषाएँ बोलचाल, लोकगीतों, लोक-वार्त्ताओं तथा कहीं-कहीं काव्य रचना का भी माध्यम थीं। बौद्ध मत के अनुयायी भिक्षुओं, जैन-साधुओं, नाथपंथियों जोगियों और महात्माओं ने विभिन्न प्रदेशों में धूम-धूम कर वहाँ की स्थानीय बोलियों या उपभाषाओं में अपने विचार और सिद्धान्तों को प्रचारित-प्रसारित किया। असम और बंगाल से लेकर पंजाब तक और हिमालय से लेकर महाराष्ट्र तक सर्वत्र इन सिद्ध-साधुओं, मुनियों-योगियों ने जनता के मध्य जिन धार्मिक-आध्यात्मिक-सांस्कृतिक चेतना का संचार किया उसका माध्यम लोक-बोलियाँ या जन-भाषाएँ ही थीं, जिन्हें पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, राहुल सांकृत्यायन तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने 'पुरानी हिन्दी' का नाम दिया है। इन्हीं के समानान्तर मैथिली-कोकिल विद्यापति ने जिस सुललित मधुर भाषा में राधाकृष्ण-प्रणय सम्बन्धी सरस पदावली की रचना की, उसे उन्होंने 'देसिलबअना' (देशी भाषा) या 'अवहट्ट' कहा। पंजाब के अट्टहमाण (अब्दुर्रहमान)ने 'संदेश रासक' की रचना परवर्ती अपभ्रंश में की, जिसे पुरानी हिन्दी का ही पूर्ववर्ती रूप माना जा सकता है। रासो काव्यों की भाषा डींगल मानी गई जो वास्तव में पुरानी हिन्दी का ही एक प्रकार है। सबसे पहले इसी पुरानी हिन्दी को 'हिन्दुई', हिन्दवी', अथवा 'हिन्दी' के नाम से पहचान दी अमीर खुसरो ने।

वस्तुतः आदिकाल में लोक-स्तर से लेकर शासन-स्तर तक और सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र से लेकर साहित्यिक क्षेत्र तक हिन्दी राष्ट्रभाषा की कोटि की ओर अग्रसर हो रही थी।

मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से हिन्दी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक जनभाषा बन गई। भारत के विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों में सांस्कृतिक ऐक्य के सूत्र होने का श्रेय हिन्दी को ही है। दक्षिण के विभिन्न दार्शनिक आचार्यों ने उत्तर भारत में आकर संस्कृत का दार्शनिक चिन्तन हिन्दी के माध्यम से लोक-मानस में संचारित किया। दूसरे शब्दों में कहें तो हिन्दी व्यावहारिक रूप से राष्ट्रभाषा बन गई।

आधुनिक काल में हिन्दी भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक बन गई। वर्षों पहले अंग्रेजों द्वारा फैलाया गया भाषाई कूटनीति का जाल हमारी भाषा के लिए रक्षाकवच बन गया। विदेशी अंग्रेजी शासकों को समूचे भारत राष्ट्र में जिस

भाषा का सर्वाधिक प्रयोग, प्रसार और प्रभाव दिखाई दिया, वह हिन्दी थी, जिसे वे लोग हिन्दुस्तानी कहते थे। चाहे पत्रकारिता का क्षेत्र हो चाहे स्वाधीनता संग्राम का, हर जगह हिन्दी ही जनता के भाव-विनिमय का माध्यमबनी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी सरीखे राष्ट्र-पुरुषों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के ही जरिए समूचे राष्ट्र से सम्पर्क किया और सफल रहे। तभी तो आजादी के बाद संविधान-सभा ने बहुमत से 'हिन्दी' को राजभाषा का दर्जा देने का निर्णय लिया था।

भारत की राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने इंदौर में 20 अप्रैल1935 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चौबीसवें अधिवेशन की अध्यक्षता करतेहुए कहा था–'अंग्रेजी राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती। आज इसका साम्राज्य-सा जरूर दिखाई देता है। इससे बचने के लिए काफी प्रयत्न करते हुए भी हमारे राष्ट्रीय कार्यों में अंग्रेजी ने बहुत स्थान ले रखा है, लेकिन इससे हमें इस भ्रम में कभी न पड़ना चाहिए कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा बन रही है। इसकी परीक्षा प्रत्येक प्रान्तों में हम आसानी से करते हैं। बंगाल अथवा दक्षिण भारत को ही लीजिए, जहाँ अंग्रेजी का प्रभाव सबसे अधिक है। वहाँ यदि जनता की मार्फत हम कुछ भी काम करना चाहते हैं तो वह आज हिन्दी द्वारा भले ही नकर सकें, पर अंग्रेजी द्वारा कर ही नहीं सकते। हिन्दी के दो-चार शब्दों से हम अपना भाव कुछ तो प्रकट कर ही देंगे। पर अंग्रेजी से तो इतना भी नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो–चाहे कोई माने या न माने–राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।'

संविधान सभी द्वारा राजभाषा सम्बन्धी निर्णय होने के कुछ सप्ताह बाद ही एक समारोह के लिए तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने23 अक्तूबर, 1949 के अपने संदेश में लिखा था–'विधान परिषद् ने राष्ट्रभाषा के विषय में निर्णय कर लिया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कुछ व्यक्तियों को इस फैसले से दुरूख हुआ। कुछ संस्थानों ने भी इसका विरोध किया है। परन्तु जिस प्रकार और बातों में मतभेद हो सकता है, उसी प्रकार इस विषय में यदि मतभेद है और रहे तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विधान में कई ऐसी बातें हैं जिनसे सबका संतोष होना असंभव है। परन्तु एक बार यदि विधान में कोई चीज शामिल हो जाए तो उसको स्वीकार कर लेना सबका कर्तव्य है, कम-से-कम जब तक कि ऐसी स्थिति पैदा न हो जाए जिसमें सर्वसम्मति से

या बहुमत से फिर कोई तब्दीली हो सके। अब जबकि हिन्दी कोराष्ट्रभाषा की पदवी मिल गई है (यद्यपि कुछ वर्षों के लिए एक विदेशी भाषा के साथ-साथ उसको यह गौरव प्राप्त हुआ है), हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि राष्ट्रभाषा की उन्नति करे और उसकी सेवा करे जिससे कि सारे भारत में वह बिना किसी संकोच या संदेह के स्वीकृत हो। हिन्दी का पट महासागर की तरह विस्तृत होना चाहिए जिसमें मिलकर और भाषाएँ अपना बहुमूल्य भाग ले सकें। राष्ट्रभाषा न तो किसी प्रान्त की है न किसी जाति की है, वह सारे भारत की भाषा है और उसके लिए यह आवश्यक है कि सारे भारत के लोग उसको समझ सकें और अपनाने का गौरव हासिल कर सकें।'

राजभाषा के रूप में हिन्दी

कोई भी भाषा जितने विषयों में प्रयुक्त होती जाती है। उसके उतने ही अलग-अलग रूप भी विकसित होते जाते हैं। हिन्दी के साथ भी यही हुआ है। पहले वह केवल बोलचाल की भाषा थी। तो उसका एक बोलचाल का ही रूप था, फिर वह साहित्यिक भाषा बनी तो उसका एक साहित्यिक रूप भी विकसित हो गया। समाचार-पत्रों में 'पत्रकारिता हिन्दी' का रूप उभर कर आया। वैसे ही 'खेलकूद की हिन्दी', 'बाजार की हिन्दी' भी सामने आई। स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी भारत की राजभाषा घोषित की गई तथा उसका प्रयोग न्यूनाधिक रूप में कार्यालयों में होने लगा तो क्रमशः उसका एक राजभाषारूप विकसित हो गया।

राजभाषा हिन्दी की विशेषताएँ

साहित्यिक हिन्दी में जहाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के माध्यम से अभिव्यक्ति की जाती है। राजभाषा हिन्दी में केवल अभिधा का ही प्रयोग होता है।

साहित्यिक हिन्दी में एकाधिकार्थता-चाहे शब्द के स्तर पर हो चाहे वाक्य के स्तर पर, काव्य-सौन्दर्य के अनुकूल मानी जाती है। इसके विपरीत राजभाषा हिन्दी में सदैव एकार्थता ही काम्य होती है।

राजभाषा अपने पारिभाषिक शब्दों में भी हिन्दी की अन्य प्रयुक्तियों से पूर्णतःभिन्न है। इसके अधिकांश शब्द प्रायः कार्यालयी प्रयोगों के लिए ही उसके अपने अर्थ में प्रयुक्त होते है। जैसे-

आयुक्त = Commissioner
निविदा = Tender
विवाचक = Arbitrator
आयोग = Commission
प्रशासकी = Administrative
मन्त्रालय= Ministry
उन्मूलन =Abolition
आबंटन = Alloment आदि।

हिन्दी में सामान्यत: समस्रोतीय घटकों से ही शब्दों की रचना होती है। जैसे संस्कृत शब्द निर्धन. संस्कृत भाव वाचक संज्ञा प्रत्यय 'ता' = निर्धनता। किन्तु अरबी-फारसी शब्द गरीब . ता = गरीबता। किन्तु अरबी-फारसी शब्द गरीब् अरबी-फारसी भाव वाचक संज्ञा प्रत्यय 'ई'= गरीबी। हिन्दी में न तो निर्धनई=निर्धनी बनेगा और न ही गरीबता=गरीबता। लेकिन राजभाषा में काफी सारे शब्द विषम स्रोतीय घटकों से बने है। जैसे–

उपकिरायेदार = Sub-letting
जिलाधीश = Collector
उपजिला = Sub-district
अरद्द = Uncancelled
अस्टांपित = Unstamped
अपंजीकृत = Unregistered
मुद्राबन्द = Sealed

राजभाषा हिन्दी का प्रयोग राजतन्त्र का कोई व्यक्ति करता है जो प्रयोग के समय व्यक्ति न हो कर तंत्र का एक अंग होता है। इसलिए वह वैयक्तिकरूप से कुछ न कहकर निर्वैयक्तिक रूप से कहता है। यही कारण है कि हिन्दी की अन्य प्रयुक्तियों में जबकी कर्तृवाच्य की प्रधानता होती है, राजभाषा हिन्दी के कार्यालयी रूप में कर्मवाच्य की प्रधानता होती है। उसमें कथन व्यक्ति-सापेक्ष न होकर व्यक्ति-निरपेक्ष होता है। जैसे–'सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है', 'कार्यवाही की जाए', 'स्वीकृति दी जा सकती है' आदि।

राजभाषा का स्वरूप एवं क्षेत्र

स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश शासन काल में समस्त राजकाज अंग्रेजी में होता था। सन् 1947 में स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् महसूस किया गया कि स्वतंत्र

भारतदेश की अपनी राजभाषा होनी चाहिए, एक ऐसी राजभाषा जिससे प्रशासनिक तौर पर पूरा देश जुड़ा रह सके। भारतवर्ष के विचारों की अभिव्यक्ति करने वाली सम्पर्क भाषा 'हिन्दी' को 'राजभाषा' के रूप में स्वतंत्र भारत के संविधान में 14 सितम्बर, 1949 में राजभाषा समिति ने मान्यता दी। संविधानसभा में भारतीय संविधान के अन्तर्गत हिन्दी को राजभाषा घोषित करने काप्रस्ताव दक्षिण भारतीय नेता गोपालस्वामी अय्यङ्गार ने रखा था। इससे हिन्दी को देश की संस्कृति, सभ्यता, एकता तथा जनता की समसामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली भाषा के रूप में भारतीय संविधान ने देखा है। 26 जनवरी, 1950 से संविधान लागू हुआ और हिन्दी को राजभाषा के रूपमें संवैधानिक मान्यता मिली।

हमारे संविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किए जाने के साथहिन्दी का परम्परागत अर्थ, स्वरूप तथा व्यवहार क्षेत्र व्यापकतर हो गया। हिन्दीके जिस रूप को राजभाषा स्वीकार किया गया है, वह वस्तुतः खड़ीबोली हिन्दी का परिनिष्ठित रूप है। जहाँ तक राजभाषा के स्वरूप का प्रश्न है इसके सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि इसकी शब्दावली मूलतः संस्कृत से ली जाएगी और गौणतः सभी भारतीय भाषाओं सहित विदेश की भाषाओं के भी प्रचलित शब्दों को अंगीकार किया जा सकता है। राजभाषा शब्दावली (जैसे–अधिसूचना, निदेश, अधिनियम, आकस्मिक अवकाश, अनुदान आदि) को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इसकी एक अलग प्रयुक्ति(Register) है। शब्द निर्माण के सम्बन्ध में राजभाषा के नियम बहुत ही लचीले हैं। यहाँ किसी भी दो या दो से अधिक भाषाओं के शब्दों की संधि आराम से की जा सकती है। जैसे 'उप जिला मजिस्ट्रेट', 'रेलगाड़ी' आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि राजभाषा के अन्तर्गत शब्द निर्माण के नियम बहुत ही लचीले हैं।

राजभाषा का सम्बन्ध प्रशासनिक कार्य प्रणाली के संचालन से होने के कारण उसका सम्पर्क बुद्धिजीवियों, प्रशासकों, सरकारी कर्मचारियों तथा प्रायःशिक्षित समाज से होता है। स्पष्ट है कि राजभाषा जनमानस की भावनाओं–सपनों–चिन्तनों से सीधे–सीधे न जुड़कर एक अनौपचारिक माध्यमके रूप में प्रशासन तथा प्रशासित के बीच सेतु का काम करती है। बावजूद इसके सरकार की नीतियों को जनता तक पहुँचाने का यह एक मात्र माध्यमहै। साधारण जनता में प्रशासन के प्रति आस्था उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासन का सारा कामकाज जनता की भाषा में हो जिससे प्रशासन और जनता के बीच की खाई को पाटा जा सके। यह राजभाषा हिन्दी सरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त होकर

'कार्यालयी हिन्दी', 'सरकारी हिन्दी','प्रशासनिक हिन्दी' के नाम से हिन्दी के एक नए स्वरूप को रेखांकित करती है। राजभाषा का प्रयोग सरकारी पत्र व्यवहार, प्रशासन, न्याय-व्यवस्था तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए किया जाता है जिसमें पारिभाषिक शब्दावली का बहुतायत प्रयोग किया जाता है। अधिकतर मामले में अनुवाद का सहारा लिये जाने के कारण यह 'कार्यालयी हिन्दी' अपनी प्रकृति में निहायत ही शुष्क, अनौपचारिक तथा सूचना प्रधान होती है। जहाँ तक 'राजभाषा हिन्दी' के क्षेत्र का प्रश्न है इसके प्रयोग के तीन क्षेत्र हैं–1. विधायिका, 2. कार्यपालिका और 3. न्यायपालिका। ये राष्ट्र के तीन प्रमुख अंग हैं।

राजभाषा का प्रयोग इन्हीं तीन प्रशासन के अंगों में होता है। विधायिका क्षेत्र के अन्तर्गत आनेवाले संसद के दोनों सदन और राज्य विधान मंडल के दो सदन आते हैं। कोई भी सांसद विधायक हिन्दी या अंग्रेजी या प्रादेशिक भाषा में विचार व्यक्त कर सकता है, परन्तु संसद में कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में ही किया जाना प्रस्तावित है। कार्यपालिका क्षेत्र के अंतर्गत मंत्रालय, विभाग, समस्त सरकारी कार्यालय, स्वायत्त संस्थाएँ, उपक्रम, कम्पनी आदि आते हैं। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग प्रस्तावित हैं जबकि राज्य स्तर पर वहाँ की राजभाषाएँ इस्तेमाल होती हैं। न्यायपालिका में राजभाषा का प्रयोग मुख्यत: दो क्षेत्रों में किया जाता है-कानून और उसके अनुरूप की जाने वाली कार्यवाही अर्थात् कानून, नियम, अध्यादेश, आदेश, विनियम, उपविधियाँ आदि और उनके आधार पर किसी मामले में की गई कार्रवाई और निर्णय आदि। राजभाषा के कार्य क्षेत्रों को अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने 'राष्ट्रभाषा हिन्दी–समस्याएँ एवं समाधान' में लिखा है–'राजभाषा का प्रयोग मुख्यत: चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है-शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका। इन चारों में जिस भाषा का प्रयोग हो उसे राज भाषा कहेंगे। राजभाषा का यही अभिप्राय और उपयोग है।'

3

हिन्दी कम्प्यूटिंग एवं कार्यालय प्रयोग

राजभाषा का स्थान प्राप्त करने के बाद भी भारत में हिन्दी का कितना प्रयोग हो रहा है? यह प्रश्न अभी भी बहस का प्रमुख बिन्दु बना हुआ है। व्यावहारिक रूप से सम्पूर्ण भारत में बोली जानेवाली हिन्दी भाषा विकसित तो हो रही है, किन्तु शासकीय कार्यों में एवं एक आम आदमी द्वारा अपने कार्यों के सम्पादन में हिन्दी का उतना प्रयोग नहीं किया जा रहा है जितना की अंग्रेजी भाषा का व्यापक रूप से निरन्तर प्रयोग किया जा रहा है। जब हिन्दी भाषा की इतनी दयनीय स्थिति है तो हिन्दी भाषा में कम्प्यूटर का प्रयोग तो अभी मात्रा एक आरम्भ ही कहा जा सकता है।

मशीन की भाषा वही होती है जो उपयोग करने वाले की भाषा होती है। कम्प्यूटर एक इलेक्ट्रानिक मशीन ही है। यह अंग्रेजों के लिए अंग्रेजी में, चीनियों के लिए मैंडोरिन में और जापान में जापानी में काम करती है, किन्तु भारत में कम्प्यूटर अंग्रेजी, मशीन है जबकि हमारी राजभाषा हिन्दी है। स्पेनिश, जर्मन, रूसी, मैंडोरिन, जापानी, कोरियाई, फ्रेंच आदि अनेक भाषाओं ने समय के साथ अपने को परिवर्तित किया है। नई तकनीक को अपनाकर अपने विकास का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है। कम्प्यूटर और सूचना तकनीके के विकास क्रम में पढ़ने, लिखने और कार्य करने के लिए भाषा के माध्यम का कायाकल्प किया है।

कम्प्यूटर पर कार्य करने के लिए विश्व की अनेक भाषाएँ समर्थ हो चुकी हैं, किन्तु हम भारतवासी आस लगाए बैठे हैं कि कोई विदेशी कम्पनी हमारी हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं के लिए कोई ऐसा साफ्टवेयर बनाए जिससे हम इनके माध्यम से कम्प्यूटर पर सभी प्रकार के कार्य कर सके।

1. सरकारी प्रयास–भारत सरकार के गृहमन्त्रालय के राजभाषा विभाग ने कम्प्यूटर पर हिन्दी में कामकाज को विकसित किए जाने के लिए अनेक प्रयास किए हैं। राजभाषा विभाग ने भारत सरकार के सभी विभागों को निम्न निर्देश दिए हैं–

1. डॉट मैट्रिक्स प्रिन्टर समेत कम्प्यूटर प्रणालियाँ सिर्फ द्विभाषी रूप में ही खरीदी जाएँ। किसी कम्प्यूटर को द्विभाषी तभी माना जा सकता है, जब उसमें अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में जानकारी दर्ज करने (डाटा एण्ट्री) की व्यवस्था हो। स्क्रीन पर आवश्यकतानुसार अंग्रेजी या हिन्दी में लिखा जा सके और कम्प्यूटर द्वारा तैयार की गई सामग्री को आवश्चयकतानुसार अंग्रेजी या हिन्दी में मुद्रित किया जा सके।
2. केन्द्र सरकार के कार्यालयों में लगाए गए सभी निजी कम्प्यूटरों को द्विभाषी बनाया जाए।
3. वर्तमान कम्प्यूटरों में जिस्ट तकनीक का प्रयोग कर उनमें देवनागरी की सुविधा उपलब्ध कराने का समय बद्ध कार्यक्रम बनाकर उसके अनुसार कार्य किया जाए।

कर्मचारियों को हिन्दी में कम्प्यूटर के प्रयोग संबंधी प्रशिक्षण दिए जाएँ। कम्प्यूटर पर अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में कार्य करने वाले कर्मचारियों को विशेष प्रोत्साहन भत्ता दिया जाए।

अ. प्रशिक्षण–हिन्दी न जाननेवाले अधिकारी कम्प्यूटर के द्वारा हिन्दी सीख सकें, इसके लिए लीला-प्रबोध नाम के स्व-शिक्षा कार्यक्रम को बनवाने की कोशिश राजभाषा विभाग कर रहा है–इस पैकेज की सहायता से कोई भी व्यक्ति कम्प्यूटर पर हिन्दी के अक्षर, शब्द और वाक्यों को लिखना और बोलना स्वयं सीख लेगा, क्योंकि इसमें ग्राफिक्स के साथ-साथ आवाज की सुविधा भी दी जा रही है।

ब. अनुवाद–भारत सरकार का इलेक्ट्रानिक विभाग एक ऐसी महत्पपूर्ण परियोजना पर कार्य कर रहा है, जिसके अन्तर्गत कम्प्यूटर के माध्यम से देश की किसी भी भाषा को शीघ्रता से समझकर उसे दूसरी किसी भाषा में काम करने

योग्य बनाया जा सकता है। एक ऐसे कम्प्यूटर साफ्टवेयर का विकास किया जा रहा है जो कि तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, असमिया, बांगला, उड़िया, संस्कृत, उर्दू और कश्मीरी के तीस लाख शब्दों को पढ़ सकने में सक्षम होगा।

इसके अतिरिक्त एक अन्य साफ्टवेयर का विकास किया गया है जो कन्नड़ से हिन्दी में अनुवाद कर सकेगा। अन्य भारतीय भाषाओं का भी हिन्दी में अनुवाद कर सकने वाले साफ्टवेयर पर भी कार्य प्रगति पर है। नेशनल सेन्टर फर साफ्टवेयर टेक्नोलाजी, अमेरिकी के माइक्रोसाफ्ट कारपोरेशन के सहयोग से भारतीय भाषाओं को विंडोज नेटवर्क सिस्टम पर लाने की परियोजना चला रहा है। सी डाक ने एक भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा में लिप्यांतरण का साफ्टवेयर बना लिया है। इस साफ्टवेयर का प्रयोग अंग्रेजी और हिन्दी में एक साथ आरक्षण सूची बनाने, टेलीफोन, डायरेक्टरी बनाने आदि में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

2. कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग–कम्प्यूटर पर हिन्दी में प्रयोग को लेकर अनेक गलत धारणाएँ हैं, जैसे–

1. हिन्दी में टाइप करना कठिन है। इसे सीखने में सात-आठ महीने लगते हैं। जब हिन्दी में टाइप कना ही आसान नहीं है तो कम्प्यूटर पर काम कैसे हो सकेगा?
2. कम्प्यूटर पर सभी कमाण्ड अंग्रेजी में आते हैं तो हिन्दी में काम करने से क्या लाभ?
3. हिन्दी में न तो अच्छे फोंट्स है और न ही अच्छा साफ्टवेयर।
4. हिन्दी में यदि पत्र आदि लिखना कम्प्यूटर पर सीख भी लिया जाए तो अन्य कार्यालय के कार्य कैसे किए जा सकेंगे?
5. क्या हिन्दी में कार्य करना सूचर विज्ञान की नवीन तकनीकों से सामंजस्य स्थापित कर सकेगा।

इन सभी प्रश्नों का संक्षिप्त में यही उत्तर है कि हमें हिन्दी भाषा में कम्प्यूटर पर कार्य करने की प्रणालियों की समुचित जानकारी नहीं है। हिन्दी भाषा का देवनागरी के फोनेटिक की-बोर्ड पर बहुत आसानी से अभ्यास किया जा सकता है। सरकार द्वारा ध्वनि पर आधारित जो फोनेटिक की-बोर्ड बना है, उस पर सुगमता से अभ्यास किया जा सकता है। अनेक कम्पनियों ने ऐसे साफ्टवेयर बना दिए हैं जिन्हं डॉस या विन्डोज के अन्तर्गत अलग-अलग कार्यो के लिए उपयोग किया जा सकता है। अंग्रेजी में कमांड दिखाई देने पर भी उस कमांड

द्वारा किए जा रहे कार्य की जानकारी रखना अधिक महत्वपूर्ण है। सूचना तकनीक के विकास के साथ-साथ हिन्दी में काम करना संभव है। अब तो इंटरनेट पर हिन्दी में वेब पेज बनाने के साफ्टवेयर भी विकसित हो चुके हैं। एन.आई.स. लोक सभ के लिए हिन्दी में वेब पेज बा रही है।

सरकारी कार्यालयों में अधिकतर एम.एस. डास पर आधारित, आईबी.एम, निजी कम्प्यूटर (पी.सी.) या यूनिक्स/जिनिक्स पर आधारित मिनी कम्पयूटर लगाए गए हैं। इनमें अंग्रेजी में किए जानेवाले कार्य हिन्दी में भी किए जा सकते हैं। प्रयुक्त रूप से शब्द संसाधन के अन्तर्गत टिप्पणी, पत्र, लेख, रिपोर्ट आदि तैयार करना इनमें सम्मिलित है। दूसरा कार्य डेटा संसाधन के अन्तर्गत वेतन-पर्ची, परीक्षा परिणाम, भविष्य निधि खाता पर्ची, पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों की सूची, बीमा प्रीमियम की रसीदें, इन्वेन्ट्री सूची आदि तैयार करना इसमें सम्मिलित है।

कम्प्यूटर पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में कार्य करने के लिए तीन विकल्प उपलब्ध हैं–

कम्प्यूटर पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में कार्य करने के लिए तीन विकल्प उपलब्ध हैं–

(i) सामान्य कार्य करने वाला साफ्टवेयर (General Working Software)–आई.बी.एम.पी.सी कम्प्यूटर पर द्विभाषी शब्द संसाधन के अनेक पैकेज उपलब्ध हैं। विभिन्न शब्द संसाधनों की अलग-अलग प्रकार की क्षमताएँ होती हैं, जैसे–सेटिंग, पेज हेडर, फुटर, शब्दों की खोज, सुधार, मेल मर्ज, लिप्यांतरण आदि। आँकड़ों के संसाधन के लिए द्विभाषी कंपाइलर और डेटाबेस प्रणाली उपलब्ध है।

(ii) बहु-उपयोगी साफ्टवेयर (Multiuse Software)–एम.एस. डास पर आधारित आई.बी.एम.पी.सी.-एक्स टी/ए टी और समकक्ष कम्प्यूटरों पर इस प्रकार के साफ्टवेयर का प्रयोग किया जा सकता है। इनके द्वारा वेतन पर्ची, वित्तीय लेखांकन, इन्वेन्ट्री, पुस्तक सूची आदि तैयार किए जा सकते हैं। कोबाल, बेसिक, सी, क्लियर आदि जैसे प्रोग्रामन भाषाओं का प्रयोग कर कस्टमाइज्ड साफ्टवेयर बनाए जा सकते हैं। इनके द्वारा हिन्दी या किस अन्य भारतीय भाषाओं में कार्य किया जा सकता है। पी.सी पर आधारित टेलेक्स मशीलें भी द्विभाषी रूप में चलाई जा सकती है।

(iii) बहुभाषी शब्द संसाधक (Multilingual Word Processor)–भाषा नामक एक बहुभाषी शब्द संसाधक का आई.बी.एम और समकक्ष कम्प्यूटरों पर उपयोग किया जा सकता है। इसमें संपादन की सुविधाओं के अतिरिक्त, लिप्यांतरण, मार्जिन, सेंटिग, कट, पेस्ट, सेलेक्ट आदि कीं सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें भारतीय भाषाओं के लिए स्वर पर आधिारित की–बोर्ड दिय गया है। इसमें ग्राफिक्स का प्रयोग भी संभव है।

(iv) बहुउपयोगी हार्डवेयर (Mulitiuse Hardware)–इस प्रकार के हार्डवेयरों में जिस्ट कार्ड सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ग्राफिक्स एन्ड इंटेलीजेंस बेस्ड स्क्रिप्ट टेक्नालाजी (GIST) तथा सेन्टर फार डेवलेपमेन्ट आफ एडवांस्ड कम्प्यूटिंग (CDAC) के प्रयास से भारतीय भाषाओं के लिए उपयोगी हार्डवेयर का विकास किया गया है। भारत की कई भाषाओं को लगभग एक इंच की जिस्ट चिप के माध्यम से एक सूत्र में पिरोकर डा. शेषागिरी, डा. विजय भटकर और मोहन तांबे ने भारतीयों के लिए कम्प्यूटर के द्वारा खोल दिए हैं। इस कार्ड को पी.सी. में लगाने के बाद भारतीय लिपियों व अंग्रेजी समेत अनेक दूसरी विदेशी भाषाओं में डीबेस, लोटस 1–2–3, वर्डस्टार, फाक्स प्रो, क्यूबेसिक, क्वाटरोप्रो आदि लेखन से जुड़े पैकेजों और सी, सी, कोबोल आदि कंपाइलरों के साथ डॉस पर काम किया जा सकता है। एक ही बोर्ड के प्रयोग से अनेक भाषाओं में कार्य संभव हो सकत है। जिस कार्ड का फर्मवेयर लिपियों को कम्प्यूटर में डालता है। इसके प्रश्चात् सामान्य कमांड द्वारा प्रिटिंग हो सकती है।

इसके द्वारा यूनिक्स प्लेटफार्म (एस.सी.ओ यूनिक्स संस्करण 3. तथा ए. टी.एन्ड टी यूनिक्तस एम.वी आर 4) पर आधारित पी.सी पर काम किया ज सकता है। जिस्ट कार्ड का प्रयोग, स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क में भी हो सकत है। जिस्ट कार्ड का प्रयोग, विन्डोज तथा उच्च स्तरीय ग्राफिक्तस में नहीं किया जा सकता है।

भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर पर कर्य करने के लिए एक अन्य हार्डवेयर जिस्ट टर्मिनल है। यह वी.टी 52/100/220/320 के समकक्ष है। इसके द्वारा किसी भी भारतीय लिपि और अंग्रेजी में लेखन संबंधी अनुप्रयोग पैकेजों के साथ यूनिक्स, जैनिक्स, वी.एम.एस जैसे बहुप्रयोक्ता वातावरण में कार्य किया जा सकता है। पैकेजों में फॉक्सबेस, कोबोल, वर्ड परफेक्ट आदि सम्मिलित हैं। यह आर.एस–232 कनेक्टर के द्वारा संचार व्यवस्था स्थापित करने में भी समर्थ है।

3. हिन्दी साफ्टवेयर (Hindi Software)–

अक्षर–यह आधुनिक भारतीय कार्यालय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया है। इस उपयोक्ता सहायक शब्द संसाधन का उद्देश्य हिन्दी में कार्य करने वाले कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ाना है। इसकी सहायता से लिखी गई पाठ्य सामग्री को हिन्दी या अंग्रेजी दोनों लिपियों में मिश्रित रूप से प्रिन्ट किया जा सकत हे। इसकी संरचना व उपयोग वर्डस्टार के अनुरूप है। अत: इसे अभ्यास में अनुरूप करना सरल है।

साधारण हिन्दी टाइपराइटर के अनुरूप इसका की-बोर्ड होता है।

आकृति–यह विंडोज 3.1, 3.11 व विन्डोज 95 में हिन्दी में कार्य करने की सुविधा प्रदान करता है। इसमें एक ड्राइवर प्रोग्राम व फोन्ट्स का सेट होत है जिसमें हिन्दी के वर्ण होते हैं। इसका प्रयोग नेटवर्किंग के अन्तर्गत भी किया जा सकता है।

ओशो–ओशो कम्यून इन्टरनेशनल, पुणे ने एक हिन्दी वर्तनी जाँच और हिन्दी शब्दकोश (हिन्दी शब्द सागर) का विकास किया है, इनका उपयोग एपल मैकिंटोप कम्प्यूटरों पर किया जा सकता हैं। वर्तनी जाँचक एक हिन्दी प्रूफ रीडर है जो कि 1000 शब्द प्रति मिनट की गति से शब्दों की जाँच कर सकता हैं। गलत वर्तनी के शब्दों में इसके द्वारा सुधार संभव है।

लीप आफिस–यह विन्डोज पर आधिारित बहुभाषी शब्द संसाधक है। यह डेटा इन्ट्री व भंडारण के लिए इस्की कोड और डिसप्ले व प्रिन्टिग के लिए इस्फॉक फोंटस का उपयोग करता है। इसमें हिन्दी, मराठी व गुजराती (देवनागरी) के अतिरिक्त अंग्रेजी के शब्द, संसोधक (Spell checker) भी हैं। भारतीय शब्द संरचना भी दी गई हे। इसक नेटवेयर संस्करण भी है। इसके द्वारा भारतीय भाषाओं में इलेक्ट्रानिक मेल भी भेज सकते हैं।

विजन आफिस–यह साफ्टवेयर भारतीय लिपियों को डेस्क टाप पब्लिशिंग, स्प्रेडशीट, डेटाबेस और ग्राफिक्स प्रस्तुतीकरण की सुविधा प्रदान करता है। कार्यालय स्वचालन (Office Automation) के लिए यह उपयोगी हल हे। यह पेजमेकर, वेंच्यूरा, एम.एस. राइट के साथ-सथ डी.टी.पी के अनुप्रयोगों का कार्य करता है। इसके लिए–(4 MB RAM, 80 MB HARD DIK. 1-44 Flopy Disk Drive) तथा PC/AT 386 की आवश्यकता पड़ती है।

विजय राइट–यह विन्डोज पर आधारित द्विभाषी शब्द संसाधक है। यह एम.एस. विडोज की ई आर 3-1 के साथ कार्य करता है। इसके लिए–PCèAT

386, 4 MB RAM, 1.2/1-44 MB flopy Drive 80 MB Hard Disk Drive की आवश्यकता पड़ती है।

विन्की–यह विन्डोज पर आधारित साफ्टवेयर है जो वर्णन 3.00, संक्षेपण, अनुवाद, लिपियों का स्थानान्तरण, तारिख/समय/कैलेन्डर, हिन्दी क्लिप बोर्ड टेबल आदि की सुविधाओं से युक्त है।

सुलिपि–इसे आई.बी.एम.पी सी/एक्स टी/ए टी व समकक्ष कम्प्यूटरों पर चलाया जा सकता है। यह साफ्टवेयर हिन्दी/अंग्रेजी में कार्य करने की सुविधा प्रदान करता है। इसक स्थानीय नेटवर्क क्षेत्र में भी प्रयोग किया जा सकता है। यह वर्डस्टारस डी बेस, लोटस 1–2–3, साफ्टवेस, क्लियर, फाक्सप्रो, बेसिक, पैराडाक्स, जी डल्लू बेसिक आदि पैकेजों को चलाने को भी सुविधा प्रदान करता है।

हिन्दी–स्क्रिप्ट–यह डॉस पर चलने वाला स्मृति संचय करनेवाल प्रोग्राम है। इसमें अंग्रेजी/ हिन्दी में कार्य किया जा सकता है। इसमें अंग्रेजी–हिन्दी शब्दों का शब्दकोश भी है।

सारथी–हिन्दी भाषाओं में प्रौढ़ शिक्षा के प्रयोग के लिए यह साफ्टवेयर बनाया गया है। इसको टेलीविजन से जोड़कर बिजली या बैटरी के द्वारा उपयोग में लाया जा सकता हैं। प्राथमिक शिक्षा में भी इसका महत्त्वपूर्ण उपयोग हो सकता है। अक्षर के साथ–साथ भारतीय भाषाओं में ध्वनि भी सुनी जा सकती है।

इंडोमेल–इस साफ्टवेयर के द्वारा बारह भारतीय भाषाओं में ई–मेल भेजा जा सकता है। यह हाटमेल के साथ ही प्रयुक्त किया जा सकत है।

स्क्रिप्ट–यह द्विभाषी टाइपोग्राफिकल डी.टी.पी. साफ्टवेयर है जिसके प्रयोग से समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, निर्देशिकाओं आदि से संबंधित कार्य किए जा सकते हैं।

चित्रकला–यह एक ग्राफिक्स पैकज है जिका प्रयोग प्रमुख रूप से वीडियो टाइटल लिखने और सामान्य विवरण लिखने में किया जाता है। इसे पास कार्ड के साथ चलाकर टी.वी परी भी देखा जा सकता है।

एपल का भाषा किट–एपल कम्प्यूटर इंडिय ने 1997 में भारतीय भाषा किट विकसित किया है। यह किट तीन भारतीय लिपियों–देवनागरी, गुजराती और गुरमुखी में कार्य कर सकता हैं। यह विश्व का पहला ओ एस–स्तरीय साफ्टवेयर हे जिसके द्वारा भारतीय भाषा में कम्प्यूटर पर कार्य करना संभव हैं। इसके प्रयोग से हिंदी मराठी, संस्कृत, नेपाली, गुजराती और पंजाबी भाषाओं में काम किया

जा सकता है। इस किट का प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएँ होती हैं–

एक या इससे अधिक अनुप्रयोग साफ्टवेयर जिससे विश्व लिपि में काम सहज हो सके।

क्विक ड्रा जी एक्स तकनीक का प्रयोग।

इस किट की सहायता से एक ही दस्तावेज में कम्प्यूटर की मुख्य भाषा जैसे–अंग्रेजी के साथ–साथ देवनागरी, गुजराती व गुरमुखी लिपि के मूल पाठ को भी लिख सकते हैं, संपादित और मुद्रित भी कर सकते हैं। एक ही दस्तावेज में एक भाषा से दूसरी भाषा पर आ–जा सकते हैं।

विश्व लिपि (World Script)–विश्व लिपि, मैक ओएस तकनीक से अनेक भाषाओं में कार्य करना आसान हो जाता है। यह ए पी आई के एक सेट पर आधारित है जिसका प्रयोग साफ्टवेयर बनाने वाले करते हैं। एपल की भाषा किटों को जोड़कर प्रयोक्ता एक ही दस्तावेज के अन्दर भारतीय भाषाएँ अंग्रजी या अन्य किसी भाषा का मुख्य भाषा के रूप में एक साथ प्रयोग कर सकते हैं।

क्विक ड्रा जी एक्स (Quick Draw G X)–मैक ओ एस के अन्दर क्विक ड्रा जी एक्स बना हुआ है। यह एपल का रंग प्रकाशन स्थल है जो किसी दस्तावेज के प्रिंटिग व ग्राफिक्तस तथा मूल पाठ को तैयार करने में काम आता है। फोन्ट को छोटा, बड़ा करना, हाथ से बनाना, प्रिंन्टिंग को हल्का या गाढ़ा करना आदि यहाँ पर सम्भव है। जिस प्रकार हम किसी दस्तावेज को मॉनीटर पर देखते हैं कि ठीक उसी अवस्था में रंग रूप, सज्जा के साथ प्रिंटर पर उसकी प्रिटिंग की जा सकती है।

हिन्दी पी.सी. डॉस (Hindi P C DOS)–आई.बी.एम ने पी.सी. डॉस 7 का हिन्दी संस्करण वर्ष 1997 में जारी किया है। हिन्दी का सर्वप्रथम, एक मात्र आपरेटिंग सिस्टम शीघ्र ही बाजार में आनेवाला है। यहा 16 बिट पर आधारित आपरेटिंग सिस्टम है जो कि हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी काम करता हैं की बोर्ड का एक स्विच दबाने से कम्प्यूटर का आपरेटिंग मोड हिन्दी में परिवर्तित हो जाएगा। और यदि इसे पुनः दबाएँगे तो यह अंग्रेजी के मोड में कार्य करने लगेगा।

यह संस्करण जापान की यमोटो प्रयोगशाला व टोरंटो की आई.बी.एम. साफ्टवेयर प्रयोगशाला द्वारा विकसित किया गया। इसकी मूल्य लगभग 4000 रूपए रखा गया है। इसमें रैक्स नामक एक उच्चस्तरीय प्रोग्रामन भाषा को कमांड

के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आई.बी.एम का यह दावा है कि रेक्स के अन्तर्गत किसी भी प्रकार का प्रोग्रामन बेसिक की तुलना में सरलता से किया जा सका है। इसे हिन्दी जाननेवाले लोग सरलता से चला सकते हैं। इसमें हिन्दी या अंग्रेजी में कमांड, संदेश और डेटा इन्ट्री करने की सुविधा उपलब्ध है। इसमें अनुप्रयोग प्रोग्रामन इंटरफेस (Application Programming) हैं जिनके प्रयोग से आवश्यकतानुसार संबंधित अनुप्रयोग बनाए जा सकते हैं। इसमें भारतीय प्रमाणीकरण ब्यूरो को इसकी 91 प्रमाणिकता की सुविधा सम्मिलित की गई है। भारत सरकार की ओर से सुझाए गए ध्वन्यात्मक टाइपराइटर ओर रोमन कुंजीपटल तकनीक की सुविधाएँ भी इसमें सम्मिलित है।

हिन्दी में विंडोज एन टी (Windows NT in Hindi)–विश्व की अग्रणी साप्तवेयर कम्पनी माइक्रोसाफ्ट कारपोरेशन के अध्यक्ष बिल गेट्स ने वर्ष 1997 में अपने भारत आगमन पर एम.एम. डास और विडोस एन.टी. आपरेटिंग सिस्टमों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का आदेश दिया था। आशा है कि इस वर्ष इन साफ्टवेयरों को विकसित कर हिन्दी भाषा उपयोगकर्ताओं के लिए पेश कर दिया जाएगा।

4. इन्टरनेट पर हिन्दी (Hindi on Internet)–आज इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा के वेब पेज बढ़ते जा रहे हैं।

हिन्दी भाषा सीखने तथा हिन्दी समाचार, साहित्य व हिन्दी में वेब पेज निर्मण के लिए भी इनका उपयोग किया जा सकता है।

भारतीय भाषाओं में इंटरनेट साधन और तकनीक का विकास करने की योजना भी इलेक्ट्रानिक्स विभाग द्वारा आरम्भ की जानेवाली है। इस विभाग ने भारतीय भाषाओं का साफ्टवेयर इन्टरनेशल के द्वारा नि:शुल्क देने की घोषणा की है। ये साफ्टवेयर हैं–एल्प पर्सनल व लीप लाइट वर्ड प्रोसेसर। ये साफ्टवेयर सी डाक (CDAC) के वेब साइट www.cdac.org.in पर भी उपलब्ध हैं। इसके द्वारा ई-मेल भी भेजा जा सकता है।

इंटरनेट और हिन्दी

इंटरनेट जैसे कम्प्यूटर आधारित माध्यम में अंग्रेजी का प्रचलन मुख्यत: रहा है। इस पर अब अन्य भाषाओं का काफी कामकाज में हो रहा है। भारत में भी जापानी या चीनी की तरह हिन्दी को कम्प्यूटर के कामकाज की भाषा

के रूप में अपनाया जा रहा है। यह जरूरी है क्योंकि आज जापान, चीन, थाईलैंड जैसे देश अपनी भाषा और लिपि में बिना किसी रुकावट के काम कर सकते हैं, तो फिर हम क्यों नहीं? अन्य भारतीय भाषाओं की बात न करें तो कम-से-कम अब यह सुविधा हिन्दी में उपलब्ध है। भारतीय भाषाओं (और हिन्दी के साथ भी) यह कठिनाई है कि अलग-अलग समाचार-पत्र, पत्रिकाएं तथा पोर्टल अपने-अपने फॉण्ट का इस्तेमाल करते हैं, इसलिए उनमें विविधता होती है। इसकी वजह से उनकी पहचान बनी रहती है और कलात्मक प्रस्तुति में आसानी रहती है, किन्तु जब तक इंटरनेट के उपभोक्ता उनके फॉण्ट को अपने कम्प्यूटर में डाउनलोड नहीं कर लेते, तब तक उनका उपयोग नहीं कर सकते। यद्यपि यह करना सरल है। आप सम्बन्धित वेबसाइट से उन फॉण्टस को ले सकते हैं। इसके बिना हमें उस बदले हुए फॉण्ट की जगह 'जंक सामग्री' (चित्रलिपि या कुछ विचित्र से चित्र) ही दिखाई देंगे। इस समस्या के निदान के लिए यह आवश्यक है कि सभी संस्थाएं या वेबसाइट एक समान फाण्ट का प्रयोग करें।

भारत में पुणे स्थित संस्था सी डैक के द्वारा 'लीप ऑफिस' और आइएसएम ने इस्फॉक, इंडियापेज जैसे बहुभाषी फॉण्ट्स के सॉफ्टवेयर-कार्यक्रम उपलब्ध कराये हैं। इससे हमारी समस्या बहुत कुछ हल हो चुकी है। कई विदेशी कम्पनियां भी इस प्रयास में जुड़ी हैं। जैसे–अमेरिकन कम्पनी ट्रांसपेरेंट लैंग्वेज की ओर से तैयार किया गया विश्व की सौ भाषाओं का सॉफ्टवेयर 'यूनीटाइप ग्लोबल राइटर 98' जिसमें हिन्दी ही नहीं संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, मराठी, बंगाली, तमिल, तेलगू के फॉण्ट एक ही की-बोर्ड पर उपलब्ध हैं।

इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं में कामकाज की शुरुआत हिन्दी पोर्टल 'वेब दुनिया' से हुई। बेव दुनिया के संस्थापक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री विनय छजलानी हैं। इंटरनेट पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के समन्वय विषयक उनकी परिकल्पना का परिणाम है। वेबदुनिया विश्व की पहली हिन्दी वेबसाइट 'नई दुनिया कॉम', पहली बहुभाषी ई-मेल सेवा 'ई-पत्र' और पहला हिन्दी पोर्टल 'वेबदुनिया.कॉम' इंटरनेट पर लाया गया, उस समय ऐसा अनुमान नहीं था कि इसका इतना स्वागत होगा।

'ई-पत्र' की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. बहुभाषी ई-मेल सेवा।
2. किसी भी भाषा के टंकण का ज्ञान अनिवार्य नहीं।

3. साधारण रोमन अंग्रेजी की-बोर्ड से ही कोई भी व्यक्ति ई-मेल टाइप करके प्रेषित कर सकता है।
4. ध्वन्यात्मक लिप्यंतरण की अनूठी पद्धति का प्रयोग।
5. किसी भी भाषा के फॉण्ट डाउनलोड करने की आवश्यकता नहीं।

इंटरनेट पर उपलब्ध कराई जा रही उनकी कंपनी की इन सुविधाओं से भाषा की सीमाएं खत्म होंगी और अधिक से अधिक लोगों को इंटरनेट पर कार्य करने का मौका मिल पाएगा। दुनिया में अंग्रेजी न बोलने वाले देशों का उदाहरण इस बात का संकेत है। यदि आप यह समझते हैं कि इंटरनेट की भाषा केवल अंग्रेजी है, तो शायद आप पूरी तरह सही नहीं हैं। इंटरनेट प्रयोग करने वाली विश्व की 45 प्रतिशत आबादी के लिए नेट पर अंग्रेजी दूसरी भाषा है। आने वाले समय में गैर-अंग्रेजी भाषी लोग बहुत बड़ी संख्या में इंटरनेट का इस्तेमाल करने लगेंगे। ऐसे में यह आवश्यकता अनुभव की गई है कि इंटरनेट को स्थानीय भाषाओं के और अधिक अनुरूप बनाया जाए। इसी का परिणाम है हिन्दी समेत नौ भारतीय भाषाओं में डोमेन नेम की शुरुआत।

भारत में इंटरनेट की सुविधाओं का प्रत्यक्ष उपभोग वर्तमान में 46 लाख लोगों द्वारा किया जा रहा है। इंटरनेट का तेजी से प्रसार हो रहा है। आने वाले वर्षों में यह आंकड़ा 75 लाख और सन् 2005 तक साढ़े तीन करोड़ से भी अधिक हो जाने का अनुमान है। वायस सर्फिंग सेवा से इसका और भी उपभोग होगा। इसके बाद तब माउस क्लिक-क्लिक से छुटकारा मिल जायेगा। इंटरएक्टिव स्पीच टेक्नॉलोजी से यह काम होगा। इस प्रकार हिंदी में इंटरनेट के विकास की जो संभावनाएं हैं उससे इस भाषा में संचार के एक नये परिदृश्य के उजागर होने की संभावना है।

4

व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण

व्यक्ति और स्थान-भेद से भाषा में परिवर्तन आ सकता है। इस प्रकार किसी भाषा का एक निश्चित रूप नहीं रहता। अज्ञान या भ्रम के कारण कुछ लोग शब्दों के उच्चारण या अर्थ-ग्रहण में गलती करते हैं। इस प्रकार भाषा का रूप विकृत हो जाता है। भाषा की शुद्धता और एकरूपता बनाए रखना ही व्याकरण का कार्य है। व्याकरण उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें किसी भाषा के शुद्ध रूप का ज्ञान कराने वाले नियम बताए गए हों। दूसरे शब्दों में हम ऐसा भी कहते सकते हैं कि व्याकरण वह शास्त्र है जो हमें भाषा को शुद्ध-शुद्ध पढ़ना, लिखना और बोलना सीखलाता है।

कुछ उदाहरण देखें–

1. रोहन छत पर चढ़ती है।
2. हम सभी खाएगा।

पहले वाक्य में यह अशुद्धि है कि रोहन पुलिंग के साथ क्रिया का रूप 'चढ़ती' नहीं होकर चढ़ता होना चाहिए। शुद्ध वाक्य बनेगा–रोहन छत पर चढ़ता है। दूसरे वाक्य में कर्ता बहुवचन है, अत: वाक्य का शुद्ध रूप होगा–हम सभी खाएंगे। यहाँ दिये गये उदाहरण में अशुद्धियाँ क्रिया-सम्बन्धी हैं। अन्य उदाहरण देखिए–

मार दिया को ने कृष्ण कंस।

इस वाक्य से अर्थ स्पष्ट नहीं होता क्योंकि कर्ता, कर्म एवं कारक निश्चित स्थान पर नहीं है। यदि इन्हें सही क्रम में रखा जाए तो वाक्य बनेगा 'कृष्ण ने

कंस को मार दिया।' जिसका एक भाव एक अर्थ होगा। वक्ता जो बात कहना चाहता है, उसे शब्दों की माला के रूप में इस तरह से पिरोकर वाक्य विन्यास तैयार करेगा कि उसके भाव या अर्थ स्पष्ट हो जाए। इनसे सम्बन्धित नियम हिन्दी व्याकरण में उल्लिखित हैं।

व्याकरण के अंग

व्याकरण के पांच अंग होते हैं–वर्ण विचार, शब्द विचार, वाक्य विचार, चित्र विचार तथा छंद विचार।

वर्ण-विचार–इसमें वर्णमाला, वर्णों के भेद, उनके उच्चारण, प्रयोग तथा संधि पर विचार किया जाता है।

शब्द-विचार–इसमें शब्द-रचना, उनके भेद, शब्द-सम्पदा तथा उनके प्रयोग आदि पर विचार किया जाता है।

वाक्य विचार–इनमें वाक्य व उसके अंग, पदबंध आदि पर विचार किया जाता है।

चित्र विचार–इसमें वाक्यों में प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

छंद विचार–इसमें विभिन्न प्रकार के छंदों का अध्ययन किया जाता है।

लिपि

मौखिक या कथित भाषा में ध्वनियाँ होती हैं, लिखित भाषा में उन ध्वनियों को विशेष आकारों अथवा वर्णों द्वारा प्रकट किया जाता है। भाषा को लिखने का यह ढंग 'लिपि' है। हिन्दी भाषा की लिपि 'देवनागरी' है। अंग्रेजी 'रोमन लिपि' में तथा उर्दू 'पर्शियन' (फारसी) लिपि में लिखी जाती है।

साहित्य

साहित्य की परिभाषा अनेक प्रकार से दी गई है। सामान्यत: हम कह सकते हैं कि सुन्दर अर्थ वाले सुन्दर शब्दों की रचना, जो मन को अत्रादित करे तथा समाज के लिए भी हितकारी हो, साहित्य कहलाती है।

साहित्य शब्द के दो अर्थ हैं। व्यापक अर्थ में, जो कुछ भी लिखित रूप से उपलब्ध होता है, वह साहित्य है। संकुचित अर्थ में, साहित्य से केवल काव्य का अर्थ लिया जाता है, जिसके अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि

आते हैं। हिन्दी में कबीर, सूर, तुलसी, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि कवियों तथा प्रेमचंद जैस कहानीकार और उपन्यासकार की रचनाएँ साहित्य के उदाहरण रूप में ली जा सकती हैं।

अन्य ज्ञान-साधनाओं से साहित्य इस बात में भिन्न है कि उसमें केवल विषय पर ही बल नहीं दिया जाता, वरन् शब्द भी पूरा ध्यान दिया जाता है और शब्दों को विविध प्रकार से चमत्कारपूर्ण बनाने का सजग प्रयास किया जाता है। दूसरी बात यह है कि साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्त्व की जैसी स्पष्ट झलक लक्षित होती है, वैसी अन्यथा ज्ञान-साधनाओं में नहीं साहित्य की उपयोगिता के विषय में तीव्र मतभेद है। कुछ विद्वान साहित्य को केवल कलागत उपयोगिता स्वीकार करते हैं। कुछ विद्वान उसकी जीवनगत उपयोगिता को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और उसमें लोकहित की सजगत प्रतिष्ठा अनिवार्य मानते हैं। 'साहित्य' शब्द के मूल में 'सहित' या 'हित' का भाव माना जाता है–वह जो संगठन करता है या जो लोकहित की भावना से अनुप्राणित है। वस्तुतः उसके दोनों रूप उपयोगी हैं और दोनों पर ही बल देना चाहिए।

साहित्य का महत्व इसी बात से सिद्ध है कि किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति के उत्पर्ष का आधार वहाँ का साहित्य ही होता है। साहित्य में जनता एवं समाज की चित्तवृत्तियाँ, आकांक्षाएं आदि संचित रहती है

वर्ण-विचार

वर्ण से शब्द बनते हैं और शब्दों से वाक्य। वाक्यों से ही भाषा का कार्य पूरा होता है अर्थात् कहने वाले के विचार या भाव सुनने वाला ग्रहण करता है। इस तरह वर्ण भाषा की सबसे सूक्ष्म व मूल इकाई है। दूसरे शब्दों में किसी भाषा की छोटी-से-छोटी स्वीकृत ध्वनि वर्ण कहलाती है। इस ध्वनि के टुकड़े नहीं किए जा सकते। इस तरह वर्ण को इस तरह से भी परिभाषित किया जा सकता है–

वर्ण वह मूल ध्वनि है जिसके खण्ड या टुकड़े नहीं किये जा सकते।

हर वर्ण को एक निश्चित चिह्न द्वारा लिखा जाता है। किसी भाषा के वर्ण-समूह को वर्णमाला कहा जाता है। हिन्दी की वर्णमाला इस प्रकार है–

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः
क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ़ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ

वर्ण के भेद

वर्ण दो प्रकार के होते हैं–

1. स्वर
2. व्यंजन

स्वर–जिन वर्णों के उच्चारण में फेफड़ों की वायु बिना रुके (अबाध गति से) मुख से निकल जाए, उन्हें स्वर कहते हैं। स्वर वे होते हैं जिनका उच्चारण स्वयं ही हो जाता है। इसके उच्चारण के लिए किसी अन्य वर्ण की सहायता नहीं लेनी होती है। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ और औ। अ से औ तक हिन्दी वर्णमाला में कुल 11 स्वर हैं।

स्वर-भेद

उच्चारण में लगने वाले समय की दृष्टि से स्वर दो प्रकार के होते हैं–

1. ह्रस्व स्वर
2. दीर्घ स्वर

1. ह्रस्व स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में कम-से-कम समय लगे, उन्हें ह्रस्व स्वर कहते हैं। ऐसा भी कहा जाता है जिस स्वर के उच्चरण में एक मात्रा का समय लगता है उसे ह्रस्व स्वर कहते हैं। हिन्दी में चार स्वर ह्रस्व हैं–अ, इ, उ, ऋ। इन्हें मूल स्वर भी कहते हैं।

2. दीर्घस्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व स्वरों से अधिक, लगभग दुगुना, समय लगता है, उन्हें दीर्घ स्वर कहते हैं। कहने का आशय यह है कि दीर्घ स्वर के उच्चारण में दो मात्रा का समय लगता है। हिन्दी में ऐसे स्वर सात हैं–आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

कभी-कभी दीर्घ स्वरों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि उनके उच्चारण में काफी अधिक समय लगता है, तब इन्हें प्लुत स्वर कहते हैं। इसे बताने के लिए स्वर के आगे (3) का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए ओम्। आजकल इस प्रकार लिखने का प्रचलन नहीं है।

स्वरों की मात्राएँ–

'अ' के अतिरिक्त शेष स्वर जब व्यंजनों के साथ प्रयुक्त किए जाते हैं तो उनकी मात्राएँ ही लगती हैं। 'अ' की मात्रा नहीं होती। अ से रहित व्यंजनों को हलंत लगाकर दिखाया जाता है। यथा–क्, ख्, ग् आदि। 'अ' लगने पर हलंत का चिह्न हट जाता है। क्+अ=क, ख्+अ=ख आदि। इस तरह स्वर जब व्यंजन के साथ प्रयुक्त होते हैं तो उसका रूप बदल जाता है उसके बदले हुए रूप को मात्रा कहते हैं।

विभिन्न स्वरों की मात्राएँ और शब्दों में उनका प्रयोग देखिए–

स्वर	मात्रा	शब्द-प्रयोग	स्वर	मात्रा	शब्द-प्रयोग
अ	–	–	उ	ु	कुत्ता
आ	ा	राम	ऊ	ू	फूल
इ	ि	दिन	ए	े	केला
ई	ी	तीर	ऐ	ै	मैना
ऋ	ृ	कृषक	ओ	ो	कोमल
			औ	ौ	सौरभ

अं को बिन्दु (–) तथा अः को विसर्ग (:) के रूप में लिखा जाता है।

नोट–अं तथा अः को अयोगवाह कहते हैं। स्वतंत्र गति न होने के कारण ये स्वर नहीं माने जाते। स्वरों के साथ प्रयुक्त होने के कारण ये स्वतंत्र व्यंजन नहीं हैं। स्वरों तथा व्यंजनों में से किसी के साथ योग न होने के बावजूद ये ध्वनि वहन करते हैं, इसलिए इन्हें अयोगवाह कहते हैं।

व्यंजन–जिन वर्णों के उच्चारण में फेफड़ों से उठी वायु बीच में पूर्ण या आंशिक रूप से रुककर पुनः निकलती है, उन्हें व्यंजन कहते हैं। व्यंजन वर्ण वे होते हैं जिनके उच्चारण में स्वर वर्ण की सहयता लेनी होती है। क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स और ह व्यंजन वर्ण हैं। क से ह तक हिन्दी वर्णमाला में कुल 33 व्यंजन हैं।

व्यंजन का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना नहीं हो सकता। क में क् व्यंजन के साथ 'अ' सम्मिलित है–क् + अ = क। इसी तरह–

ख् + अ = ख।

ग् + अ = ग।
घ् + अ = घ।
ङ् + अ =ङ।
च् + अ = च।
छ् + अ = छ।
ज् + अ = ज।
झ् + अ = झ।
ञ् + अ = ञ।
ट् + अ = ट।
ठ् + अ = ठ।
ड् + अ = ड।
ढ् + अ = ढ।
ण् + अ = ण।
त् + अ = त।
थ् + अ = थ।
द् + अ = द।
ध् + अ = ध।
न् + अ = न।
प् + अ = प।
फ् + अ = फ।
ब् + अ = ब।
भ् + अ = भ।
म् + अ = म।
य् + अ = य।
र् + अ = र।
ल् + अ = ल।
व् + अ = व।
श् + अ = श।
ष् + अ = ष।
स् + अ = स।
ह् + अ = ह।

व्यंजन के भेद

व्यंजन तीन प्रकार के हैं–

1. स्पर्श (Mutees)
2. अर्न्तस्थ (Semivowels)
3. ऊष्म (Sibilants)

स्पर्श–क् से म् तक व्यंजन स्पर्श हैं।

अंतस्थ–य् र् ल् व् व्यंजन अंतस्थ हैं।

ऊष्म–श् ष् स् ह् व्यंजन ऊष्म कहलाते हैं।

संयुक्त व्यंजन–वैसे तो कोई दो व्यंजन मिल जाने पर संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं, किन्तु देवनागरी लिपि में चार संयुक्त व्यंजन ऐसे हैं जिनके रूप परिवर्तित हो जाते हैं, वे हैं–

वर्ण + वर्ण	संयुक्त व्यंजन		शब्द-प्रयोग
क्+ष	=	क्ष	क्षत्रिय
त्+र	=	त्र	पुत्र
ज्+ञ	=	ज्ञ	ज्ञान
श्+र	=	श्र	श्रवण

कुछ लोग ज्+ञ = ज्ञ का उच्चारण 'ग्य' करते हैं।

द्वित्व व्यंजन–जब शब्द में एक ही वर्ण दो बार मिलकर प्रयुक्त हो तब उसे द्वित्व व्यंजन कहते हैं। जैसे–चिल्ली में 'ल' और चक्का में 'क' का द्वित्व प्रयोग है।

अनुस्वार–(ं) इसका उच्चारण 'म्' अथवा 'न्' के समान होता है। जैसे–जंगल, पतंग आदि।

विसर्ग–(:) इसका उच्चारण 'ह' के समान होता है। जैसे–अत:, पुन: आदि।

अनुनासिक–(ँ) जब किसी वर्ण का उच्चारण नाक तथा मुँह से हो तब उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु लगाया जाता है, जैसे-चाँद, मुँह आदि। इसे अनुनासिक कहते हैं।

अनुस्वार तथा अनुनासिक में अन्तर–अनुस्वार में वर्ण का उच्चारण केवल नासिका से होता है तथा उसमें आधे वर्ग के उच्चारण जितना बल लगता है। अनुनासिक में उच्चारण मुँह तथा नासिका दोनों से होता है। अनुनासिक

(चंद्रबिन्दु से संयुक्त) स्वर के उच्चारण का समय सामान्य वर्ण जितना ही होता है। शब्द में अन्य वर्ण समान रहने पर अनुस्वार एवं अनुनासिक के प्रयोग से अर्थ बदल जाता है। जैसे–'हंस' का अर्थ पक्षी विशेष है जबकि 'हँस' का 'हँसने' की क्रिया है।

हलंत–कोई व्यंजन स्वर से रहित है, यह संकेतित करने के लिए उसके नीचे एक तिरछी रेखा (्) खींच देते हैं। इसे हलंत कहते हैं। प्रायः इसका उपयोग उसी स्थिति में किया जाता है जब ऐसा वर्ण शब्द के अन्त में आए। जैसे–अर्थात्। यों शब्द के बीच में प्रयुक्त वर्ण को भी हलंत किया जा सकता है। जैसे 'कथ्य' को 'कथ्य' भी लिखा जा सकता है।

उच्चारण-स्थान

भिन्न-भिन्न वर्गों का उच्चारण करते समय मुख के जिस भाग पर विशेष बल पड़ता है, उसे वर्ण का उच्चारण-स्थान कहते हैं। जैसे–अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, के उच्चारण में कण्ठ पर अधिक बल पड़ता है, अतः ये वर्ण कण्ठ्य कहलाते हैं। वर्णों के उच्चारण-स्थान को हम निम्नांकित तालिका से समझ सकते हैं।

वर्ण	उच्चारण-स्थान	नाम
अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ,	कण्ठ	कण्ठ्य
इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श,		तालु तालव्य
ऋ, ट, ठ, ड, ढ़, ण, र, ष, ड, ढ़,		मूर्द्धा मूर्द्धन्य
त, थ, द, ध, न, ल, स,	दन्त	दन्त्य
उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म,	ओष्ठ	ओष्ठ्य
ए, ऐ	कण्ठ और ओष्ठ	कण्ठोष्ठ्य
ओ, औ	कण्ठ और तालु	कण्ठ-तालव्य
व	दन्त और ओष्ठ	दन्तोष्ठ्य
ङ	नासिका और कण्ठ	कण्ठ-नासिक्य
ञ	नासिका और तालु	तालू-नासिक्य
ण	नासिका और मूर्द्धा	मूर्द्धा-नासिक्य
न	नासिका और दंत	दंत-नासिक्य
म	नासिका और ओष्ठ	ओष्ठ-नासिक्य
ह	स्वर यंत्र	अलीजिह्व

प्रयत्न

वर्णों का उच्चारण करते समय विभिन्न उच्चारण-अव्यव किस स्थिति और गति में है, इसका अध्ययन 'प्रयत्न' के अंतर्गत किया जाता है। प्रयत्न के आधार पर हिन्दी वर्णों का वर्गीकरण प्रायः निम्नलिखित रूप में किया गया है–

(अ) **स्वर–**(1) जिह्वा को कौन-सा अंश उच्चारण में उठता है, इस आधार पर स्वरों के भेद निम्नलिखित हैं–

अग्र : इ, ई, ए और ऐ अग्र स्वर हैं।

मध्य : अ मध्य स्वर है।

पश्च : आ, उ, ऊ, ओ और औ पश्च स्वर है।

(2) होठों की स्थिति गोलाकार होती है या नहीं, इस आधार पर स्वरों के भेद निम्नलिखित हैं–

वृत्तमुखी : उ, ऊ, ओ और औ वृत्तमुखी स्वर हैं।

अवृत्तमुखी : अ, आ, इ, ई, ए और ऐ अवृत्तमुखी स्वर हैं।

(आ) **व्यंजन–**प्रयत्न के आधार पर हिन्दी व्यंजनों का वर्गीकरण इस प्रकार है–

(1) **स्पर्शी :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में फेफड़ों से आई वायु किसी अवयव को स्पर्श करके निकले, उन्हें स्पर्शी कहते हैं। जैसे–क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब और भ।

(2) **संघर्षी :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में वायु संघर्षपूर्वक निकले, उन्हें संघर्षी कहते हैं। जैसे–श, ष, स और ह।

(3) **स्पर्श-संघर्षी :** जिन व्यंजनों का उच्चारण प्रारम्भ में स्पर्शी और अंततः संघर्षी हो जाए, उन्हें स्पर्श-संघर्षी कहते हैं। जैसे–च, छ, ज और झ। इन व्यंजनों के उच्चारण के प्रारंभ में फेफड़ों से आई हुई वायु अन्य अवयवों को स्पर्श करती है तथा अंततः वायु संघर्षपूर्वक निकलती है।

(4) **नासिक्य :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में वायु मुख्यतः नाक से निकले, उन्हें नासिक्य कहते हैं। जैसे–ड, ञ, ण, न और म।

(5) **पार्श्विक :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में जीभ तालु को तो छुए लेकिन बगल में से हवा निकल जाए, उन्हें पार्श्विक व्यंजन कहते हैं। हिन्दी वर्णमाला में मात्र 'ल' व्यंजन पार्श्विक है।

(6) **प्रकंपी :** जिन व्यंजनों के उच्चरण में वायु उच्चारण-अवयव को कँपाती हुई निकलती है, उन्हें प्रकंपी कहते हैं। हिन्दी वर्णमाला का 'र' वर्ण प्रकंपी व्यंजन है।

(7) **उत्क्षिप्त :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में जीभ के अगले भाग को थोड़ा ऊपर उठाकर झटके से नीचे फेंकते हैं, उन्हें उत्क्षिप्त व्यंजन कहते हैं। ड और ढ, उत्क्षिप्त व्यंजन हैं।

(8) **संघर्षहीन अथवा अर्ध-स्वर :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में वायु बिना किसी अवयव से रगड़ खाए बाहर निकलती है, उन्हें संघर्षहीन अथवा अर्ध-स्वर कहते हैं। य और व वर्ण संघर्षहीन या अर्ध-स्वर हैं।

प्राण (वायु) के आधार पर व्यंजन के भेद

व्यंजनों का उच्चारण करते समय बाहर आने वाली 'वास-वायु की मात्रा के आधार पर व्यंजनों के दो भेदों में विभक्त किया गया है—अल्पप्राण और महाप्राण।

अल्पप्राण व्यंजन—जिन व्यंजनों के उच्चारण में श्वास-वायु कम मात्रा में बाहर निकलती है, उन्हें अल्पप्राण कहते हैं। क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के पहले, तीसरे और पाँचवें वर्ण तथा अंतस्थ व्यंजन अल्पप्राण हैं।

अल्पप्राण व्यंजन

क	ग	ङ	
च	ज	ञ	
ट	ड	ण	
त	द	न	
प	ब	म	
य	र	ल	व

महाप्राण व्यंजन—जिन व्यंजनों के उच्चारण में श्वास-वायु अल्पप्राण की तुलना में कुछ अधिक निकलती है और 'ह' जैसी ध्वनि होती है, उन्हें महाप्राण कहते हैं। क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के दूसरे और चौथे वर्ण तथा ऊष्म व्यंजन महाप्राण हैं।

महाप्राण व्यंजन

ख	घ		
छ	झ		
ठ	ढ		
थ	ध		
फ	भ		
श	ष	स	ह

घोष-अघोष

वर्णों के उच्चारण में होने वाली ध्वनि की गूँज के आधार पर वर्णों के दो भेद हैं–घोष एवं अघोष।

घोष या सघोष वर्ण–जिन वर्गों के उच्चारण में गले के कम्पन से गूँज-सी होती है, उन्हें घोष या सघोष वर्ण कहते हैं। सभी स्वर, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के अंतिम तीन वर्ण और अंतस्थ व्यंजन घोष वर्ण हैं।

घोष वर्ण

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ
ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म
य, र, ल, व

अघोष वर्ण–जिन वर्णों के उच्चारण में गले में कम्पन नहीं होता, उन्हें अघोष कहते हैं। वर्गों के पहले दो वर्ण तथा श, ष, स, अघोष हैं।

क, ख, च, छ, ट
ठ, त, थ, प, फ
श, ष, स

अक्षर

अक्षर का यदि शाब्दिक विश्लेषण किया जाए तो यह दो शब्द अ और क्षर से मिलकर बना है। यहाँ क्षर का आशय है नष्ट होने वाला तथा अ नाकारात्मक बोधक है। इस तरह अक्षर नष्ट न होने वाली ध्वनि है। सामान्यत: 'अक्षर' शब्द का प्रयोग स्वरों और व्यंजनों के लिपि-चिन्हों के लिए होता है। जैसे–उसके अक्षर बहुत सुन्दर हैं। व्याकरण में ध्वनि की उस छोटी-से-छोटी इकाई को अक्षर कहते हैं जिसका उच्चारण एक झटके से होता है। अक्षर में व्यंजन एकाधिक हो सकते हैं, किन्तु स्वर प्राय: एक ही होता है। हिन्दी में एक अक्षर वाले शब्द भी हैं अनेक अक्षरों वाले भी। जैसे–

एक अक्षर वाले शब्द–खा, गा, जा, ना
दो अक्षरों वाले शब्द–चित्र, मति, बस, नल
तीन अक्षरों वाले शब्द–काजल, साजन, देवता
चार अक्षरों वाले शब्द–चमचम, हलधर, जलचर
पाँच अक्षरों वाले शब्द–मनमोहन, जगमगाना

छः अथवा उससे अधिक अक्षरों वाले शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है।

बलाघात

जब हम शब्द का उच्चारण करते हैं उस समय किसी एक अक्षर पर दूसरे अक्षरों की तुलना में कुछ अधिक बल दिया जाता है। जैसे–'नहर' में 'न और 'र' पर 'ह' की तुलना में अधिक बल है। इसी प्रकार 'समान' में 'मा' पर अधिक बल है, इसे बलाघात कहा जाता है। जब हम एक शब्द का उच्चारण कर रहे होते हैं तो बलाघात का अर्थ पर प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन जब हम वाक्य बोल रहे होते हैं तब बलाघात से अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिए एक वाक्य देखिए–

मोहन राधा के साथ दिल्ली जाएगा।

इस वाक्य में भिन्न-भिन्न शब्दों पर बलाघात से निकलने वाला अर्थ कोष्ठक में दिया गया है–

मोहन राधा के साथ दिल्ली जाएगा। (मोहन जाएगा, कोई और नहीं)

मोहन राधा के साथ दिल्ली जाएगा। (राधा के साथ जाएगा किसी और के साथ नहीं)

मोहन राधा के साथ **दिल्ली** जाएगा। (दिल्ली जाएगा, कहीं और नहीं)

मोहन राधा के साथ **दिल्ली** जाएगा। (निश्चय ही जाएगा)

यह अर्थ केवल उच्चारण की दृष्टि से है, लिखने में यह अंतर लक्षित नहीं हो सकता।

अनुतान

जब हम किसी ध्वनि का उच्चारण करते हैं तो उसका एक 'सुर' होता है। जब एकाधिक ध्वनियों से बने शब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य का प्रयोग करते हैं तो सुर के तार-चढ़ाव से एक सुरलहर बन जाती है। इसे अनुतान कहते हैं। एक ही शब्द को विभिन्न अनुतानों में उच्चरित करने से उसका अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए 'सुनो' शब्द लें। विभिन्न अनुतानों में इसका अर्थ अलग-अलग होगा। नीचे के वाक्य में इस अन्तर को देखें–

1. प्रधानमंत्री जी का भाषण ध्यान से सुनो।
2. मेरी बात तो सुनो!
3. मेरी बात तो सुनोगे नहीं।

उपरोक्त वाक्य–1 में सामान्य अर्थ प्रकट किया गया है, वाक्य–2 में आग्रह किया गया है और वाक्य–3 में क्रोध प्रकट किया गया है।

शब्द-विचार

शब्द-विचार में शब्दों की बनावट, भेद, प्रयोग आदि का अध्ययन किया जाता है। यहाँ हम सबसे पहले जाने की शब्द क्या है?

अपनी बात कहने के लिए हम अनेक ध्वनि समूहों का प्रयोग करते हैं। ध्वनि-समूह की एक सार्थक इकाई ही शब्द है। कई शब्द केवल एक वर्ण के होते हैं। जैसे–आ (आने के अर्थ में), जा (जाने के अर्थ में), खा (खाने के अर्थ में) 'न' (नहीं के अर्थ में), 'व' (तथा के अर्थ में) आदि। अधिकांश शब्दों में एकाधिक वर्ण होते हैं। जैसे–जल में दो, नमक में तीन तथा नभचर में चार वर्ण हैं।

''शब्द वर्णों का ऐसा समूह है जिसका एक सार्थक अर्थ होता है।''

शब्द-भेद

शब्द का वर्गीकरण कोई आधारों पर किया जाता है। जैसे–अर्थ के आधार पर, उत्पत्ति के आधार पर, बनावट के विचार से, प्रयोग के विचार से आदि।

अर्थ की दृष्टि से शब्द के भेद–अर्थ की दृष्टि से शब्द दो प्रकार के होते हैं–

1. सार्थक शब्द
2. निरर्थक शब्द।

1. सार्थक शब्द–सार्थक ऐसे शब्द हैं जिनका कोई सार्थक अर्थ होता है। जैसे–चाय, रोटी, वर्षा आदि।

2. निरर्थक शब्द–निरर्थक शब्द वे शब्द हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता है। जैसे–थन, खन, झन आदि।

बहुधा हम दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग जाने-अनजाने करते हैं। जैसे–रोटी-सोटी, चाय-वाय, पानी-वानी आदि में रोटी, चाय और पानी शब्द सार्थक हैं, सोटी, वाय और वानी शब्द निरर्थक हैं।

उत्पत्ति के आधार पर शब्द के भेद–उत्पत्ति के आधार पर शब्द चार प्रकार के हैं–

1. तत्सम शब्द
2. तद्भव शब्द

3. देशज शब्द
4. विदेशी शब्द।

1. तत्सम शब्द–संस्कृत का वह शब्द जो अपने रूप बदले बिना ज्यों का त्यों हिन्दी में प्रयुक्त होता हैं, तत्सम शब्द कहलाता है। जैसे–घृत, स्नेह, गुरु, अग्नि, सूर्य, वायु आदि।

2. तद्भव शब्द–संस्कृत का जो शब्द अपना रूप बदलकर हिन्दी में प्रयुक्त होता है तद्भव कहलाता है। जैसे–सर्प से साँप, तृण से तिनका, मयूर से मोर, अग्नि से आग, सूर्य से सूरज आदि।

3. देशज शब्द–हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले मूल शब्द जिनकी उत्पत्ति अपने देश में हुई हो देशज कहलाता है। जैसे–खिड़की, झाड़ू, थैला, पेट, तेंदुआ, लड़का आदि।

4. विदेशज शब्द–आपसी सम्पर्क से अन्य देशों की भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में अपना लिए गए हैं, विदेशज शब्द कहलाते हैं। जैसे–किताब, मदरसा, गुलाब, दरोगा, बहादुर, चाकू, आलपिन, प्याला, पादरी, पैन, पैन्सिल, स्कूल, औरत, अमीर गरीब, कर्फ्यू, पुलिस, लीची, रिक्शा आदि।

हिन्दी में अंग्रेजी, यूनानी, अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा चीनी आदि भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों की एक संक्षिप्त सूची नीचे दी गई है–

फारसी भाषा के शब्द–गुलाब, उस्ताद, बाग, खूबसूरत, किताब, मदरसा आदि।

तुर्की भाषा के शब्द–लाश, चाकू, कैंची, दरोगा, बहादुर आदि।

पुर्तगाली भाषा के शब्द–आलपिन, प्याला, बाल्टी, आलू, कमरा, पादरी, कारतूस, गमला आदि।

अंग्रेजी भाषा के शब्द–रेडियो, टेलीविजन, मशीन, स्टेशन, इंजन, सिगरेट फुटबॉल, पैन, पैन्सिल, स्कूल, कॉलिज आदि।

अरबी भाषा के शब्द–आदत, तहसील, औरत, अमीर गरीब, मालिक आदि।

फ्रेंच (फ्रांसीसी) भाषा के शब्द– पुलिस, कर्फ्यू, बिगुल आदि।

चीनी भाषा के शब्द–लीची, चाय आदि।

जापानी भाषा के शब्द–रिक्शा आदि।

बनावट (व्युत्पत्ति) की दृष्टि से शब्द के भेद–बनावट (व्युत्पत्ति) की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के हैं–

1. रूढ़
2. यौगिक
3. योगरूढ़।

1. रूढ़–रूढ़ शब्द वैसे शब्दों को कहा जाता है जिनाका खण्ड या टुकड़ा किया जाए तो कोई अर्थ नहीं निकले। ऐसे शब्द परम्परा से किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त तो हो रहे होते हैं, लेकिन इनके विभिन्न अंगों अथवा टुकड़ों का कोई अर्थ नहीं होता है। जैसे–नल में 'न' 'ल', जल में 'ज' 'ल' का कोई अर्थ नहीं है।

2. यौगिक–जो शब्द दो या दो से अधिक ऐसे शब्दों से मिलकर बने हों जिनका अलग अर्थ भी निकलता हो, उन्हें यौगिक शब्द कहते हैं। जैसे–विद्यालय जो विद्या और आलय से मिलकर बना है जिसका अलग-अलग अर्थ होता है। उसी तरह विद्यार्थी में विद्या और अर्थी का, राजपुत्र में राज और पुत्र का, यदुनन्दन में यदु और नन्दन का अलग-अलग अर्थ होता है।

3. योगरूढ़–योगरूढ़ ऐसे शब्द होते हैं जिनमें रूढ़ और यौगिक दोनों के गुण विद्यमान होते हैं। ये शब्द यौगिक शब्दों के समान दो या दो से अधिक शब्दों अथवा शब्दांशों से मिलकर बने होते हैं, लेकिन रूढ़ के समान एक विशेष अर्थ ही बताते हैं। जैसे–नीलकण्ठ जिसका अर्थ होता है निले कण्ठ वाला नील और कण्ठ दो शब्दों से मिलकर तो बना है किन्तु यह शब्द केवल शिव के लिए प्रयुक्त होता है, अतः यह योगरूढ़ शब्द है। इसी प्रकार जलद, चतुर्भुज, पंकज, हिमालय, दशानन आदि शब्द योगरूढ़ हैं।

प्रयोग की दृष्टि से शब्द के भेद–प्रयोग की दृष्टि से शब्द के आठ भेद हैं–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. अव्यव

1. संज्ञा–किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, जाति अथवा भाव आदि के नाम का बोध कराने वाले शब्द संज्ञा कहलाते हैं। जैसे–राम, श्याम, मोहन, सोहन, व्यक्ति, चीनी, सोना आदि।

2. सर्वनाम–संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहा जाता है। जैसे–मैं, हम, तू, तुम, यह, वह, वे, आप, कौन, कुछ, क्या, हमारा, तुम्हारा आदि।

3. विशेषण–संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। जैसे–लाल, पीला, काला, थोड़ा, अधिक, ज्यादा आदि।

4. क्रिया–जिस पद या पद-समूह से किसी कार्य का करना या होना प्रकट हो, उसे क्रिया कहते हैं। जैसे–चलना, पढ़ना, होना, खेलना आदि।

5. अव्यव–वे शब्द जिनका रूप लिंग, वचन, काल आदि के अनुसार नहीं बदलता है अव्यव कहलाते हैं। जैसे–और, एवं, या, अथवा आदि।

इन पांचों प्रकार के शब्दों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. विकारी शब्द
2. अविकारी शब्द।

1. विकारी शब्द–प्रयोग में आने पर जिन शब्दों के रूप में परिवर्तन (विकार) हो सकता है, उन्हें विकारी शब्द कहते हैं। जैसे–बालक (संज्ञा शब्द), बहुवचन के रूप में प्रयुक्त होने पर 'बालकों' (बालकों को पढ़ना चाहिए।) बन जाता है। इस दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया विकारी शब्द हैं।

2. अविकारी शब्द–विभिन्न प्रसंगों में प्रयोग करने पर जो शब्द अपने मूल रूप में बने रहते हैं अर्थात् उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता, उन्हें अविकारी शब्द कहते हैं। जैसे–राधा रोज खेलने को जाती है। हम रोज खेलने को जाते हैं। इन दो वाक्यों में 'रोज' क्रिया-विशेषण है जो एकवचन और बहुवचन कर्ता के साथ बिना परिवर्तन प्रयुक्त हुआ है। अतः यह अविकारी शब्द है। क्रिया-विशेषण के अतिरिक्त सम्बंधबोधक (दूर, पास, आगे, पीछे आदि), समुच्चयबोधक (और, क्यों आदि) तथा विस्मयादिबोधक (अरे! ओह! आदि) भी अविकारी शब्द हैं।

पद-परिचय

वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद कहलाते हैं। व्याकरण की दृष्टि से उनका पूर्ण परिचय देना ही पद-परिचय है। इस परिचय में पद के भेद, उपभेद, वचन, कारक आदि का निर्देश किया जाता है।

शब्द के निम्नलिखित आठ प्रकार हम पढ़ चुके हैं–

1. संज्ञा,
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. क्रिया-विशेषण
6. सम्बन्धबोधक
7. समुच्चयबोधक
8. विस्मयादिबोधक।

इनके परिचय में निम्नलिखि विवरण दिया जाना चाहिए–

संज्ञा–भेद, लिंग, वचन, कारक, क्रिया के साथ सम्बंध।

सर्वनाम–भेद, लिंग, वचन, पुरुष, कारक, क्रिया के साथ सम्बंध

विशेषण–भेद, लिंग, वचन, अवस्था, विशेष्य।

क्रिया–भेद, पुरुष, लिंग, वचन, काल, अर्थ, वाच्य, प्रयोग कर्ता, और कर्म का संकेत।

क्रिया-विशेषण–भेद, संबंधित क्रिया का निर्देश।

सम्बंधबोधक–भेद, संबंधित शब्दों का निर्देश।

समुच्चयबोधक–भेद, योजित शब्दों या वाक्यांशों का निर्देश।

विस्मयादिबोधक–भेद।

पद परिचय उदाहरण–1

नरेन्द्र ने मेहनत किया और वह सातवीं कक्षा में सफल हुआ।

नरेन्द्र ने– संज्ञा, व्यक्तिवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, कर्ताकारक, किया और आया क्रियाओं का कर्ता।

मेहनत– संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिंग, एकवचन, कर्मकारक, किया क्रिया का कर्म।

किया– क्रिया, सकर्मक, अन्य पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, भूतकाल, निश्चयार्थक, कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, कर्ता मनोहर।

और– समुच्चयबोधक, समानाधिकरण, संयोजक।

वह– सर्वनाम, पुरुषवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, कर्ताकारक, आया क्रिया का कर्ता।

सातवीं– विशेषण, क्रमवाचक, निश्चित संख्यावाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, मूलावस्था, कक्षा विशेष्य का विशेषण।

कक्षा में– संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, अधिकरण कारक।

सफल– विशेषण, क्रमवाचक, निश्चित संख्यावाचक, पुल्लिंग, एकवचन, मूलावस्था (अनिर्दिष्ट 'स्थान' विशेष्य का विशेषण)।

हुआ– क्रिया, सकर्मक, अन्य पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, भूतकाल, निश्चयार्थ, कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, कर्ता वह।

उदाहरण–2

अरे! तुम तेज दौड़कर सड़क के इस ओर आ पहुँचे।

अरे!–विस्मयादिबोधक, आश्चर्यसूचक!

तुम–सर्वनाम, पुरुषवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, मध्यम पुरुष, कर्ताकारक, चलकर तथा पहुँचे क्रियाओं का कर्ता।

तेज–क्रिया-विशेषण, रीतिवाचक, 'चलकर' क्रिया की विशेषता का निर्देशक।

दोड़कर–क्रिया, पूर्वकालिक, पुल्लिंग, एकवचन, भूतकाल, निश्चयार्थ कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, आप सर्वनाम कर्ता की क्रिया।

सड़क के–संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, सम्बन्ध कारक

इस–विशेषण, सार्वनामिक, पुल्लिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, कर्मकारक।

ओर–संज्ञा, जातिवाचक, एकवचन, अधिकरण कारक।

आ पहुँचे–क्रिया, संयुक्त, मध्यम पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, भूतकाल, निश्चयार्थ, कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, 'आप' कर्ता की क्रिया।

नोट–पद-परिचय में शब्द के प्रयोग का आधार लिया जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में 'इस' पद सर्वनाम न होकर सार्वनामिक विशेषण होगा।

वाक्य-विचार

एक भाव या विचार को व्यवस्थित रूप से प्रकट करने वाले सार्थक शब्द समूह को वाक्य कहते हैं। जैसे–

राजेन्द्र रोटी खाता है।

शिक्षक छात्रों को पढ़ा रहा है।

गंगा नदी भारत के उत्तरी भाग में प्रवाहित होती है।

उपर्युक्त तीनों शब्द-समूह निश्चित अर्थ देते हैं। अगर वक्ता इन्हें कहता है तो श्रोता को पूरा अर्थ समझ में आ जाता है। इन्हें ही वाक्य कहते हैं।

वाक्य में प्रयुक्त शब्द सार्थक होते हैं, इनका विशेष क्रम और प्रवाह होता है तथा प्रकरण के अनुसार ये पूरा अर्थ व्यक्त करने में समर्थ होते हैं।

ध्यान रखिए कि वाक्य एक या दो शब्दों का भी हो सकता है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच वार्तालाप में ऐसी स्थितियाँ प्रायः आ जाती हैं। उदाहरण–

साक्षात्कार लेने वाला–आपका नाम क्या है?

साक्षात्कार देने वाला–आशा।

साक्षात्कार लेने वाला–आपने कहाँ तक शिक्षा पाई है?

साक्षात्कार देने वाला–एम. ए. तक।

इनमें 'साक्षात्कार देने वाला' के उत्तर मूलतः वाक्य हैं। 'आशा' कहने का तात्पर्य है–मेरा नाम आशा है। इसी प्रकार 'एम. ए. तक' कहने का अर्थ है, मैंने एम. ए. तक शिक्षा पाई हैं। अतः मूलतः ये वाक्य ही हैं। अगर बालक माँ से जाकर कहता है–'रोटी' तो वह कहना चाहता है–'मुझे भूख लगी है, रोटी दो'।

वाक्य के अंग–वाक्य के दो प्रमुख अंग हैं–उद्देश्य तथा विधेय।

उद्देश्य–वाक्य में जिसके सम्बन्ध में कुछ बताया जाय, उसे उद्देश्य कहते हैं।

विधेय–उद्देश्य के सम्बन्ध में जो कुछ बताया जाय, उसे विधेय कहते हैं।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए–

रमा पुस्तक पढ़ती है।

गाय दूध देती है।

इन वाक्यों में 'रमा' और 'गाय' उद्देश्य हैं और 'पुस्तक पढ़ता है' तथा 'दूध देती है' विधेय हैं।

उद्देश्य और विधेय का विस्तार–

मेरी बहन काजल पत्र लिखती है।

लाल गाय दूध देती है।

मेरा भाई सोहन अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ता है।

भूरी गाय बहुत अधिक दूध देती है।

पहले दो वाक्यों में उद्देश्य का विस्तार है। 'मेरा' तथा 'लाल' विशेषणों से क्रमशः 'बहन' और 'गाय' उद्देश्य का विस्तार हुआ है। तीसरे और चौथे वाक्य में विधेय का भी विस्तार है। 'अंग्रेजी की' और 'बहुत अधिक' मूल विधेय के विस्तार हैं।

पदबंध

वाक्य पर विस्तृत विचार करने से पूर्व हम पदबंध के सम्बन्ध में जान लें। वाक्य में प्रयुक्त शब्द पद कहलाता है। पदों के व्यवस्थित समूह को ही वाक्य कहते हैं। इन दोनों के मध्य की स्थिति पदबंध की है। इसमें एकाधिक पद होते हैं, लेकिन यह वाक्य की तरह स्वयं में पूर्ण नहीं होता, वाक्य में ही कोई व्याकरणिक कार्य करता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए–

बस स्टैण्ड पर पहुँच चुकी है।

रानीखेत से आने वाली बस स्टैण्ड पर पहुँच चुकी है।

पहले वाक्य में कर्ता गाड़ी है। दूसरे वाक्य में कर्ता 'देहरादून से आने वाली गाड़ी' है जो एक पदबंध है। इसी प्रकार दो और वाक्य देखिए–

नगमा बहुत थक गई।

सुबह से शाम तक काम करते-करते नगमा बहुत थक गई।

पहले वाक्य में कर्ता एक पद है–'नगमा', किन्तु दूसरे वाक्य में एक पदबंध–'सुबह से शाम तक काम करते-करते नगमा'।

पदबंध के भेद–मुख्य पद के आधार पर पदबंध के पाँच प्रकार होते हैं–

1. संज्ञा पदबंध
2. सर्वनाम पदबंध
3. विशेषण पदबंध
4. क्रिया पदबंध
5. अव्यय पदबंध

1. संज्ञा पदबंध–वह पदबंध जो वाक्य में संज्ञा का कार्य करे, संज्ञा पदबंध कहलाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए–

रानीखेत से आने वाली बस स्टैण्ड पर पहुँच चुकी है।

पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर वह बहुत दुःखी हुआ।

हाथों-हाथ बिक जाने वाली पुस्तक हमने प्रकाशित की है।

इन वाक्यों में मोटे अक्षरों में छपे पदबंध संज्ञा पदबंध हैं, वे क्रमशः बस, समाचार और पुस्तक–इन संज्ञा शब्दों से सम्बद्ध हैं।

2. सर्वनाम पदबंध–वह पदबंध जो वाक्य में सर्वनाम का कार्य करे, सर्वनाम पदबंध कहलाता है। उदाहरण के लिए–

शरारत करने वाले छात्रों में से कुछ पकड़े गए।

विरोध करने वाले लोगों में से कोई नहीं बोला।

बिजली-सी फुरती दिखाकर आपने बालक को डूबने से बचा लिया।

उपर्युक्त वाक्यों में मोटे अक्षरों में छपे पदबंध सर्वनाम पदबंध हैं क्योंकि वे क्रमशः 'कुछ', 'कोई' और 'आपने'–इन सर्वनाम शब्दों से सम्बद्ध हैं।

3. विशेषण पदबंध–वह पदबंध जो संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बतलाता हुआ विशेषण का कार्य करे, विशेषण पदबंध कहलाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए–

सुन-सान वन खेत देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ।

चीते की तरह तेज़ दौड़ने वाले धावक को न जाने क्या हो गया?

इन वाक्यों में 'सुन-सान वन' और 'चीते की तरह तेज़ दौड़ने वाले' पदबंध क्रमशः खेत तथा धावक की विशेषताएँ बता रहे हैं, अतः ये विशेषण पदबंध हैं।

4. क्रिया पदबंध–वह पदबंध जो अनेक क्रिया-पदों से मिलकर बना हो, क्रिया पदबंध कहलाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए–

वे सब आकाश में **उड़ना चाहते हैं।**

वह **हँसते-हँसते सो गया।**

इन वाक्यों में **'उड़ना चाहते हैं'** और **'हँसते-हँसते सो गया'** क्रिया पदबंध हैं क्योंकि वे अनेक क्रिया-पदों से मिलकर बने हैं।

5. अव्यय पदबंध–वह पदबंध जो वाक्य में अव्यय का कार्य करे, अव्यय पदबंध कहलाता है। इस पदबंध का अंतिम शब्द अव्यय होता है। उदाहरण–

सुबह से शाम तक आप बैठे रहे।

अपने सामान **के साथ** वह चला गया।

इन वाक्यों में मोटे अक्षरों में छपे शब्द-समूह अव्यय पदबंध हैं।

वाक्य के भेद

वाक्य के भेद मुख्यत: दो आधारों पर किए जाते हैं–
(क) अर्थ, और (ख) रचना।

अर्थ के आधार पर वाक्य-भेद

अर्थ के आधार पर वाक्य के आठ भेद हैं–

1. विधानार्थक वाक्य–जिन वाक्यों में सामान्य रूप से किसी कार्य के करने अथवा होने का कथन हो, उन्हें विधानार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

तुम आज मुम्बई जा रहा हूँ।
नभ में बादल छाए हुए हैं।

2. निषेधार्थक वाक्य–जिन वाक्यों में किसी बात के न करने या न होने का कथन हो, उन्हे निषेधार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

तुम आज नहीं जाओगे।
अब वर्षा नहीं होगी।

3. प्रश्नार्थक वाक्य–जिन वाक्यों में प्रश्न किया जाए, उन्हें प्रश्नार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

क्या तुम चाय पीओगे?
क्या राम पुस्तक पढ़ना चाहता है?

4. आज्ञार्थक वाक्य–जिन वाक्यों में आदेश अथवा अनुमति दी जाए, उन्हें आज्ञार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

आप शीघ्र जाइए। (आज्ञा)
तुम यह कलम ले सकते हो। (अनुमति)

5. संदेहार्थक वाक्य–जिन वाक्यों में संदेह या संभावना व्यक्त हो, उन्हें संदेहार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

आज शायद राजेश आ जाए।
अब तक तुम मुझे भूल गए होगे।

6. इच्छार्थक वाक्य–जिन वाक्यों में इच्छा अथवा आशा को प्रकट किया गया हो, उन्हें इच्छार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

सबका मंगल हो।
ईश्वर आपको स्वस्थ रखे।

7. संकेतार्थक वाक्य–जिन वाक्यों से संकेत अथवा शर्त का बोध हो, उन्हें संकेतार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे–

यदि वह परिश्रम करता तो निश्चित सफल होता।

अगर तुम चलोगे तो मैं भी चलूँगा।

8. विस्मयादिवाचक वाक्य–जिन वाक्यों में विस्मय, शोक, हर्ष, घृणा आदि के भाव व्यक्त हों, उन्हें विस्मयादिवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे–

अहा! कितना अच्छा मौसम है।

ओह! घोर अनर्थ हो गया।

रचना के आधार पर वाक्य-भेद

रचना के आधार पर वाक्य के तीन भेद हैं–

1. साधारण या सरल वाक्य
2. संयुक्त वाक्य
3. मिश्र वाक्य

1. साधारण या सरल वाक्य–जिन वाक्यों में एक मुख्य क्रिया और एक ही उद्देश्य हो, उन्हें साधारण अथवा सरल वाक्य कहते हैं। जैसे–

तुम पुस्तक पढ़ते हो।

कल बहुत ज़्यादा सर्दी थी।

सरल वाक्यों में कर्ता के साथ उसके विस्तारक–विशेषण और क्रिया-के अतिरिक्त कर्म तथा उसके विस्तारक क्रिया-विशेषण भी आते हैं।

2. संयुक्त वाक्य–संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक समान स्तर के साधारण वाक्य होते हैं जो समानाधिकरण समुच्चयबोधक से जुड़े होते हैं। जैसे–

उमेश कल आया और आज चला गया।

समुच्चयबोधक अव्यय के आधार पर ऐसे वाक्य चार प्रकार के हैं–

(क) संयोजक–जब संयुक्त वाक्य संयोजक अव्यय से जुड़ा हो। जैसे–मोहन ने खाना खाया और सो गया।

(ख) विभाजक–जब वाक्यों में परस्पर विरोध या भेद की स्थिति हो। जैसे–तुम बातें तो बहुत करते हो लेकिन काम थोड़ा भी नहीं करते।

(ग) विकल्पसूचक–जब दो बातों में से किसी एक को स्वीकार करने का भाव हो। जैसे–या तो मैं जीतूँगा अथवा क्रिकेट खेलना ही छोड़ दूँगा।

(घ) परिणामबोधक–जब एक वाक्य दूसरे वाक्य का परिणाम हो। जैसे–उसके पास कॉपी नहीं है, इसलिए वह नहीं लिख रहा।

3. मिश्र वाक्य–जब दो ऐसे वाक्य मिलें जिनमें एक मुख्य उपवाक्य तथा एक गौण या आश्रित उपवाक्य हो, तब मिश्र वाक्य बनता है। मिश्र वाक्य भी व्यधिकरण समुच्चयबोधक आदि से जुड़े होते हैं। जैसे–

मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऑस्ट्रेलिया विश्व कप जीतेगा।

सफल वही होता है जो परिश्रम करता है।

उपर्युक्त वाक्यों में 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि' तथा 'सफल वही होता है' मुख्य उपवाक्य हैं और 'आस्ट्रेलिया विश्व कप जितेगा' तथा 'जो परिश्रम करता है' गौण उपवाक्य। इसलिए ये मिश्र वाक्य हैं।

गौण अथवा आश्रित उपवाक्य के भेद–गौण अथवा आश्रित उपवाक्य के तीन भेद हैं–

(क) संज्ञा उपवाक्य

(ख) विशेषण उपवाक्य

(ग) क्रिया-विशेषण उपवाक्य

(क) संज्ञा उपवाक्य–जो गौण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य का उद्देश्य (कर्ता), कर्म अथवा पूरक बनकर संज्ञा या सर्वनाम के स्थान पर प्रयुक्त हो, वह संज्ञा उपवाक्य कहलाता है। जैसे–

तुमने जो किया, ठीक किया।

इस वाक्य में गौण उपवाक्य 'ठीक किया' मुख्य उपवाक्य की क्रिया 'किया' का उद्देश्य है।

आशा ने कहा कि मुझे पढ़ना है।

यहाँ 'मुझे पढ़ना' उपवाक्य प्रधान उपवाक्य का कर्म है।

उक्त दोनों उपवाक्य संज्ञा उपवाक्य के उदाहरण हैं।

(ख) विशेषण उपवाक्य–जो गौण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की संज्ञा, सर्वनाम या संज्ञा पदबंध की विशेषता बताए, वह विशेषण उपवाक्य कहलाता है। जैसे–

तुमने मुझे ऐसा कपड़ा दिया है जो सुन्दर और टिकाऊ है।

यहाँ 'सुन्दर और टिकाऊ' उपवाक्य पहले उपवाक्य की संज्ञा (कपड़े) की विशेषता बता रहा है। अन्य उदाहरण–

मेरा एक मित्र है जो बहुत अच्छा और बहादूर है।

'अच्छा और बहादूर' उपवाक्य पहले उपवाक्य में आए मित्र के विशेषण रूप में आया है।

उक्त दोनों उपवाक्य विशेषण उपवाक्य के उदाहरण हैं।

(ग) क्रिया-विशेषण उपवाक्य–जो गौण या आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की काल या स्थान आदि से सम्बद्ध विशेषता बताएँ, उन्हें क्रिया-विशेषण उपवाक्य कहते हैं। जैसे–तुमने **जब भी वहाँ जाना चाहा,** नरेन्द्र ने तुम्हे रोक दिया।

इस वाक्य में 'जब भी' से प्रारम्भ होने वाला उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया 'रोक दिया' का समय बता रहा है। अन्य उदाहरण–

जहाँ-जहाँ तुमने चिह्न लगाया, वहाँ मैंने चित्र सुधार दिया है।

इस वाक्य में 'जहाँ-जहाँ' से शुरू होने वाला उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया 'रोक लिया' का स्थान बता रहा है।

उपर्युक्त दोनों उपवाक्य क्रिया-विशेषण उपवाक्य के उदाहरण हैं।

वाक्य-परिवर्तन–अर्थ में परिवर्तन लाए बिना वाक्य की रचना में परिर्वतन किया जा सकता है। सरल वाक्यों से संयुक्त अथवा मिश्र वाक्य बनाए जा सकते हैं। इसी प्रकार संयुक्त अथवा मिश्र वाक्यों को सरल वाक्यों में बदला जा सकता है। ध्यान रखिए कि इस परिवर्तन के कारण कुछ शब्द, योजक चिह्न या सम्बंधबोधक लगाने या हटाने पड़ सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिए–

(क) साधारण वाक्यों का संयुक्त वाक्यों में परिवर्तन

साधारण वाक्य – राम खाना खाकर बाजार चला गया।

संयुक्त वाक्य – राम ने खाना खाया और बाजार चला गया।

साधारण वाक्य –वहाँ पहुँचकर मैंने रमेश को अपनी प्रतीक्षा करते देखा।

संयुक्त वाक्य – वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि रमेश मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

साधारण वाक्य – ज्वर होने के कारण मैं विद्यालय नहीं जा सका।

संयुक्त वाक्य – मुझे ज्वर था इसलिए मैं विद्यालय नहीं जा सका।

इस प्रक्रिया के ठीक विपरीत संयुक्त वाक्यों को साधारण वाक्यों में परिवर्तित किया जा सकता है। एक उदाहरण देखिए–

संयुक्त वाक्य – जो लोग बुद्धिमान हैं वे अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाते।

साधारण वाक्य – बुद्धिमान लोग अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाते।

(ख) साधारण वाक्यों का मिश्र वाक्यों में परिवर्तन–

साधारण वाक्य – आपत्ति में काम न आने वाले मित्र पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

मिश्र वाक्य – जो मित्र आपत्ति में काम न आए, उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

साधारणय वाक्य– बीमार होने के कारण वह कहीं आ-जा नहीं सकता।

मिश्र वाक्य – वह इतना बीमार है कि कहीं आ-जा नहीं सकता।

साधारण वाक्य –परिश्रम करने वाला व्यक्ति कभी भूखा नहीं मरता।

मिश्र वाक्य – जो व्यक्ति परिश्रम करता है, वह कभी भूखा नहीं मरता।

इस प्रक्रिया के ठीक विपरीत मिश्र वाक्यों को साधारण वाक्यों में बदला जा सकता है। एक उदाहरण देखिए–

मिश्र वाक्य – जो लोग नियमित रूप से व्यायाम करते हैं, वे सैदव स्वस्थ रहते हैं।

साधारण वाक्य – नियमित रूप से व्यायाम करने वाले लोग सदैव स्वस्थ रहते हैं।

(ग) संयुक्त वाक्यों का मिश्र वाक्यों में परिवर्तन–

संयुक्त वाक्य – सूर्य निकला और कमल खिल गए।

मिश्र वाक्य – जब सूर्य निकला, तो कमल खिल गए।

संयुक्त वाक्य – छुट्टी की घंटी बजी और सब छात्र भाग गए।

मिश्र वाक्य – जब छुट्टी की घंटी बजी, तब सब छात्र भाग गए।

अर्थ की दृष्टि से वाक्य में परिवर्तन–अर्थ की दृष्टि से वाक्य के आठ भेद हम पढ़ चुके हैं। उनका भी रूपान्तरण हो सकता है। एक वाक्य का उदाहरण देखिए–

विधानवाचक	–	रमा पुस्तक पढ़ेगी।
निषेधवाचक	–	रमा पुस्तक नहीं पढ़ेगी।
प्रश्नवाचक	–	क्या रमा पुस्तक पढ़ेगी?
विस्मयवाचक	–	अरे! रमा पुस्तक पढ़ेगी।
आज्ञावाचक	–	रमा, पुस्तक पढ़ो।
इच्छावाचक	–	रमा पुस्तक पढ़े।
संदेहवाचक	–	रमा पुस्तक पढ़ती होगी।
संकेतवाचक	–	रमा पुस्तक पढ़े तो.....

वाक्य में पदों का क्रम–हम पढ़ चुके हैं कि वाक्य शब्दों के व्यवस्थित समूह का नाम है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद कहलाते हैं। प्रत्येक भाषा की वाक्य-रचना में शब्दों का विशेष क्रम होता है। हिन्दी में भी पदों को विशेष क्रम में रखने के नियम हैं। कुछ प्रमुख नियम इस प्रकार हैं–

1. सामान्यत: कर्ता वाक्य के आरम्भ में लगाया जाता है। यदि सम्बोधन या विस्मयादिबोधक पद का प्रयोग हुआ हो तो वह प्रारम्भ में आएगा। जैसे–
   (क) सोहन आम खाता है। (सोहन कर्ता है।)
   (ख) अरे! सोहन पाठशाला जाता है। (अरे! विस्मयादिबोधक है।)
2. कर्ता के पश्चात् कर्म (यदि हो तो) और अंत में क्रिया रहती है। जैसे–राजा आम खाता है। (आम कर्म, 'खाता है' क्रिया है।)
3. कर्ता, कर्म तथा क्रिया का विस्तार क्रमश: इनसे पूर्व रहता है। जैसे–भूखा बच्चा मीठा आम जल्दी-जल्दी खाता है।

('भूखा' में कर्ता बच्चा का, 'मीठा' में कर्म आम का तथा 'जल्दी-जल्दी' में क्रिया 'खाता है' का विस्तार है।)

4. पदवी या व्यवसाय-सूचक शब्द नाम से पूर्व आते हैं। जैसे–डॉ॰ रमेश गुप्ता मेरा इलाज कर रहे हैं। (डॉ॰ व्यवसाय-सूचक)
5. द्विकर्मक क्रिया होने पर गौण कर्म पहले और मुख्य कर्म बाद में आएगा। जैसे–राजेन्द्र लाल कागज़ पर कहानी लिखता है। (कागज़ गौण और कहानी मुख्य कर्म है।)
6. पूर्वकालिक क्रिया मुख्य क्रिया से पूर्व आती है। जैसे–वह पानी पी कर टहलने गया। ('पी कर' क्रिया पूर्वकालिक है।)
7. करण, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण कारक कर्ता और कर्म के मध्य रखे जाते हैं। जैसे–वह पेंसिल से चित्र बना रहा है। ('से' करण कारक कर्ता और कर्म के मध्य)
8. यदि वाक्य में अनेक कारक हों तो उपर्युक्त कारकों का प्रयोग विपरीत क्रम से होगा। पहले अधिकरण फिर क्रमश: अपादान, सम्प्रदान तथा करण कारक आएँगे। जैसे–
   वह श्यामपट्ट पर चॉक से लिख रहा है।
   ('श्यामपट्ट पर' अधिकरण और 'चॉक से' करण कारक)
9. वाक्य में सम्बन्ध कारक का प्रयोग सम्बन्धी से पहले होता है। जैसे–यह विनोद की कलम है। (सम्बन्ध कारक 'की' सम्बन्धी 'कलम' से पूर्व)

10. प्रश्नवाचक पद प्रायः व्यक्ति या विषय से पूर्व लगाया जाता है। जैसे–
    (क) वहाँ कौन व्यक्ति टहल रहा है? (कौन 'व्यक्ति' से पूर्व)
    (ख) तुम कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे हो? ('कौन-सी' पुस्तक से पूर्व)
11. निषेधात्मक वाक्यों में 'न' या 'नहीं' का प्रयोग प्रायः क्रिया से पूर्व किया जाता है। जैसे–मैं खाना नहीं खाऊँगा। (खाँऊगा से पूर्व 'नहीं')

नोट–

जहाँ 'न' निषेध के स्थान पर अनुरोध या आग्रह के अर्थ में आए, वहाँ यह क्रम नहीं रहता। उदाहरण के लिए–मेरी खा लो न! (अनुरोध-वाचक 'न' वाक्य के अन्त में)

12. मिश्र और संयुक्त वाक्यों में योजक को दोनों वाक्यों के मध्य में रखा जाता है। जैसे–
    (क) उसने दूध पीया और और सो गया। ('और' दोनों वाक्यों के मध्य)
    (ख) यह सोचना तुम्हारा काम है कि अब क्या करना चाहिए, 'कि' दोनों वाक्यों के बीच)

पदों का अन्वय या मेल

वाक्य में केवल पदों की सही क्रम ही पर्याप्त नहीं होता, उनका पारस्परिक अन्वय या मेल भी आवश्यक है। 'लड़का दूध पीती है।' वाक्य में पद-क्रम ठीक होने के बाजजूद वाक्य अशुद्ध है क्योंकि इसमें कर्ता और क्रिया का मेल नहीं है। हिन्दी के वाक्यों में अन्वय के ऐसे विशेष नियम नीचे दिए जा रहे हैं–

1. यदि कर्ता के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग न हो तो क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। जैसे–
    (क) सुरेश खाना खाता है। (कर्ता 'सुरेश' के अनुसार क्रिया पुल्लिंग एकवचन)
    (ख) औरतें गाना गाती हैं। (कर्ता 'औरतें' के अनुसार क्रिया स्त्रीलिंग बहुवचन)
2. आदर-सूचक परसर्ग-रहित कर्ता के साथ क्रिया का रूप बहुवचन लगता है।

जैसे–दादा जी पटना गए हैं। (आदर-सूचक कर्ता के लिए क्रिया बहुवचन)

3. एक वाक्य में एक से अधिक परसर्ग-रहित कर्ता एक ही पुरुष-लिंग के एकवचन हों, तो क्रिया उसी लिंग में बहुवचन होगी। जैसे–
   (क) बलराम, मनोहर और कृष्ण पढ़ रहे हैं।
   (तीन अन्यपुरुष कर्ता पुल्लिंग एकवचन: क्रिया बहुवचन 'रहे हैं')
   (ख) आशा, कमला और सरला पढ़ रही हैं।
   (तीन अन्यपुरुष कर्ता स्त्रीलिंग एकवचन क्रिया बहुवचन 'रही हैं)
4. यदि अनेक परसर्ग-रहित एकवचन कर्ता भिन्न-भिन्न लिंग के हों और वे 'और', 'तथा' आदि से जुड़े हों, तो क्रिया बहुवचन पुल्लिंग में होगी। जैसे–
   (क) आपका पुत्र और पुत्री अभी खेल रहे हैं। (पुत्र और पुत्री के लिए क्रिया) 'खेल रहे हैं' बहुवचन पुल्लिंग)
   (ख) दीपा और पदमा चेन्नई गए हैं। (दीपा और पदमा के लिए क्रिया 'गए हैं' बहुवचन पुल्लिंग)
5. यदि परसर्ग 'ने' से रहित अनेक कर्ता भिन्न-भिन्न लिंग-वचन के हों, तो क्रिया बहुवचन में अंतिम कर्ता के लिंग के अनुसार होगी। जैसे–गोष्ठी में दस लड़के, सोलह लड़कियाँ तथा चार शिक्षक सम्मिलित हुए।(क्रिया अंतिम बहुवचन पुल्लिंग कर्ता के अनुसार)
6. परसर्ग-रहित कर्ता यहद एक से अधिक हों और अंत में कोई समूहवाचक शब्द हो, तो क्रिया बहुवचन में होगी। जैसे–
   कमला, शोभा, आभा, नगमा सब पास हो गए। (अंत में समूहवाचक पर सब, क्रिया बहुवचन)
7. यदि पहले बहुवचन संज्ञा हो और बाद में कोई समूहवाचक संज्ञा हो, तो क्रिया परवर्ती संज्ञा के अनुसार होगी। जैसे–
   (क) बच्चों की टोली आ गई। ('टोली' के अनुसार क्रिया एकवचन)
   (ख) लड़कियों की टोलियाँ भाग गईं। ('टोलियाँ' के अनुसार क्रिया बहुवचन)
8. परसर्ग-रहित दो कर्ता वाले वाक्यों में, जो 'या', 'चाहे' आदि से जुड़े हों, क्रिया का लिंग-वचन अंतिम कर्ता के अनुसार होगा। जैसे–
   (क) रंजन या विश्वास पढ़ रहा है। ('रहा है' क्रिया अंतिम कर्ता विश्वास के अनुसार पुलिंग एकवचन है।)

(ख) आशा या किशोर बाज़ार जाएगा। ('जाएगा' क्रिया अंतिम कर्ता किशोर के अनुसार पुल्लिंग एकवचन है।)

9. यदि कर्ता का लिंग ज्ञात न हो, तो क्रिया पुल्लिंग में होती है। जैसे–
   (क) आज कौन आने वाला है? ('कौन' का लिंग अज्ञात, क्रिया पुल्लिंग)
   (ख) वहाँ कुछ लोग खड़े थे। ('कुछ लोग' लिंग अज्ञात, क्रिया पुल्लिंग)

10. कर्ता के साथ यदि परसर्ग लगा हो तो क्रिया कर्म के लिंग और वचन के अनुसार होती है। जैसे–
   (क) लड़के ने पुस्तक पढ़ी। ('पढ़ी' क्रिया पुस्तक के अनुसार एकवचन स्त्रीलिंग)
   (ख) लड़के ने पुस्तकें पढ़ीं। (पढ़ीं क्रिया 'पुस्तकें' के अनुसार बहुवचन स्त्रीलिंग)
   (ग) लड़के ने अखबार पढ़ीं। ('पढ़ा' क्रिया अखबार के अनुसार एकवचन पुल्लिंग)
   (घ) लड़के के कई अखबार पढ़े। ('पढ़े' क्रिया 'कई अखबार' के अनुसार बहुवचन पुल्लिंग)

11. यदि कर्ता परसर्ग-सहित हो और एक से अधिक कर्म समान लिंग-वचन वाले परसर्ग-रहित हों, तो क्रिया उसी लिंग के बहुवचन में होगी। जैसे–
   (क) सुधा ने पुस्तकें और पत्रिकाएँ पढ़ीं। (क्रिया स्त्रीलिंग बहुवचन)
   (ख) अनूप ने केले और संतरे खरीदे। (क्रिया पुल्लिंग बहुवचन)

अगर ऐसे वाक्यों में कर्म भिन्न लिंग-वचन के हों तो क्रिया अंतिम कर्म के लिंग-वचन के अनुसार होगी। जैसे–

(क) उसने चार खिड़कियाँ और एक दरवाज़ा बनवाया। (क्रिया अंतिम कर्म 'दरवाजा' के अनुसार पुल्लिंग एकवचन)
(ख) उसने एक दरवाज़ा और चार खिड़कियाँ बनवाई। (क्रिया अंतिम कर्म 'खिड़कियाँ' के अनुसार स्त्रीलिंग बहुवचन)

वाक्य-विश्लेषण

वाक्य-विश्लेषण से तात्पर्य है वाक्य के अंगों को अलग-अलग करके उनका पारस्परिक सम्बन्ध बताना। साधारण वाक्य के विश्लेषण में निम्नलिखित अंगों का निर्देश करना चाहिए :

1. उद्देश्य–उद्देश्य के अंतर्गत कर्ता और उसका विस्तार आता है।

2. विधेय–विधेय के अंतर्गत कर्म तथा उसका विस्तार, क्रियापद, पूरक तथा विधेय विस्तारक आते हैं।

साधारण वाक्य-विश्लेषण के उदाहरण देखिए–

वाक्य–

1. गंगा-पुत्र भीष्म ने आजीवन विवाह न करने की प्रतिज्ञा की।
2. सभी लोग आज्ञाकारी बालक को प्यार करते हैं।
3. कल्पना-लोक में खोए रहने वाले कवि जीवन की कठोरता नहीं जानते।

विश्लेषण–

	उद्देश्य		विधेय या पूरक विधेय		
	कर्ता	*कर्ता-विस्तार*	*कर्म*	*कर्म-विस्तार*	*क्रिया पद-विस्तार*
1.	भीष्म ने	गंगा-पुत्र	प्रतिज्ञा	विवाह न करने की की	आजीवन
2.	लोग	सभी	बालक को आज्ञाकारी	प्यार करते हैं	
3.	कवि	कल्पना लोक में खोये रहने वाले	कठोरता	जीवन की	नहीं जानते।

अब इन उपवाक्यों का विश्लेषण साधारण वाक्यों के समान होगा।

मिश्र वाक्यों के विश्लेषण वाक्यों जैसी पद्धति अपनाई जाती है।

अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करना–वाक्य में अशुद्धियों के अनेक कारण होते हैं। शब्द रूपों के प्रयोग, पदों का क्रम अथवा अन्वय ठीक न होने के कारण वाक्य अशुद्ध हो जाते हैं। कुछ अशुद्धियाँ संयुक्त क्रियाओं अथवा वाक्य-प्रयोग में असावधानी के कारण हो जाती हैं। आगे कुछ वाक्यों में अशुद्ध एवं शुद्ध रूप दिए जा रहे हैं ताकि छात्र सामान्य अशुद्धियों से बच सकें और भाषा के शुद्ध रूप के प्रति जागरूक बनें।

अशुद्ध वाक्य	**शुद्ध वाक्य**
यहाँ धूम्रपान निषेध है।	यहाँ धूम्रपान निषिद्ध है।
सबों ने मेरी बात मान ली।	सबने मेरी बात मान ली।
सारे वर्ष भर उसने कड़ा परिश्रम किया।	वर्ष भर उसने कड़ा परिश्रम किया
उसने अनेकों अच्छे काम किए।	उसने अनेक अच्छे काम किए।
कृपया करके मुझे दो रुपया दे दें।	कृपया मुझे दो रुपये दे दें।

उसका बेटा ने इनाम जीता।	उसके बेटे ने इनाम जीता।
उसका सेहत अच्छा है।	उसकी सेहत अच्छी है।
कोई साथी को बुला लो।	किसी साथी को बुला लो।
मैं मेरा काम कर रहा हूँ।	मैं अपना काम कर रहा हूँ।
हमको इस दिशा में सोचना चाहिए।	हमें इस दिशा में सोचना चाहिए।
मैंने अपने कर्तव्य का पालन करा।	मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया
मिठाई हमारे को भी दे दो।	मिठाई हमें भी दे दो।
वह खुशी में फूला न समाया	वह खुशी से फूला न समाया
दूध के अंदर मक्खी है।	दूध में मक्खी है।
बाहर आँगन पर बैठो।	बाहर आँगन में बैठो।
मैं एक कहानियों वाली पुस्तक लाया हूँ।	मैं कहानियों वाली एक पुस्तक लाया हूँ।
राम की यह पुस्तत नहीं है।	यह पुस्तक राम की नहीं है।
दो गाएँ और एक बैल घास चर रहा है।	दो गाएँ और एक बैल घास चर रहे हैं।
कृपया मुझे यह बताने की कृपा करें।	कृपया मुझे यह बताएँ। अथवा–मुझे यह बताने की कृपा करें।
आज मेरी सेहत खराब है।	आज मेरी तबीयत खराब है।
वह सज्जन पुरुष हमारे घर पधारे।	वह सज्जन हमारे घर पधारे।
अनुमान है कि खेल लगभग दो घण्टे चला।	अनुमान है कि खेल दो घण्टे चला।
केवल मात्र मेरे कहने से क्या होगा?	केवल मेरे कहने से क्या होगा?
वह पठनीय पुस्तक पढ़ने योग्य है।	वह पुस्तक पठनीय है अथवा–वह पुस्तक पढ़ने योग्य है।
मैं सप्रेम सहित नमस्कार करता हूँ।	मैं सप्रेम नमस्कार करता हूँ अथवा मैं प्रेम-सहित नमस्कार करता हूँ।
जज ने उसे मृत्युदण्ड की सजा दी।	जज ने उसे मृत्युदण्ड दिया।
यह संभव नहीं हो सकता है।	यह संभव नहीं है।

उसने सिर में टोपी पहनी है।	उसने सिर पर टोपी पहनी है।
अमर बाहर को चला गया।	अमर बाहर चला गया।
वह कौन का घर है?	वह किसका घर है?

विराम-चिह्न

वर्तालाप के क्रम में हम एक ही गति से शब्दों या वाक्यों का उच्चारण नहीं करते। ध्वनियों के उतार-चढ़ाव के अलावा हम अनेक स्थानों पर रुकते भी हैं। रुकने का उद्देश्य अलग-अलग होता है। जैसे–कभी साँस लेना होता है, कभी किसी कथन पर बल देना और कभी अपनी बात को स्पष्ट करना। लिखते समय इस उद्देश्य से हम विराम-चिह्नों का उपयोग करते हैं। विराम का अर्थ है रुकना। लिखते समय विराम-चिह्नों का प्रयोग आवश्यक है। इनका प्रयोग न होने से कभी-कभी वाक्य का अर्थ एकदम बदल जाता है। उदाहरण–

कौन? आशा!

कौन आशा?

पहले वाक्य में 'कौन' के बाद प्रश्न-चिह्न लगाकर फिर आशा लिखा गया है। कहने वाले ने पहले पूछा कि (वहाँ) कौन है, फिर पहचान लिया कि आशा है, या संभावना प्रकट की कि आशा है। दूसरे वाक्य से प्रकट होता है कि वह आशा को जानता ही नहीं है। अथवा वह समझ नहीं पाया कि किस आशा की चर्चा हो रही है। स्पष्ट है कि दोनों वाक्यों के अर्थ में परिवर्तन विराम-चिह्नों के प्रयोग से ही हुआ है।

हिन्दी में प्रायः प्रयुक्त होने वाले विराम-चिह्न निम्नलिखित हैं–

पूर्णविराम	।
अल्पविराम	,
अर्द्धविराम	(
प्रश्नसूचक चिह्न	?
विस्मयादिसूचक चिह्न	!
कोष्ठक	( )
उद्धरण चिह्न	‘‘ ’’
निर्देशक चिह्न	–
योजक	-
विवरण चिह्न	:–

उपविराम :

लाघव चिह्न ॰

इन चिह्नों का प्रयोग देखिए–

1. पूर्ण विराम (।)–यह वाक्य में पूरा होने पर उसके अन्त में आता है। उदाहरण:–रमेश घरा जाता है। सलमा बहुत तेज लड़की है।

2. अल्प विराम (,)–लिखित भाषा को पढ़ते समय जहाँ थोड़ी देर ठहरना होता है वहाँ अल्पविराम का प्रयोग होता है। उहाहरण:–

(क) रोटी, कपड़ा और मकान सबके लिए जरूरी है।

उसके पास धन-दौलत, जमीन-मकान, नौकर-चाकर सब कुछ था।

(एक ही क्रम में कई शब्द अथवा वाक्यांश के बीच)

(ख) शिक्षक ने कहा, "मैं कल पाठ अवश्य सुनूँगा।"

(उद्धरण-चिह्नों के शुरू होने के पहले)

(ग) यार, आज मैं बहुत थक गया हूँ।

नहीं, मैं गलत काम में तुम्हारा साथ नहीं दे सकता।

हाँ, मैं सब समझ गया हूँ।

(हाँ, नहीं तथा सम्बोधन शब्दों के बाद)

(घ) लेकिन, अब मेरे कहने से कुछ होने वाला नहीं है।

आप तो उनके स्वभाव को जानते हैं, इसलिए मेरे कहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला।

(लेकिन, इसलिए, क्योंकि, फिर, नहीं तो, जैसे, कारण आदि से पहले।)

(च) वह आएगा अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

(जब वाक्य के बीच में कोई शब्द जोड़ा जाए।)

3. अर्द्ध-विराम (( )–जब पढ़ने वाले अथवा बोलने वाले को अल्प-विराम से कुछ अधिक रुकना पड़ता है और पूर्ण विराम से कुछ कम तो अर्द्ध का प्रयोग करते हैं।

उदाहरण:–

(क) आप कविता-पाठ करनाा चाहते हैं, तो कीजिए, न करना चाहते हैं, तो न कीजिए।

(दो या अधिक स्वतन्त्र उपवाक्यों के बीच किसी योजक शब्द के न रहने पर)

(ख) राजन, कमल, रामू आदि दौड़ में शामिल हुए, ये सब अवश्य थक गए होंगे।

(जिस उपवाक्य के पहले अल्प-विराम हो उसे अलग करने के लिए)

4. उपविराम (:)–किसी बात को अलग करके दिखाने के लिए इसका प्रयोग होता है।

उदाहरण:–

विज्ञान : वरदान या अभिशाप।

वर्तमान राजनीति : एक घटिया मखौल।

5. प्रश्न-चिह्न (?)–प्रश्नसूचक वाक्य के अन्त में प्रश्न-चिह्न लगाते हैं।

उदाहरण:–

तुम्हारा नाम क्या है?

कौन लड़की हँस रही है?

6. विस्मयादिबोधक चिह्न (!)–विस्मयादिबोधक शब्दों के अन्त में इसका प्रयोग होता है।

उदाहरण:–

अरे! तुम तो छिपे रुस्तम निकले।

वाह! क्या सुन्दर नृत्य किया?

ओह! मेरा सिर दर्द से फटा जा रहा है।

7. निर्देशक चिह्न (-)–लिखते समय अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए अथवा उदाहरण देने के लिए हम इस चिह्न का प्रयोग करते हैं।

उदाहरण:–

गीता में कृष्ण का वचन है–हमारा केवल कर्म पर अधिकार है।

शिक्षक का छात्र से प्रश्न था–आज तुम्हें आने में विलम्ब क्यों हुआ?

8. विवरण चिह्न (:-) जब किसी बात का उत्तर अथवा उदाहरण अगली पंक्ति में देना होता है तब इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण:–

स्त्रीलिंग शब्द:–

नाक, जीभ, कमर, नाड़ी, आँख।

निम्नलिखित पर ध्यान दें:–

पानी छानकर पीएँ। रोज सुबह कसरत करें।

9.लाधव चिह्न (०)–शब्द का संक्षिप्त रूप बनाने के लिए इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण:–

एम. बी. बी. एस., एम. ए. इत्यादि।

10. योजक चिह्न (-)–पुनरुक्त अथवा एक ही शब्द को दुहराकर लिखने में अथवा सामासिक पदों को जोड़ने में इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। इसकी लम्बाई 'निर्देशक चिह्न' से कम होती है।

उदाहरण:–

राम-राम, चलते-चलते, रात-दिन, चन्द्र-मुख।

11. उद्धरण-चिह्न (" ")–किसी के कथन को ज्यों का त्यों उद्धत करने अथवा लिख देने के लिए इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण:–

महात्मा गाँधी ने कहा था, "सत्य और अहिंसा के मार्ग से ही आजादी मिलेगी।"

12. कोष्ठक (' ')–इसका प्रयोग क्रमसूचक अक्षरों अथवा अंकों के साथ किया जाता है।

उदाहरण:–

पूर्वांचल के राज्य हैं–

(क) असम, **(ख)** नगालैंड,

(ग) मणिपुर, **(घ)** अरुणाचल प्रदेश

(च) मिजोरम, **(छ)** मेघालय।

13. त्रुटिपूरक अथवा पूरक चिह्न (^)–वाक्य में त्रुटि अथवा गलती से जब कुछ लिखना छूट जाता है, तब इसका प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण:–शिक्षक ने पाठ याद करने को कहा था।

तुम्हारी चिट्ठी मिली थी।

5

व्यावहारिक हिन्दी निबंध एवं पत्र लेखन

निबंध लेखन वह लेखन अभिव्यक्ति है जिसमें विचारों को अच्छी तरह सुंदर भावाभिव्यक्ति में प्रस्तुत किया जाता है। निबंध दो शब्दों के मेल से बना है–नि + बंध। 'नि' का अर्थ है–अच्छी तरह से और बंध का अर्थ है–बँधा हुआ। इस तरह विचारों को शब्दों में बाँधकर अच्छी वाक्य संरचना करना ही निबंध लेखन कहलाता है। एक अच्छे निबंध में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए–

1. निबंध की भाषा प्रभावशाली तथा विषयानुकूल होनी चाहिए।
2. वाक्य क्रमबद्ध तथा सुसंबद्ध होना चाहिए।
3. निबंध निर्धारित शब्द-सीमा के अंतर्गत ही होना चाहिए।
4. विषय का अनावश्यक विस्तार नहीं होना चाहिए।
5. उद्धरणों, सूक्तियों तथा काव्य पंक्तियों आदि का उचित स्थान पर प्रयोग किया जाना चाहिए।

निबंध के प्रकार–निबंध चार प्रकार के होते हैं–

1. वर्णनात्मक निबंध : जैसे–मैच का आँखों देखा हाल, किसी मेले का वर्णन, ऋतुओं का वर्णन आदि।

2. वैचारिक निबंध : जैसे–चलचित्र : हानि-लाभ, अशिक्षा की समस्या, बेरोजगारी, गरीबी आदि।

3. विवरणात्मक निबंध–जैसे–यात्राओं का वर्णन, घटनाएँ, संस्मरण आदि।

4. कल्पनात्मक निबंध–जैसे–यदि मैं प्रधानमंत्री होता, यदि मैं अभिनेता होता आदि।

निबंध लेखन कौशल–एक अच्छा निबंध लिखने के लिए उसे आरंभ, मध्य एवं अंत तीन भागों में विभक्त कर उसकी एक पूर्ण रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए। आरंभ में भूमिका या प्रस्तावना, मध्य में विषय-वस्तु का प्रतिपादन तथा अंत में उपसंहार या निष्कर्ष लिखा जाना चहिए।

आरंभ–निबंध का आरंभ पढ़ने वाले के मन में रुचि और उत्सुकता जाग्रत करता है। इसलिए निबंध का आरंभ जितना प्रभावशाली और आकर्षक होगा, निबंध उतना ही अच्छा माना जाएगा। किसी सूक्ति से, किसी उद्धरण से, किसी काव्य पंक्ति से, किसी घटना के वर्णन से या सीधे विषय के प्रतिपादन से आरंभ किया गया निबंध अच्छा माना जाता है।

मध्य भाग–निबंध के मध्य भाग में विषय को स्पष्ट किया जाता है। विषय की रूपरेखा बनाकर उसे अलग-अलग अनुच्छेदों में लिखना चाहिए। मध्य भाग में यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि कौन-सी बात पहले आनी चाहिए तथा कौन-सी बाद में। सभी अनुच्छेद एक-दूसरे से जुड़े होने चाहिए जिससे कि निबंध पढ़ने वाले को लगे कि वह किसी विषय पर क्रमबद्ध विचारों को पढ़ रहा है। विषय-वस्तु को लिखते समय कोई गलत सूचना नहीं देनी चाहिए। विषय-वस्तु का विश्लेषण करते समय किसी भी बात को दोहराना नहीं चाहिए।

अंत–निबंध का अंत पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। इसलिए निबंध का अंत भी आकर्षक होना चाहिए। परीक्षक उसी निबंध पर अच्छे अंक प्रदान करते हैं जिसका प्रारंभ तथा अंत दोनों आकर्षक होते हैं। आकर्षक अंत के लिए निम्न बातों को शामिल किया जा सकता है–

1. निबंध का सारांश दिया जा सकता है।
2. भूमिका में उठाई गई बात को पुष्ट किया जा सकता है।
3. अपनी सम्मति या निष्कर्ष प्रकट किया जा सकता है।
4. अपने कथन की पुष्टि करते हुए किसी कवि या लेखक का उद्धरण दिया जा सकता है।
5. स्थिति में सुधार के लिए कुछ सुझाव या अपील की जा सकती है।

निबंध लेखन में ध्यान रखने योग्य बातें–निबंध का चुनाव करते समय एवं लिखते समय निम्न बातों को ध्यान में रखें–

1. परीक्षा में पूछे गए सभी निबंधों में से उसी निबंध का चुनाव करिए जो आप अच्छी तरह से लिख सकें।
2. अब उस निबंध के विषय पर सोचिए और अलग कागज पर उसकी रूपरेखा बना लीजिए।
3. रूपरेखा बनाते समय दी गई शब्द सीमा को ध्यान में रखिए।
4. वाक्य छोटे बनाइए। अपनी बात को स्पष्टता से लिखिए।
5. निबंध को तीन भागों में बाँट लें। आरंभ, मध्य और अंत। आरंभ और अंत छोटा हो। मध्य को विस्तार दीजिए।
6. निबंध के आरंभ में सूक्ति या दोहे का प्रयोग कीजिए, एवं अंत में भी सूक्ति या दोहा दीजिए।
7. संपूर्ण निबंध में कम-से-कम चार से पाँच सूक्तियाँ, दोहे, श्लोक आदि का प्रयोग करें।
8. निबंध कम-से-कम पाँच से छह अनुच्छेदों में बँटा होना चाहिए।
9. उपसंहार में पूरे निबंध का निचोड़ हो, यह ध्यान में रखना आवश्यक है।

महात्मा गांधी

2 अक्टूबर सन् 1869 को गांधीजी का जन्म गुजरात के 'पोरबन्दर' नामक स्थान पर हुआ था। इनका पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गांधी था। उनके पिता करमचन्द गांधी पोरबन्दर हाई कोर्ट के दीवान थे। पिता एक सच्चे कर्त्तव्यनिष्ठ तथा ईमानदार पुरुष थे। वहीं माता पुतलीबाई साध्वी, ईश्वर के प्रति आस्था रखने वाली धार्मिक महिला थी।

पोरबन्दर में गांधीजी की बाल्यावस्था व्यतीत हुई। उन्होंने वहीं प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। जब गांधीजी सात वर्ष के थे, तब उनके पिता दीवान होकर राजकोट गए। उनको वहाँ एक विद्यालय में दाखिल कराया गया। गांधीजी स्वभाव से ही संकोची थे। अपने स्वभाव के अनुसार ही वे अपने सहपाठियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास नहीं करते थे।

प्रारम्भ से ही गांधीजी का माता-पिता की सेवा में मन लगता था। चूँकि उनके जीवन पर श्रवणकुमार तथा राजा हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्त्व का काफी प्रभाव

पड़ा था। इसलिए वे विद्यालय के समय के पश्चात् उनकी सेवा में स्वयं को रत रखते।

उनका विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में कस्तूरबा के साथ हुआ। इस समय गांधीजी हाईस्कूल में पढ़ रहे थे। उनकी गणना मन्दबुद्धि बालकों में की जाती थी। इसी काल में उन्होंने कुसंगति में पड़कर मांस का सेवन तथा धूम्रपान किया। लेकिन उन्होंने इसकी सूचना अपने पिता को पत्र द्वारा दी और अपने दोष को स्वीकार किया। साथ ही भविष्य में ऐसा न करने के लिए वचन भी दिया।

गांधीजी जब 16वें वर्ष में थे उनके पिता करमचन्द गांधी का देहान्त हो गया। यद्यपि स्कूल में गांधी जी को धर्म की शिक्षा नहीं मिली लेकिन वे आत्मबोध के द्वारा वातावरण से धार्मिकता का ज्ञान प्राप्त करते रहे। सन् 1885 ई. में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और श्यामलदास कॉलेज, भावनगर में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश किया। कॉलेज की शिक्षा में मन न लगने के कारण उन्होंने बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड को प्रस्थान किया। 1891 ई. में बैरिस्टरी पास करके भारत आए। यहाँ आकर उन्होंने वकालत शुरू की। लेकिन उनको इस कार्य में खास सफलता न मिली। इसी बीच उनको सेठ अब्दुल्ला की फर्म में भागीदार ने एक मुकदमें के सम्बन्ध में दक्षिण अफ्रीका बुलाया। इस प्रकार गांधीजी 1893 ई. में दक्षिणी अफ्रीका गए।

उनका वास्तविक जीवन दक्षिण अफ्रीका में शुरू हुआ। उन्होंने वहाँ भारतीयों की दशा को सुधारने के लिए आन्दोलन चलाया। गांधीजी ने यहीं सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। यहाँ उन्होंने 1914 तक सघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत किया और उनको इसमें सफलता भी मिली। गांधीजी ने यहाँ 'टॉलस्टॉय आश्रम' की स्थापना की। यह आश्रम उनके शिक्षा-प्रयोग के लिए एक आदर्श प्रयोगशाला बन गया। उन्होंने इस आश्रम को घर के वातावरण में बदला और चरित्र को सभी तरह-तरह की शिक्षा का आधार माना। यहाँ गांधीजी ने साहित्यिक शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल दिया। लेकिन उन्होंने यहाँ व्यवसाय को शिक्षा का माध्यम बनाने का कोशिश नहीं किया।

1914 ई. में गांधीजी इंग्लैंड होते हुए भारत आए। उन्होंने यहाँ आकर भारतीय राजनीति में प्रवेश किया। उनके प्रवेश से भारतीय राजनीति नें नया मोड़ लिया। उन्होंने इस समय से अपने जीवन के अन्त तक भारतीय राष्ट्रीय के आन्दोलन का नेतृत्व किया। सन् 1915 में उन्होंने अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम

की स्थाना की। आश्रम में गांधीजी ने कुछ सत्याग्रहियों को तैयार करने का प्रयास किया। गांधीजी ने चम्पारन कानून की सविनय अवज्ञा का पहला प्रयास किया और उसमें सफलता मिली। इसके बाद अनेक बार सत्याग्रहों का नेतृत्व किया। उनकी डाँडी-यात्रा तथा नमक आन्दोलन की प्रसिद्धि देश-विदेश में है। विश्वभर में ऐसा कोई उदाहरण नहीं कि किसी देश को बिना हिंसा के स्वतन्त्रता मिल गई हो। यह गौरव भारत को ही मिला और इस गौरव का श्रेय गांधीजी को है।

उनके नेतृत्व के फलस्वरूप भारतीय राजनीति में सत्य एवं अहिंसा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। गांधीजी के नेतृत्व में भारत ने 15 समस्त, 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्त की। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए 30 जनवरी, 1948 को अपना जीवन प्रदान कर दिया। इस महान् दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक, शिक्षा-शास्त्री तथा महात्मा ने सम्पूर्ण विश्व को सत्य एवं अहिंसा का उपदेश दिया।

भीमराव अम्बेडकर

भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को हुआ था। बड़े होकर ये हरिजनों (अछूतों या निम्न जाति के हिंदुओं) के नेता और भारत सरकार के विधि मंत्री (1947-51) रहे।

1947 में अंबेडकर भारत सरकार के कानून मंत्री बने। उन्होंने भारत के संविधान की रूपरेखा बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई, जिसमें उन्होंने अछूतों के साथ भेदभाव को प्रतिबंधित किया और चतुराई से इसे संविधान सभा द्वारा पारित कराया। सरकार में अपना प्रभाव घटने से निराश होकर उन्होंने 1951 में त्याग-पत्र दे दिया। 1956 में वह नागपुर में एक समारोह में अपने दो लाख अछूत साथियों के साथ हिंदू धर्म त्यागकर बौद्ध बन गए, क्योंकि छुआछूत अब भी हिंदू धर्म का अंग बनी हुई थी। डॉक्टर अंबेडकर को 1990 में मरणोपरांत भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

अंबेडकर का जन्म पश्चिमी भारत में महार (निम्न जाति) परिवार में हुआ। उन्हें बचपन में उच्च जाति के अपने सहपाठियों के हाथों स्कूल में अपमानित होना पड़ा। उनके पिता भारतीय सेना में अधिकारी थे। बड़ौदा के गायकवाड़ (शासक) ने अंबेडकर को वजीफा दिया और उन्होंने अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी के विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की। भारत लौटने पर गायकवाड़ के अनुरोध पर उन्होंने बड़ौदा लोकसेवा के अंतर्गत नौकरी शुरू की, लेकिन एक बार फिर उन्हें

उच्च जाति के अपने सहकर्मियों के दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा। अंबेडकर ने 1924 में बंबई (वर्तमान मुंबई) में वकालत शुरू की और अछूतों के उत्थान के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। 1927 में उन्होंने हिंदुओं द्वारा निजी संपत्ति घोषित सार्वजनिक तालाब से पानी लेने के लिए अछूतों को अधिकार दिलाने के लिए एक सत्याग्रह का नेतृत्व किया। उन्होंने 1937 में बंबई उच्च न्यायालय में यह मुकदमा जीता। अंबेडकर ने मंदिरों में अछूतों के प्रवेश करने के अधिकार को लेकर भी संघर्ष किया। वह लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलन के शिष्टमंडल के भी सदस्य थे, जहां उन्होंने अछूतों के लिए अलग निर्वाचन मंडल की मांग की। महात्मा गांधी ने इसे हिंदू समाज में विभाजक मानते हुए विरोध किया। 1932 में पूरा समझौते में गांधी और अंबेडकर, आपसी विचार–विमर्श के बाद एक मध्यमार्ग पर समहम हुए। अंबेडकर ने शीघ्र ही हरिजनों में अपना नेतृत्व स्थापित कर लिया और उनकी ओर से कई पत्रिकाएं निकालीं, वह हरिजनों के लिए सरकारी विधान परिषदों में विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में भी सफल हुए। अंबेडकर ने हरिजनों का पक्ष लेने के महात्मा गांधी के दावे को चुनौती दी और *व्हॉट कांग्रेस ऐंड गांधी हैव डन टु द अनटचेबल्स* (1945) नामक लेख लिखा।

सुभाषचंद्र बोस

भारतीय स्वतंत्र संग्राम के महान सेनानी, आजादी हिन्द फौज के निर्माता सुभाष चन्द्र बोस का जन्म उड़ीसा के कटक में 23 जनवरी 1897 को हुआ था भारतीय स्वतंत्रता संग्राम इस महान क्रान्तिकारी नेता की मृत्यु 18 अगस्त 1945 को एक वायुयान दुर्घटना में हुई थी। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व वाले बोस को देशवासी सम्मान से नेताजी पुकारते थे।

एक संपन्न व प्रतिष्ठित बंगाली वकील के पुत्र सुभाषचंद्र की शिक्षा प्रेजिडेंसी कॉलेज, कलकत्ता और स्कॉटिश चर्च कॉलेज से हुई, जहाँ से 1919 में उन्होंने स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके बाद इंडियन सिविल सर्विस की तैयारी के लिए उनके माता–पिता ने उन्हें इंग्लैंड के केंब्रिज विश्वविद्यालय भेज दिया। 1920 में बोस ने इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा उत्तीर्ण की, लेकिन अप्रैल 1921 में भारत में बढ़ती राजनीतिक सरगर्मी की खबर सुनकर उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली और शीघ्र भारत लौट आए। अपने पूरे कार्यकाल में, खासकर प्रारंभिक चरण में, उन्हें अपने बड़े भाई शरत्चंद्र बोस

(1889–1950) का भरपूर समर्थन मिला, जो कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) के एक धनाढ्य वकील होने के साथ-साथ प्रमुख कांग्रेसी राजनीतिज्ञ भी थे।

सितंबर 1920 में मोहनदास करमचंद गांधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया। महात्मा गांधी ने बोस को सलाह दी कि वे बंगाल के राजनीतिज्ञ चित्तरंजन दास के अधीन काम करें। वहीं पर सुभाषचंद्र बोस एक युवा प्रशिक्षक, पत्रकार व बंगाल कांग्रेस के स्वयंसेवक बने। दिसंबर 1921 में उन्हें उनकी गतिविधियों के लिए गिरफ़्तार किया गया। 1924 में वह कलकत्ता नगर निगम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त किए गए, जबकि दास मेयर बनाए गए। लेकिन इसके शीघ्र बाद गुप्त क्रांतिकारी गतिविधियों से संबंधित होने के कारण उन्हें बंदी बनाकर बर्मा (वर्तमान म्यांमार) भेज दिया गया। 1927 में रिहा होने पर बोस कलकत्ता लौट आए। जहाँ दास की मृत्यु के बाद उन्हें अस्त-व्यस्त कांग्रेस मिली।

गांधी जी कांग्रेस में फिर से सक्रिय हो गए और बोस बंगाल कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिए गए। 1930 में जब सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ, बोस कारावास में थे। रिहा और फिर से गिरफ़्तार होने व अंततः एक वर्ष की नजरबंदी के बाद उन्हें यूरोप जाने की आज्ञा दे दी गई। निर्वासन काल में, उन्होंने *द इंडियन स्ट्रगल 1920–34* नामक पुस्तक लिखी और यूरोपीय नेताओं से भारत के पक्ष की पैरवी की। 1936 में यूरोप से लौटने पर उन्हें फिर एक वर्ष के लिए गिरफ़्तार कर लिया गया। 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद उन्होंने राष्ट्रीय योजना आयोग का गठन किया, जिसने औद्योगिक नीति को सूत्रबद्ध किया। यह नीति गांधीवादी आर्थिक विचारों के अनुकूल नहीं थी, जो प्रतीक रूप में चरखे में निष्ठा रखती थी। 1939 में बोस के प्रति समर्थन की अभिव्यक्ति एक गांधीवादी प्रतिद्वंद्वी को दुबारा हुए चुनाव में हरा देने के रूप में प्रकट हुई। लेकिन गांधी जी के विरोध के चलते इस 'विद्रोही अध्यक्ष' ने इस्तीफा देने की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने गरमपंथी तत्त्वों को साथ जुटाने की उम्मीद में फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना की, लेकिन 1940 में इन्हें दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रिटिश सरकार के अत्याचार के विरुद्ध इन्होंने कारगार में ही इन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया जिससे घबरा कर अंग्रेजी हुकूमत ने इन्हें मुक्त कर दिया किन्तु इन्हें घर में ही नजर बन्द कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार के निगरानी के बावजूद व 26 जनवरी 1941 को अपने कलकत्ता के आवास से वेश बदलकर निकल भागे और काबुल व मॉस्को के रास्ते अंततः अप्रैल में जर्मनी पहुँच गए। जर्मनी पहुँच कर इन्होंने हिटलर से मुलाकात की उस समय

हिटलर ने अपना विजय अभियान छेड़ रखा था। सुभाष चन्द्र बोस का विचार था। अहिंसा के बलबूते आजादी हासिल नहीं की जा सकती है।

नाजी जर्मनी में बोस *ऐडम वॉन ट्रौट जू सोल्ज* द्वारा नवगठित स्पेशल ब्यूरो फॉर इंडिया के संरक्षण में आ गए। जनवरी 1942 में उन्होंने और अन्य भारतीयों ने जर्मन प्रायोजित आजाद हिंद रेडियो से अंग्रेजी, हिंदी बांग्ला, तमिल, तेलुगु, गुजराती और पश्तो में नियमित प्रसारण करना शुरू कर दिया। दक्षिण-पूर्वी एशिया में जापानी हमले के एक वर्ष के कुछ ही समय बाद बोस ने जर्मनी छोड़ दी। वह जर्मन और जापानी पनडुब्बियों व हवाई जहाज से सफर करते हुए, 1943 में टोक्यो पहुँचे। 4 जुलाई को उन्होंने पूर्वी एशिया में चलने वाले भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व सँभाला और जापानियों के प्रभाव व सहायता से, दक्षिण-पूर्वी एशिया से जापान द्वारा एकत्रित करीब 40,000 भारतीय स्त्री-पुरुषों की प्रशिक्षित सेना का गठन शुरू कर दिया। 21 अक्तूबर, 1943 को बोस ने एक अस्थायी स्वतंत्र भारतीय सरकार की स्थापना की घोषणा की और जापानी सैनिकों के साथ उनकी तथाकथित आजाद हिंद फौज रंगून (यांगून) से होती हुई थल मार्ग से भारत की ओर बढ़ती, 18 मार्च 1944 को कोहिमा और इंफाल के भारतीय मैदानी क्षेत्रों में पहुँच गई। जापानी वायुसेना से सहायता न मिलने के कारण एक भीषण लड़ाई में भारतीयों और जापानियों की मिली-जुली सेना हार गई और उसे पीछे हटना पड़ा लेकिन आजाद हिंद फौज कुछ अर्से तक बर्मा और बाद में हिंद-चीन में अड्डों वाली मुक्तिवाहिनी सेना के रूप में अपनी पहचान बनाए रखने में सफल रही। लेकिन जापान की हार के साथ बोस का भविष्य भी डूब गया। माना जाता है कि अगस्त 1945 में जापान के आत्मसमर्पण की घोषणा के कुछ दिन बाद, दक्षिण-पूर्वी एशिया से भागते हुए एक हवाई दुर्घटना में जल जाने से हुए घावों के कारण ताइवान के एक जापानी अस्पताल में बोस की मृत्यु हो गई।

जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू (1889-1964) मोतीलाल नेहरू और स्वरूपरानी के एकमात्र पुत्र थे। 15 वर्ष की आयु में वे अध्ययन के लिये इंगलैण्ड गए। कैम्ब्रिज की पढ़ाई के बाद उन्होंने कानून का अध्ययन किया और 1912 में वे 'इनर टेम्पल' से वकील बने। अपने छात्र जीवन में ही नेहरू भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की सरगर्मियों में दिलचस्पी लेते रहे। 1904 में जापान के हाथों रूस जैसे

शक्तिशाली राष्ट्र की पराजय ने नेहरू के हृदय में भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता के सपने भर दिए। राष्ट्रीय विचार उनके मानस में हिलोरें लेने लगे और यूरोप के पन्जे से भारत तथा एशिया की मुक्ति के लिये वे व्यग्र रहने लगे।

भारत लौटने के बाद जवाहरलाल ने वकालत शुरू की, लेकिन शीघ्र ही वे राजनीतिक सरगर्मियों की तरफ बढ़ चले। 1912 में उन्होंने राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। 1916 में काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के समय उनके जीवन में एक क्रान्तिकारी मोड़ आया। महात्मा गाँधी से उनकी पहली मुलाकात हुई जो आगे चलकर इस रूप में फलीभूत हुई कि गाँधी ने जवाहर को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और यह भविष्यवाणी कर दी कि ''मेरे मरने के बाद जवाहरलाल मेरी ही भाषा बोलेगा।'' 1916 में ही उनका विवाह कमला कौल से हुआ। उनके एक पुत्री भी हुई इन्दिरा प्रियदर्शिनी, जो आज भारत के प्रधानमन्त्री पद को सुशोभित कर रही है। 1918 में नेहरू होम रूल लीग के सचिव बने और 1920 से वे भारत के किसानों की समस्याओं तथा आकाँक्षाओं में गहरी दिलचस्पी लेने लगे। वास्तव में ''1920 का साल नेहरू के राजनीतिक जीवन में निर्णायात्मक मोड़ का था।'' और तभी से उनके दिमाग में ''गाँवों की नंगी-भूखी जनता की भारत की तस्वीर'' बनी रही। 1923 में वे भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के महासचिव बने। 1927 में अन्तर्राष्ट्रीय गणतान्त्रिक आन्दोलन के साथ उनके व्यापक और दीर्घकालीन सम्पर्कों की शुरूआत हुई। ब्रूसेल्स में हुए पीड़ित राष्ट्र सम्मेलन में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। 1928 में साइमन कमीशन के विरूद्ध लखनऊ में प्रदर्शनों में उन्होंने पुलिस की लाठियाँ खाई। 1929 में वे राष्ट्रीय काँग्रेस के लाहौर अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। उनकी अध्यक्षता में ही इस दिन अर्द्धरात्रि को पूर्ण स्वराज्य का ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया गया। जवाहरलाल नेहरू 1936, 1937 और 1946 में पुनः काँग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

वास्तव में 1930 तक जवाहरलाल ने भारतीय राजनीति में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था और बाद के वर्षों में तो राष्ट्रीय नेतृत्व के क्षेत्र में उन्हें महात्मा गाँधी के ठीक बाद स्थान प्राप्त हो गया। नेहरू ने देश का अनेक बार तूफानी दौरा किया और भारतीयों में स्वाधीनता प्राप्ति के लिये एक उत्कट अभिलाषा पैदा कर दी। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उनका 9 वर्ष से अधिक का समय जेलों में कटा। 1946 में उन्होंने भारत की अन्तरिम सरकार का निर्माण किया और 15 अगस्त, 1947 को जब विभाजन की कीमत पर देश को आजादी

मिली तो जवाहरलाल स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री बने। उस पवित्र अर्द्ध-रात्रि को, भारत की आजादी की बेला में, जवाहरलाल ने अपने हृदयस्पर्शी भाषण में कहा–

''आधी रात के घण्टे के साथ, जबकि संसार सो रहा है, भारत जीवन और स्वाधीनता की ओर जागेगा। एक क्षण आता है, जो इतिहास में कभी ही आता है, जब हम पुराने से नए की ओर बढ़ते हैं, जब एक युग समाप्त होता है, और जब बहुत दिनों तक दबाई हुई राष्ट्र की आत्मा बोल उठती है। यह उचित ही है कि इस पवित्र अवसर पर भारत की और उनके निवासियों की और उससे भी बड़ी मानवता की सेवा का संकल्प लें।''

नेहरू रूके और तब फिर बोले, ''भारत की सेवा के अर्थ होते हैं, उन लाखों लोगों की सेवा जो कि कष्ट सह रहे हैं, इसके अर्थ हैं गरीबी और अज्ञान और रोग और अवसर की असमानता को समाप्त करना।''

जवाहरलाल नेहरू 15 अगस्त, 1947 से लेकर 27 मई, 1964 के दिन तक अर्थात् अपनी मृत्यु के समय तक भारत के प्रधानमंत्री रहे। लगभग 17 वर्षों के अपने कार्यकाल में उन्होंने स्वतन्त्र भारत को एक सबल आर्थिक और राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा को जमाने का श्रेय उन्हीं को जाता है। यह दुर्भाग्य की बात थी कि अक्तूबर, 1962 में साम्यवादी चीन के हमले का सदमा नेहरू को झेलना पड़ा, लेकिन उसके बाद तो वे देश को हर तरह से जगाने के लिये निकल पड़े। उन्हें यह अहसास हो गया कि शान्ति में पूर्ण आस्था रखते हुए भी भारत को सैनिक दृष्टि से एक सबल राष्ट्र बनना होगा। यह देश का दुर्भाग्य था कि उनका कुशल नेतृत्व अधिक समय तक न बना रहा और 27 मई, 1964 को दोपहर को लगभग 2 बजे उनका जीवन दीप बुझ गया।

नेहरू न केवल एक महान् देशभक्त, कर्मठ राजनेता और शान्तिदूत थे बल्कि बुद्धिमान और युगदृष्टा पुरूष थे जिन्हें साहित्य, दर्शन व प्रकृति से भारी प्रेम था। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें उनकी 'आत्म-कथा' हमारे युग की एक अद्‌भूत पुस्तक है।

श्रीमती इंदिरा गांधी

देश के प्रथम प्रधानमंत्री और महान स्वतंत्रता सेनानी जवाहर लाल नेहरू की एकमात्र पुत्री इंदिरा गांधी का जन्म 19 नवम्बर 1917 को इलाहाबाद में

हुआ था। श्रीमती गांधी ने अपनी शिक्षा पश्चिम बंगाल में विश्वभारती विश्वविद्यालय और इंग्लैंड की ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में प्राप्त की तथा 1942 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक सहयोगी सदस्य फिरोज गांधी से विवाह किया लेकिन फिरोज का साथ-साथ दिनों तक उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। सन् 1960 में फिरोज की मृत्यु हो गई। उन्होंने अपना राजनीतिक सफर सन् 1955 में क्रांग्रेस पार्टी की कार्यकारी समिति के सदस्य के रूप में किया। 1959 में वे पार्टी अध्यक्ष चुनी गईं। नेहरू के बाद 1946 में प्रधानमंत्री बने लाल बहादुर शास्त्री ने उन्हें अपनी सरकार में सूचना और प्रसारण मंत्री बनाया।

यह महान राजनीतिज्ञ 1966 से 1977 के दौरान लगातार तीन बार प्रधान मंत्री बनी, चौथी बार यह 1980 से 1984 के दौरान प्रधान मंत्री रही। प्रधान मंत्री बनने के बाद इनके जीवन में अनेक उतार चढ़ाव आये।

सन् 1966 में प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री के अकस्मात निधन के पश्चात श्रीमती गांधी कांग्रेस पार्टी की नेता और देश की प्रधानमंत्री बनीं, लेकिन उनके नेतृत्व को भूतपूर्व वित्त मंत्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में पार्टी की दक्षिण शाखा से लगातार चुनौती मिलती रही। 1967 के चुनाव में वह कम बहुमत से जीत सकीं और उन्हें देसाई को उप-प्रधानमंत्री स्वीकार करना पड़ा, लेकिन 1971 में उन्होंने रूढ़िवादी पार्टियों के गठबंधन को भारी बहुमत से पराजित किया। श्रीमती गांधी ने 1971 के उत्तरार्द्ध में पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) द्वारा पाकिस्तान से अलग होने के संघर्ष को जोरदार समर्थन किया और भारत की सशस्त्र सेनाओं ने पाकिस्तान पर त्वरित और निर्णायक जीत हासिल की, जिसके फलस्वरूप बांग्लादेश का निर्माण हुआ।

मार्च 1972 में पाकिस्तान पर भारत की जीत के बाद श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय चुनावों में अपनी नई कांग्रेस पार्टी की जोरदार जीत का नेतृत्व किया। कुछ ही समय बाद उनके पराजित समाजवादी प्रतिद्वंद्वी ने उन पर चुनाव नियमों के उल्लंघन का आरोप लगाया। जून 1975 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उनके खिलाफ फैसला सुनाया, जिससे उनकी संसद की सदस्यता समाप्त हो जाती और उन्हें छह वर्ष के लिए राजनीति से अलग रहना पड़ता। प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने समूचे भारत में आपातकाल की घोषणा कर दी, अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को गिरफ़्तार करवा लिया और आपातकालीन शक्तियाँ हासिल करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता सीमित करने संबधी कई कानून बनाए। इस काल में उन्होंने कई अलोकप्रिय नीतियां लागू कीं, जिनमें बड़े पैमाने पर नसबंदी कार्यक्रम भी शामिल

था। जब लंबे समय तक स्थागित राष्ट्रीय चुनाव 1977 में हुए, तो श्रीमती गांधी और उनकी पार्टी की करारी हार हुई, जिसके बाद उन्हें पद छोड़ना पड़ा। जनता पार्टी ने सरकार की बागडोर सँभाली।

1978 के प्रारम्भ में कांग्रेस पार्टी में मतभेद उत्पन्न हो गये तथा पार्टी दो दलों में विभाजित हो गयी। श्रीमती गांधी और उनके समर्थकों ने कांग्रेस इ नाम से एक नयी पार्टी की स्थापना की। सरकारी भ्रष्टाचार के आरोप में श्रीमती गांधी अक्टूबर 1977 दिसम्बर 1978 में जेल में रही। इन झटकों के बावजूद नवंबर 1978 में वह एक नई संसदीय सीट से चुनाव जीतने में कामयाब रहीं और उनकी कांग्रेस-इ पार्टी धीरे-धीरे फिर मजबूत होने लगी। सत्तारूढ़ जनता पार्टी में अंतर्कलह के कारण अगस्त 1979 में सरकार गिर गई। जब जनवरी 1980 में लोकसभा के लिए नए चुनाव हुए, तो श्रीमति गांधी और उनकी पार्टी भारी बहुमत से सत्ता में लौट आई। उनके प्रमुख राजनीतिक सलाहकार, उनके पुत्र संजय गांधी भी लोकसभा की एक सीट पर विजयी रहे। इंदिरा और उनके पुत्र के खिलाफ चल रहे सभी कानूनी मुकदमे वापस ले लिए गए।

जून 1980 में एक वायुयान दुर्घटना में संजय गांधी की मृत्यु ने भारत के राजनीतिक नेतृत्व के लिए इंदिरा गांधी के चुने हुए उत्तराधिकारी को समाप्त कर दिया। संजय की मृत्यु के बाद इंदिरा ने अपने दूसरे पुत्र राजीव गांधी को पार्टी नेतृत्व के लिए तैयार किया। 1980 के दशक के आरंभ में इदिरा गांधी को भारत की राजनीतिक अखंडता के खतरों से जूझना पड़ा। कई राज्य केंद्र सरकार से अधिक स्वतंत्रता की माँग करने लगे तथा पंजाब में सिक्ख आतंकवादियों ने स्वायत्त राज्य की माँग पर जोर देने के लिए हिंसा का रास्ता अपना लिया। जवाब में श्रीमति गांधी ने जून 1984 में सिक्खों के पवित्रतम धर्मस्थल अमृतसर के स्वर्ण मंदिर पर सेना के हमले के आदेश दिए, जिसके फलस्वरूप 450 से अधिक सिक्खों की मृत्यु हो गई स्वर्ण मंदिर पर हमले के प्रतिकार में पाँच महीने बाद ही श्रीमती गांधी के आवास पर तैनात उनके दो सिक्ख अंगरक्षकों ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी।

श्रीमती गांधी अपने पिता द्वारा शुरू की गई औद्योगिक विकास की अर्द्ध समाजवादी नीतियों पर कायम रहीं। उन्होंने सोवियत संघ के साथ नजदीकी संबंध कायम किए और पाकिस्तान-भारत विवाद के दौरान समर्थन के लिए उसी पर आश्रित रहीं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी जी ने अपने जीवन की बड़ी-से-बड़ी चुनौती का साहस और धैर्य के साथ सामना किया अपने प्रधानंमत्रित्व काल के दौरान

इन्होंने देश की उन्नति और विकास के लिए जो निर्णय के लिये वे देश की ही नहीं विश्व की महान नेता सिद्ध करते हैं। इन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था। ''मेरे मरने के बाद' मेरे खून की एक-एक बूंद देश की अखण्डता, एकता और सुरक्षा के लिए प्रयत्नशिल रहेगी'' विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र की प्रधानमंत्री तथा इतिहास की महान नेता की 31 अक्टूबर 1984 को उनके अंगरक्षकों द्वारा ही हत्या कर दी गयी। इन्दिरा जी का जीवन देश के प्रति अटूट निष्ठा से पूर्ण इसलिए 1971 में राष्ट्रपति गिरि ने उन्हें सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया।

बाल गंगाधर तिलक

बाल गंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई 1856, को रत्नागिरि में हुआ था। एक विद्वान्, गणितज्ञ, दार्शनिक और उग्र राष्ट्रवादी के रूप में इन्होंने ख्याति प्राप्त की तथा भारत की स्वतंत्रता की नींव रखने में मदद की। उन्होंने सन् 1914 में इंडियन होमरूल लीग की स्थापना की और इसके अध्यक्ष रहे तथा 1916 में मुहम्मद अली जिन्ना के साथ लखनऊ समझौता किया, जिसमें आजादी के लिए संघर्ष में हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रावधान था।

तिलक ने हिंदू धार्मिक प्रतीक जगाकर और मुस्लिम शासन के खिलाफ मराठों के संघर्ष की लोकप्रिय परंपराओं को पुनर्जीवित करके राष्ट्रवादी आंदोलन (जो तब तक मुख्यत: उच्च वर्ग में सीमित था) की लोकप्रियता को विस्तार देने का प्रयास किया। इस प्रकार उन्होंने दो प्रमुख त्योहारों, 1893 में गणेश उत्सव और 1895 में शिवाजी उत्सव का आयोजन किया। गणेश सभी हिंदुओं के लिए पूजनीय हैं, जबकि शिवाजी भारत की मुस्लिम सत्ता के खिलाफ लड़ने वाले पहले हिंदू नायक और मराठा राज्य के संस्थापक थे, जिन्होंने कालांतर में भारत से मुस्लिम सत्ता को उखाड़ फेंका। इस प्रतीकवाद ने राष्ट्रवादी आंदोलन को अधिक लोकप्रिय तो बना दिया, लेकिन इसने इसे अधिक सांप्रदायिक भी बना दिया, जिससे मुसलमान चौकन्ने हो गए।

तिलक की गतिविधियों ने जल्दी ही उन्हें ब्रिटिश सरकार के साथ टकराव की स्थिति में ला खड़ा किया। सरकार ने उन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर 1897 में उन्हें जेल भेज दिया। इस मुकदमे और सजा के कारण उन्हें लोकमान्य (लोगों के लोकप्रिय नेता) की उपाधि मिली। भारत के वाइसरॉय लॉर्ड कर्जन ने जब 1905 में बंगाल का विभाजन किया, तो तिलक ने बंगालियों द्वारा इस

विभाजन को रद्द करने की मांग का जोरदार समर्थन किया और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार की वकालत की, जो जल्दी ही एक देशव्यापी आंदोलन बन गया। अगले वर्ष उन्होंने सत्याग्रह के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई, जिसे नए दल का सिद्धांत (टेनेट्स ऑफ द न्यू पार्टी) कहा जाता था। उन्हें उम्मीद थी कि इससे ब्रिटिश शासन का सम्मोहनकारी प्रभाव ख़त्म होगा और लोग स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु बलिदान के लिए तैयार होंगे। तिलक द्वारा शुरू की गई राजनीतिक गतिविधियों, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और सत्याग्रह को बाद में मोहनदास करमचंद गांधी ने अंग्रेजों के साथ अहिंसक असहयोग आंदोलन में अपनाया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नरम दल के लिए तिलक के विचार जरा ज्यादा ही उग्र थे। नरम दल के लोग छोटे सुधारों के लिए सरकार के पास 'वफादार' प्रतिनिधिमंडल भेजने में विश्वास रखते थे। तिलक का लक्ष्य स्वराज था, छोटे-मोटे सुधार नहीं और उन्होंने कांग्रेस को अपने उग्र विचारों को स्वीकार करने के लिए राजी करने का प्रयास किया। इस मामले पर 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में नरम दल के साथ उनका संघर्ष भी हुआ। राष्ट्रवादी शक्तियों में फूट का लाभ उठाकर सरकार ने तिलक पर राजद्रोह और आतंकवाद फैलाने का आरोप लगाकर उन्हें छह वर्ष के कारावास की सजा दे दी और मांडले, बर्मा (वर्तमान म्यांमार) में निर्वासित कर दिया। मांडले जेल में तिलक ने अपनी महान् कृति *भगवद्गीता-रहस्य* का लेखन शुरू किया, जो हिंदुओं की सबसे पवित्र पुस्तक की मूल टीका है। तिलक ने *भगवद्गीता* के इस रूढ़िवादी सार को ख़ारिज कर दिया कि यह पुस्तक संन्यास की शिक्षा देती है, उनके अनुसार, इससे मानवता के प्रति निःस्वार्थ सेवा का संदेश मिलता है।

तिलक का जन्म एक सुसंस्कृत, मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। विश्वविद्यालय से स्नातक होने के बाद तिलक ने कानून की पढ़ाई की, लेकिन उसके बाद उन्होंने पूना (वर्तमान पुणे) के एक निजी विद्यालय में गणित के अध्यापन का फैसला किया। यही विद्यालय उनके राजनीतिक जीवन का केंद्र बना। उन्होंने दक्कन एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना (1884) के बाद विद्यालय को महाविद्यालय के रूप में विकसित किया, जिसका लक्ष्य जनसाधारण को मुख्यतः अंग्रेजी भाषा में शिक्षित करना था। इसके बाद उन्होंने दो साप्ताहिक समाचार पत्रों, मराठी में *केसरी* और अंग्रेजी में द *मराठा,* के माध्यम से लोगों की राजनीतिक चेतना को जगाने का काम शुरू किया। इन समाचार पत्रों के जरिए ब्रिटिश शासन तथा उदार राष्ट्रवादियों की, जो पश्चिमी तर्ज़ पर सामाजिक सुधारों

एवं संवैधानिक तरीक़े से राजनीतिक सुधारों का पक्ष लेते थे, कटु आलोचना के लिए वह विख्यात् हो गए। उनका मानना था कि सामाजिक सुधार में जन शक्ति खर्च करने से वह स्वाधीनता के राजनीतिक संघर्ष में पूरी तरह नहीं लग पाएगी।

प्रथम विश्व युद्ध से ठीक पहले 1914 में रिहा होने पर वह पुनः राजनीति में कूद पड़े और ''स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा'' के नारे के साथ होमरूल लीग की स्थापना की। 1916 में वह फिर से कांग्रेस में शामिल हो गए तथा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हुए ऐतिहासिक लखनऊ समझौते पर हस्ताक्षर किए, जो उनके एवं पाकिस्तान के भावी संस्थापक मुहम्मद अली जिन्ना के बीच हुआ था। इंडियन होमरूल लीग के अध्यक्ष के रूप में तिलक 1918 में इंग्लैंड गए। उन्होंने महसूस किया कि ब्रिटेन की राजनीति में लेबर पार्टी एक उदीयमान शक्ति है, इसलिए उन्होंने उसके नेताओं के साथ घनिष्ठ संबंध कायम किए। उनकी दूरदृष्टि सही साबित हुई। 1947 में लेबर सरकार ने ही भारत की स्वतंत्रता को मंजूरी दी। तिलक पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था कि भारतीयों को विदेशी शासन के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए। इस बात से वह बराबर इनकार करते रहे कि उन्होंने हिंसा के प्रयोग को उकसाया।

1919 में कांग्रेस की अमृतसर बैठक में हिस्सा लेने के लिए स्वदेश लौटने के समय तक तिलक इतने नरम हो गए थे कि उन्होंने मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के जरिए स्थापित लेजिस्लेटिव काउंसिल (विधायी परिषदों) के चुनाव के बहिष्कार की गांधी की नीति का विरोध नहीं किया। इसके बजाय तिलक ने क्षेत्रीय सरकारों में कुछ हद तक भारतीयों की भागीदारी की शुरुआत करने वाले सुधारों को लागू करने के लिए प्रतिनिधियों को सलाह दी कि वे उनके 'प्रत्युत्तरपूर्ण सहयोग' की नीति का पालन करें। लेकिन नए सुधारों को निर्णायक दिशा देने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए महात्मा गांधी ने उन्हें 'आधुनिक भारत का निर्माता' और नेहरू ने 'भारतीय क्रांति के जनक' की उपाधि दी।

सरोजिनी नायडू

स्वतन्त्र भारत की प्रथम महिला राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू का जन्म 13 फरवरी 1879 को हैदराबाद में हुआ था। यह एक महान राजनीतिज्ञ कार्यकर्त्ता तथा नारीवाद की समर्थक कवियत्री और लेखिका थी जिन्हें भारत कोकिला के नाम से पुकारा जाता है। सरोजिनी नायडू, हैदराबाद के निज़ाम कॉलेज के प्राचार्य

एक बंगाली ब्राह्मण अघोरनाथ चट्टोपाध्याय की सबसे बड़ी बेटी थीं। वह 16 वर्ष की आयु में मद्रास विश्वविद्यालय में दाखिल हुईं और उन्होंने किंग्स कॉलेज, लंदन (1895-98) तथा बाद में गिरटन कॉलेज, केंब्रिज में अध्ययन किया।

'भारत कोकिला' सरोजिनी नायडू राजनीति के साथ-साथ साहित्यिक जीवन में भी सक्रिय थीं। उन्होंने बंबई स्थित अपने विख्यात अतिथि कक्ष में कई उल्लेखनीय भारतीय बुद्धिजीवियों को आमंत्रित किया। उनकी कविताओं के पहले संग्रह द *गोल्डेन थ्रेशोल्ड* (1905) के बाद द *बर्ड ऑफ टाइम* (1912) का प्रकाशन हुआ और 1914 में वह रॉयल सोसाइटी ऑफ लिटरेचर में फेलो चुनी गईं। सरोजिनी अंग्रेजी में ही कविताएं लिखती थीं और उनकी समग्र कविताएं 'द *सेप्टर्ड फ्लूट* (1928) तथा द *फेदर ऑफ डॉन* (1961) शीर्षकों से प्रकाशित हुईं।

भारत में महात्मा गांधीजी द्वारा चलाये जा रहे असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर सरोजनी नायडू ने 1924 में उन्होंने पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के हित के लिए वहाँ की यात्रा की और इसके बाद के वर्ष में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष बनीं। इससे आठ वर्ष पूर्व अंग्रेज नारीवादी एनी बेसेंट इस पद पर रह चुकी थीं। सरोजिनी ने 1928-29 में उत्तरी अमेरिका में कांग्रेस आंदोलन पर व्याख्यान दिए। भारत में उनकी ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों के कारण उन्हें कई बार जेल (1930, 1932, और 1942-43) जाना पड़ा। गोलमेज सम्मेलन के दूसरे सत्र (1931) में भाग लेने के लिए वह महात्मा गांधी के साथ लंदन गईं। द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने पर उन्होंने कांग्रेस पार्टी की नीतियों का समर्थन किया, जो पहले उदासीनता और फिर मित्र देशों के लिए स्वीकृत प्रतिरोध की थी। 1947 में वह संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की राज्यपाल बनीं और जीवनपर्यंत इस पद पर रहीं।

अटल बिहारी वाजपेयी

मध्य प्रदेश के ग्वालियर में 25 दिसम्बर, 1924 को जन्मे श्री अटल बिहारी वाजपेयी को अटल जी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इन्होंने भारतीय जनता पार्टी की तरफ से प्रधानमंत्री के पद पर आसीन होकर कई ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किये हैं जो भारतवासी सदा याद रखेंगे। इन्होंने देश को उन्नतशील और शक्तिशाली बनाने हेतु काफी प्रयत्न किया। मार्च, 1996 में पहली बार अटल जी को देश के प्रधानमन्त्री के रूप में शपथ दिलाई गई, परन्तु वे पद पर मात्र

13 दिन रहे, क्योकि केंद्र में सरकार बनाने लायक बहुमत प्राप्त करने में वह विफल रहे। इसके बाद 1998 तथा 1999 के संसदीय चुनावों में भाजपा तथा उसके सहयोगी दलों ने वाजपेयी के नेतृत्व में गठबंधन सरकार बनाई, परन्तु सहयोगी दलों द्वारा समर्थन वापस लेने से 13 महीनों बाद उनकी सरकार का पतन हो गया। 1999 में हुए अगले आम चुनावों तक वाजपेयी कामचलाऊ प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करते रहे। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के एक घटक के रूप में भाजपा ने पुनः चुनाव जीता और वाजपेयी ने ही पुनः उसके नेता का दायित्व संभाला।

अटल जी ने एक सांसद के रूप में भी काफी सराहनीय कार्य किये, वाजपेयी संसद के निचले सदन, लोकसभा के लिए आठ बार तथा राज्यसभा के लिए दो बार चुने गए। लोकसभा के लिए वह 1957 में भारतीय जनसंघ (बी. जे. एस.) के सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए। इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री काल में घोषित आपातकाल (1975-77) के दौरान उन्हें हजारों विपक्षी नेताओं के साथ बंदी बनाकर कारागार में रखा गया। 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में वाजपेयी मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी जनता पार्टी की सरकार में विदेश मंत्री बने और पाकिस्तान व चीन के साथ संबंध सुधारने के प्रयासों के लिए सराहे गए। वह 1980 में भाजपा की स्थापना में सहायक सिद्ध हुए, किंतु उनके नरम रवैये पर कट्टरपंथी हावी हो गए। वाजपेयी उन चंद हिंदू नेताओं में से हैं, जिन्होंने 1992 में अयोध्या स्थित ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद के विध्वंस की निंदा की।

अटल द्वारा अपने प्रधानमन्त्रित्व काल के दौरान मई, 1998 में पोखरण के द्वितीय परमाणु परीक्षण के बाद भारत को एक परमाणु शक्ति घोषित किया गया। विश्वव्यापी निंदा तथा पश्चिमी देशों द्वारा लगाए गए आर्थिक प्रतिबंधों के बावजूद वाजपेयी ने अपने तीखे तेवर बरकरार रखते हुए घोषित किया। ''भारत को अपने यशस्वी अतीत और भविष्य में शक्तिसंपन्न होने की दृष्टि से स्वीकृति प्राप्त है''।

अटल जी नेतृत्व कुशल व्यक्ति हैं। ये अपने प्रखर वाक् चातुर्य तथा ठोस तर्कों के बल पर श्रोताओं को पूरी तरह मंत्रमुग्ध कर लेते हैं। बहुमुखी व्यक्तित्त्व वाले वाजपेयी राजनीतिज्ञ के अलावा एक साहित्यकार और अनेक पुस्तकों के लेखक हैं। विदेश मंत्री के रूप में दिए गए उनके भाषण *विदेश नीति के नए आयाम शीर्षक* से संकलित किए गए हैं। एक कवि के रूप में सुप्रसिद्ध

वाजपेयी ने *मेरी 51 कविताएं* सहित कविता की भी कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

अटल जी के पिता अध्यापक थे, अत: इनकी शिक्षा पर भी काफी ध्यान दिया गया। इन्होंने कानपुर और ग्वालियर में अपनी पढ़ाई पूरी की। राजनीति विज्ञान और कानून के छात्र के रूप में उन्होंने विदेशी मामलों में गहरी रुचि विकसित की। समय के साथ यह दक्षता बढ़ी, जिसका भरपूर उपयोग उन्होंने अपने लंबे राजनीतिक जीवन में विश्व के अनेक द्विपक्षीय और बहुपक्षीय मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए किया। वह किशोरावस्था में ही राजनीति में सक्रिय हो गए और ब्रिटेन के उपनिवेशवादी प्रशासन ने उन्हें कुछ समय के लिए कारावास में भी डाला। यद्यपि प्रारंभ में वह साम्यवाद के प्रति आकर्षित हुए थे, तथापि जब साम्यवादियों ने 1940 के दशक में पाकिस्तान के निर्माण का समर्थन किया तो उनका उससे मोहभंग हो गया। वाजपेयी कानून की पढ़ाई अधूरी छोड़कर 1925 में हिंदू संस्कृति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थापित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर. एस. एस.) द्वारा प्रकाशित एक पत्र के संपादक बन गये।

राष्ट्रीय एकता

हमारा भारत देश विश्व के मानचित्र पर एक विशाल देश के रूप में चित्रित है। प्राकृतिक रचना के आधार पर तो भारत के कई अलग-अलग रूप और भाग हैं–उत्तरी का पर्वतीय भाग, गंगा, युमना सहित अन्य नदियों का समतलीय भाग, दक्षिण का पठारी भाग और समुद्र तटीय मैदान। भारत का एक भाग दूसरे भाग से अलग-थलग पड़ा हुआ है। नदियों और पर्वतों के कारण वे भाग एक-दूसरे से मिल नहीं पाते हैं। इसी प्रकार की जलवायु की विभिन्नता और अलग-अलग क्षेत्रों के निवासियों के जीवन आचरण के कारण भी देश का स्वरूप एक-दूसरे से विभिन्न और पृथक पड़ा हुआ दिखाई देता है। इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत एक है। भारतवर्ष की निर्माण सीमा ऐतिहासिक है। वह इतिहास की दृष्टि से भिन्न है। इस विषय में हम जानते हैं कि चंद्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और उनके बाद मुगलों ने भी इस बात की यही कोशिश की थी कि किसी तरह सारा देश एक शासक के अधीन लाया जा सके। उन्हें इस कार्य में कुछ सफलता भी मिली थी। इस प्रकार भारत की एकता ऐतिहासिक दृष्टि से एक ही सिद्ध होती है।

हमारे देश की एकता का बड़ा आधार दर्शन और साहित्य है। हमारे देश का दर्शन सभी प्रकार की भिन्नताओं और असमानताओं को समाप्त करने वाला है। यह दर्शन है–सर्वमान्य की भावना का पोषक। यह दर्शन किसी एक भाषा में नहीं लिखा गया है। अपितु यह देश की विभिन्न भाषाओं में लिखा गया है। इसी प्रकार से हमारे देश का साहित्य विभिन्न क्षेत्र के निवासियों के द्वारा लिखे जाने पर भी क्षेत्रवादिता या प्राप्तीयता के भावों को नहीं उत्पन्न करता है, बल्कि सबके लिए भाई-चारे और सद्भाव की कथा सुनाता है। मेल-मिलाप का संदेश देता हुआ देश भक्ति के भावों को जगाता है।

विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है। अतएव भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं, जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी अंत में जाकर एक ही साबित होते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि फारसी लिपि को छोड़ दें, तो भारत की अन्य सभी लिपियों की वर्णमाला एक ही है। यद्यपि यह अलग-अलग लिपियों में लिखी जाती है।

यद्यपि हमारे देश की भाषा एक नहीं अनेक हैं। यहाँ पर लगभग बाईस भाषाएँ हैं। इन सभी भाषाओं की बोलियाँ अर्थात् उपभाषाएँ भी हैं। सभी भाषाओं को संविधान से मान्यता मिली है। इन सभी भाषाओं से रचा हुआ साहित्य हमारी राष्ट्रीय भावनाओं से ही प्रेरित है। इस प्रकार से भाषा भेद की भी ऐसी कोई समस्या नहीं दिखाई देती है, जो हमारी राष्ट्रीय एकता को खंडित कर सके। उत्तर भारत का निवासी दक्षिणी भारत के निवासी की भाषा को न समझने के बावजूद उसके प्रति कोई नफरत की भावना नहीं रखता है। रामायण, महाभारत, आदि ग्रंथ हमारे देश की विभिन्न भाषाओं में तो हैं, लेकिन इनकी व्यक्त हुई भावना हमारी राष्ट्रीयता को ही प्रकाशित करती है। तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, नानक, रैदास, तुकाराम, विद्यापति, रवींद्रनाथ टैगोर, लालदेव आदि की रचनाएँ एक-दूसरे की भाषा से नहीं मिलती हैं। फिर भी इनकी मध्यस्थता का काम करती हैं। वह उत्पादक को उपभोक्ता के संपर्क में लाती है तथा माँग और पूर्ति में संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न करती है।

एक समय वह था जब समाचार पत्रों का अभाव था, विज्ञापन शब्द से लोग अपरिचित थे। किसी वस्तु की अच्छाई का विज्ञापन मौखिक परंपरा के द्वारा होता था, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, तीसरे, चौथे तक बात पहुँचती-पहुँचती अपना क्षेत्र तैयार कर लेती थी। उस समय लोगों की आवश्यकता भी सीमित थी, लोग किसी वस्तु के अभाव की तीव्रता का अनुभव भी नहीं कर पाते थे। किंतु

विज्ञान की नवीन प्रगति के साथ दिन-प्रति-दिन हमारी आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं, साथ ही हमारे रहन-सहन का स्तर भी बढ़ा रहा है।

किसी देश के राष्ट्रीय जीवन निर्माण के विज्ञापन के निर्माता स्थान रखते हैं। विज्ञापन के उचित प्रयोग से विभिन्न वस्तुओं के निर्माण ग्राहकों के संपर्क में आते हैं। विज्ञापन के अभाव में समाचार-पत्रों की रोचकता समाप्त हो जाती है। लोग जिस वस्तु की खोज में रहते हैं, विज्ञापन द्वारा ही उसे कम खर्च में सुविधा के साथ प्राप्त कर लेते हैं, यही विज्ञापन की पूर्ण सार्थकता है। विज्ञापन द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने व्यापार एवं व्यवसाय में समृद्धिशाली हो सकता है। इसी प्रकार राष्ट्र की समृद्धिव्यापार एवं व्यवसाय कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में प्रभावपूर्ण विज्ञापनों पर आश्रित रहती है। आधुनिक संसार विज्ञापन का संसार है। यदि हम किसी समाचार-पत्र के पृष्ठ उलटें तो विभिन्न प्रकार के विज्ञापन हमारा स्वागत करते हुए दृष्टिगोचर होंगे। विभिन्न विचित्र मुद्राओं के चित्र, आकर्षक भावपूर्ण शैली, लालसा एवं कौतूहल उत्पन्न करने वाले ढंग, बरबस हमें मोह लेते हैं। भाग्य का निर्माण करने वाले विज्ञापन, प्रेमज्वर से लेकर मुकदमे के मलेरिया बुखार तक को गारंटी के साथ दूर करने का दम भरते हुए दिखलाई पड़ते हैं। यदि हम किसी बड़े नगर की मुख्य सड़कों से निकलें तो हमें असंख्यक आकर्षक विज्ञापन हमारा ध्यान खींचते हुए दिखलाई पड़ते हैं। सिनेमा और थियेटर भवनों से लेकर विद्या के पवित्र मंदिर, विश्वविद्यालय की दीवारों तक में हमें काम संबंधी एवं सिनेमा के प्रसिद्ध अभिनेता-अभिनेत्रियों के आकर्षक चित्र मिलेंगे। यह विज्ञापन का संसार इतना आर्कषक बना दिया जाता है कि एक संयमी और चतुर व्यक्ति भी इस आकर्षण में बँध जाता है। विज्ञापन के विभिन्न साधन समाचार-पत्र, पोस्टर्स, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन एवं एजेंटों द्वारा किसी वस्तु का विज्ञापन किया जाता है।

विज्ञापन को यदि हम व्यापार की आत्मा कहें तो अत्युक्ति न होगी। विज्ञापन द्वारा व्यापार बढ़ता है, किसी वस्तु की माँग बढ़ती है, बिक्री में वृद्धि होती है एवं सबकी वृद्धि के साथ रहन-सहन का स्तर बढ़ता है। फिल्मी संसार तो पूर्णरूप से विज्ञापन के ही सहारे जीता है।

विज्ञापन से लाभ के अतिरिक्त हानियाँ भी हैं। सच्चाई एवं ईमानदारी के अभाव में विज्ञापन देश की समृद्धि एवं सर्वसाधारण की उन्नति में, विश्वास में, व्यवहार में, हर प्रकार की शंका सी पैदा कर देते हैं। धूर्तता के साथ वास्तविक ईमानदारी भी पीसती है। अतएव बहुत आवश्यक है कि सरकार इस प्रकार के

छली और प्रवंचक विज्ञापन दाताओं के प्रति कड़े से कड़ा व्यवहार करें। उदाहरण के लिए नियम होना चाहिए कि औषधि की परीक्षा करा लें। इन दोषों को दूर हो जाने पर विज्ञापन हमारे व्यापार को स्पृहणीय स्वस्थता प्रदान करेंगे, इसमें संदेह नहीं।

वन एवं पर्यावरण

पर्यावरण एवं वन का परस्पर अटूट संबंध है। प्रकृति का संतुलन रखने के लिए धरती के 33 प्रतिशत भाग पर वनों का होना आवश्यक है। ये वन नमी को अपने भीतर सुरक्षित रखते हैं। इससे वे सारे जगत को फल-फूल, हरियाली और सुखद शीतलता प्रदान करते हैं। वन जीवनदायक हैं और वर्षा लाने में मददगार हैं।

धरती की उपजाऊ-शक्ति को बढ़ाते हैं। वन ही वर्षा के धारासार जल को अपने भीतर सोखकर बाढ़ का खतरा रोकते हैं। यही रुका हुआ जल धीरे-धीरे सारे पर्यावरण में पुनः चला जाता है। वनों की कृपा से ही भूमि का कटाव रुकता है। सूखा कम पड़ता है और रेगिस्तान का फैलाव रुकता है।

वर्तमान समय में हमारे समक्ष प्रमुख समस्या पर्यावरण प्रदूषण की है। जिससे बचने का अचूक उपाय है वन-संरक्षण। वन हमारे द्वारा छोड़ी गई गंदी साँसों को, कार्बन-डाईऑक्साइड को भोजन के रूप में लेते हैं और बदले में हमें जीवनदायी ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। आज शहरों में लगातार ध्वनि-प्रदूषण बढ़ रहा है। वन और वृक्ष ध्वनि-प्रदूषण भी रोकते हैं। परमाणु ऊर्जा के खतरे को, अत्यधिक ताप को रोकने का सशक्त उपाय भी वनों के पास है। सच तो यह है कि वन-विहीन सृष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

वन ही नदियों, झरनों और अन्य प्राकृतिक जल-स्रोतों के भंडार हैं। इनमें ऐसी दुर्लभ वनस्पतियाँ सुरक्षित रहती हैं जो सारे जग को स्वास्थ्य प्रदान करती हैं। गंगा-जल की पवित्रता का कारण उसमें मिली वन्य-औषधियाँ ही हैं। इसके अतिरिक्त वन हमें लकड़ी, फूल-पत्ती, खाद्य-पदार्थ, गोंद तथा अन्य सामान प्रदान करते हैं जिनके बिना जीवन का रूप कुछ और होता। वन हमारे लिए वरदान हैं। दुर्भाग्य से भारतवर्ष में आज केवल 23 प्रतिशत वन रह गए हैं। अंधाधुंध कटाई के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है। वनों का संतुलन बनाए रखने के लिए 10 प्रतिशत वनों की आवश्यकता है। जैसे-जैसे उद्योगों की संख्या बढ़ती जा रही है, वाहन बढ़ते जा रहे हैं, वैसे वनों की आवश्यकता और अधिक

बढ़ती जा रही है। वन-संरक्षण कठिन महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए हर एक व्यक्ति को अपना योगदान देना पड़ेगा। सब जगह पेड़ लगाकर ही हम वन-संरक्षण की दिशा में सार्थक कदम उठा सकते हैं।

पत्र-लेखन

प्राचीन काल में जो पक्ष-पक्षियों (कबूतर) या सैनिक द्वारा भेजा जाता था डाक घर के उद्‌भव एवं विकास ने इस कर्म को आसान कर दिया। आज दूर संचार प्रणाली ने ई-मेल के माध्यम से इसे और अधिक सरल कर दिया है। लेकिन पत्र लेखन का महत्व दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है।

पत्र लेखन का कार्य बहुत पहले से ही होता आ रहा है तो इतना जरूर है समय व समाज में होने वाले बदलाव के कारण इसका रूप बदलता रहा है। सही मायने में पत्र हमारे जीवन में विचारों के आदान प्रदान का सरल, सस्ता लोकप्रिय तथा सशक्त साधन है। आज के व्यस्त युग में पत्र लेखन का महत्व और अधिक बढ़ गया है, क्योंकि आज व्यक्ति को कितनी ही व्यक्तियों, मित्रों, सगे संबंधियों, अधिकारियों तथा कार्यालयों से संपर्क करना पड़ता है। आज के व्यस्त जीवन में यह संभव नहीं है कि वह हर स्थान पर व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर अपने विचारों, समस्याओं तथा कठिनाइयों को प्रस्तुत कर सके, इसीलिए ऐसा करने के लिए वह पत्रों का सहारा लेता है।

कार्यालयी-पत्र तो कार्यविधि के अनिवार्य एवं अपरिहार्य अंग बन चुके हैं। इसी प्रकार नौकरी के लिए, संपादक के द्‌वारा सरकार को किसी समस्या से अवगत कराने के लिए, किसी अधिकारी का ध्यान किसी के प्रति आकर्षित करने के लिए पत्रों का ही सहारा लिया जाता है। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखते हुए पाठ्‌क्रम में पत्र लेखन को समाविष्ट किया जाता है।

पत्रों के प्रकार

पत्रों को दो भागों में बांटा जा सकता है–

(1) औपचारिक पत्र (Formal Letters)

(2) अनौपचारिक पत्र (Informal Letters)

1. औपचारिक पत्र–औपचारिक पत्राचार उन लोगों के साथ किए जाते हैं जिनके साथ हमारा कोई निजी परिचय या पारिवारिक संबंध नहीं होता। ऐसे

पत्रों में व्यक्तिगत लगाव या आत्मीयता का कोई स्थान नहीं होता। मुख्य कथ्य ही केन्द्र होता हैं।

औपचारिक पत्रों में इस प्रकार के पत्र आ सकते हैं–

(क) प्रार्थना पत्र–(अवकाश, शुल्कमुक्ति, आर्थिक सहायता, छात्रवृति, विद्यालय संबंधी किसी कठिनाई आदि से संबंधित)

(ख) आवेदन पत्र (नौकरी, प्रवेश आदि के लिए)

(ग) बधाई पत्र (किसी विशेष उपलब्धि, सफलता, शुभकार्य आदि के लिए)

(घ) शुभकामना पत्र (यात्रा, उन्नति आदि के लिए)

(ङ) धन्यवाद पत्र (किसी कार्य में सहयोग आदि के लिए)

(च) सांत्वना पत्र (दुर्घटनाग्रस्त होने, हानि होने या किसी शोकजनक घटना के लिए)

(छ) शिकायती पत्र (किसी समस्या से संबंधित विभिन्न अधिकारियों आदि के लिए)

(ज) संपादकीय पत्र (किसी समाचार पत्र के संपादक के लिए)

(झ) व्यावसायिक पत्र (व्यापारिक प्रतिष्ठानों, प्रकाशनों आदि के लिए)

2. अनौपचारिक पत्र–अनौपचारिक पत्राचार उनके साथ किया जाता है, जिनसे हमारा व्यक्तिगत या पारिवारिक संबंध होता है। इस प्रकार के पत्रों में अपने मित्रों, संबंधियों, परिवार-जनों आदि को लिखे गए पत्र आते हैं।

अनौपचारिक पत्र निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

(क) बधाई पत्र

(ख) शुभकामना पत्र

(ग) धन्यवाद पत्र

(घ) संवेदना या सांत्वना पत्र

(ड) निमंत्रण पत्र

(च) विशेष अवसरों पर लिखे गए पत्र

पत्र लिखते समय ध्यान योग्य बातें

(क) पत्र लिखते समय अपनी और पत्र पाने वाले की आयु, योग्यता तथा पद आदि का ध्यान रखना चाहिए।

(ख) पत्र में केवल आवश्यक बातों का ही समावेश होना चाहिए, अनावश्यक बातों का नहीं।

(ग) पत्र की भाषा सरल तथा प्रभावशाली होनी चाहिए

(घ) पत्र लिखते समय शुद्ध एवं स्वच्छ लेख का ध्यान रखना चाहिए। पत्र में अनावश्यक रूप से काट-छाँट नहीं करनी चाहिए।

(ङ) पत्र का विषय स्पष्ट होना चाहिए।

(च) पत्र में लिखने वाले का नाम, पता तथा दिनांक का उल्लेख अवश्य होना चाहिए।

(छ) पत्र में पाने वाले का नाम तथा पता स्पष्ट रूप से लिखा होना चाहिए।

पत्र के अंग–पत्र के मुख्य रूप से पाँच अंग होते हैं–

(क) भेजने का स्थान, दिनांक और पता–सामान्य पत्रों में इनका उल्लेख सबसे ऊपर दाई ओर किया जाता है।

आजकल इन्हें बाई ओर लिखने का प्रचलन हो गया है। इससे भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी में दोनों रूप ही मान्य हैं।

(ख) संबोधन एवं अभिवादन–जिसे पत्र लिखा जा रहा है उस व्यक्ति अथवा अधिकारी के अनुरूप संबोधन एवं अभिवादन प्रयोग किया जाना चाहिए। आपकी सुविधा के लिये विभिन्न प्रकार के संबोधनों से संबंधित जानकारी आगे दी गई है।

(ग) विषय-वस्तु– यह पत्र का मुख्य भाग है। पत्र के इस भाग में पत्र से संबंधित विषय-वस्तु का क्रमिक विवरण, सारगर्भित भाषा में एवं अलग-अलग अनुच्छेदों में दिया जाता है।

(घ) समाप्ति–पत्र के अंत में दाहिनी ओर पत्र लिखने वाला अपने संबंध के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग करता है तथा उसके नीचे अपने हस्ताक्षर करता है। आपकर सुविधा एवं जानकारी के लिए विभिन्न प्रकार के संबोधन बोधक शब्दों को सूची आगे दी गई है।

(ङ) पत्र पाने वाले का पता–यह प्रायः पत्र के अंत में लिखा जाता है।

आजकल पत्रों के नए प्रारूप में यह पत्र के प्रारंभ में बाई ओर ही लिख दिया जाता है।

आपकी सुविधा के लिए पुराने तथा नए प्रारूप के नमुने दिए जा रहे हैं।

औपचारिक-पत्र

पत्र लिखने का पुराना प्रारूप

प्रधानाचार्य को याचना पत्र

सेवा में,
श्रीमती प्रधानाध्यापक महोदय
.....
(विद्यालय का नाम)
.....
(स्थान)
महाश्य,
सविनय निवेदन है कि.....
.....

.....(विषय).....
.....
.....
दिनांक.....

आपका आज्ञाकारी शिष्य
छात्र/छात्रा का नाम
व र्ग . . . . . .

पत्र लिखने का नया प्रारूप

प्रधानाचार्य को याचना पत्र

प्रधानाध्यापक महोदय
.....
(विद्यालय का नाम)
.....
(स्थान)
दिनांक.....
विषय.....

महाश्य.............................

सविनय निवेदन है कि..........................

..................(विषय)..............................

....

....

आपका आज्ञाकारी शिष्य

छात्र/छात्रा का नाम............................

व र्ग . . . .

पत्र लिखने का पुराना प्रारूप

पर्यावरण अधिकारी को शिकायती-पत्र

सेवा में,

पर्यावरण अधिकारी महोदय

वन विभाग, उतरांचल

.......................क्षेत्र

विषय..

महाश्य

निवेदन है कि...................................

....

....

........................(विषय).........................

....

....

धन्यवाद भवदीय

........नाम.........

पता....................

....

पत्र लिखने का नया प्रारूप

पर्यावरण अधिकारी को शिकायती-पत्र

(प्रेषक का पता)

....

....

पर्यावरण अधिकारी महोदय
.....क्षेत्र
दिनांक.....
विषय.....
महाश्य
निवेदन है कि.....
.....
.....
.....(विषय).....
.....
.....
धन्यवाद
भवदीय
. . . . . नाम . . . . . .

अनौपचारिक-पत्र

पत्र लिखने का पुराना प्रारूप

दादाजी को नए विद्यालय के विषय में पत्र

.....स्थान.....
.....
दिनांक.....

पूजनीय दादाजी,
सादर प्रणाम
आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि.....
.....
.....(विषय).....
.....
आपका आज्ञाकारी पौत्र
. . . . . नाम . . . . . .

पत्र लिखने का नया प्रारूप

दादाजी को नए विद्यालय के विषय में पत्र

.....स्थान.....

.....

दिनांक.....

पूजनीय दादाजी,

सादर प्रणाम

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि.....

.....

.....(विषय).....

.....

आपका आज्ञाकारी पौत्र

.....नाम.....

पत्र लिखने में संबोधन, अभिवादन तथा अंत में लिखी जाने वाली शब्दावली

(क) अपने से बड़ों के लिए

(1) संबोधन–पूज्य, पूजनीय, आदरणीय, श्रद्धेय, मान्यवर, श्रीमान आदि।

(2) अभिवादन–सादर प्रणाम, चरण-स्पर्श, सादर चरण-स्पर्श आदि।

(3) समाप्ति–आपका आज्ञाकारी, आपकी आज्ञाकारिणी, आपका अनुज, आपका अनुजा, कृपाकांक्षी आदि।

(ख) अपने से छोटों के लिए

(1) संबोधन–प्रिय (नाम), चिरंजीव प्रिय (नाम), आयुष्मान (नाम), आयुष्मती (नाम), चिरंजीव आदि।

(2) अभिवादन–प्रसन्न रहो, शुभाशीष, शुभशीर्षवाद, सुखी रहो आदि।

(3) समाप्ति–तुम्हारा हितैषी, तुम्हारा शुभचिंतक, तुम्हारा अग्रज/पिता आदि।

(ग) बराबर वालों के लिए

(1) संबोधन–प्रिय बंधु, बंधुवर, प्रिय (नाम), मित्रवर, प्रिय मित्र आदि।

(2) अभिवादन–सप्रेम नमस्ते, सप्रेम नमस्कार, नमस्ते, नमस्कार आदि।

(3) समाप्ति–तुम्हारा परम मित्र, तुम्हारी सखी, तुम्हारा अभिन्न मित्र आदि।

(घ) आवेदन (प्रार्थना) पत्र के लिए

(1) संबोधन–श्रीमान व्यवस्थापक महोदय (प्रकाशक, फर्म आदि का नाम)

(2) अभिवादन–मान्यवर, महोदय, मान्य महोदय आदि।

(3) समाप्ति–प्रार्थी, विनीत, आपका आज्ञाकारी शिष्य, आपकी आज्ञाकारिणी शिष्य आदि।

(ङ) व्यावसायिक पत्र

(1) संबोधन–श्रीयुत व्यवस्थापक महोदय (प्रकाशक), फर्म आदि का नाम)

(2) अभिवादन–महोदय आदि।

(3) समाप्ति–भवदीय आदि।

शिकायत संबंधी/संपादक को पत्र/किसी अधिकारी को लिखे गए पत्र

(1) संबोधन–श्रीयुत संपादक महोदय (समाचार पत्र का नाम), श्रीयुत (अधिकारी का पद)

(2) अभिवादन–महोदय, मान्यवर, मान्य महोदय आदि।

(3) समाप्ति–भवदीय आदि।

विभिन्न प्रकार के पत्रों के उदाहरण

आगे विभिन्न प्रकार के पत्रों के उदाहरण दिए गए हैं। उनका अवलोकन कीजिए तथा इस प्रकार के पत्रों का अभ्यास कीजिए।

औपचारिक-पत्र

(क) प्रार्थना-पत्र

1. अपने विद्यालय के प्रधानाध्यापक को आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए आवेदन पत्र लिखिए।

प्रधानाचार्य महोदय
विद्यापती उच्च विद्यालय
समस्तीपुर (बिहार)
दिनांक 20-07-08

विषय : आर्थिक सहायता प्राप्त करने हेतु

मान्यवर,

सविनय निवेदन है कि मैं आपके विद्यालय की नवम् 'ए' का छात्र हुँ। मेरा अब ती पढ़ाई का रिकार्ड अच्छा रहा है। मैंने गत वर्ष वार्षिक परीक्षा में 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करके कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। पढ़ाई के साथ-साथ मैंने वाद-विवाद, कविता-पाठ तथा भाषा प्रतियोगिता में भी कई पुरस्कार प्राप्त किए हैं।

मान्यवर, मैं एक निर्धन छात्र हूँ मेरे पिता जी की लगभग एक वर्ष की लगातार अस्वस्थता के कारण घर की आर्थिक दशा और कमजोर हो गई है। सम्प्रति मेरे पिताजी मेरी पढ़ाई का खर्च वहन करने में समर्थ नहीं है।

आपसे निवेदन है कि मुझे इस वर्ष 500 रूपए प्रतिमाह की छात्रवृति प्रदान करें जिससे कि मैं अपनी पढ़ाई जारी रख सकूँ। आपकी इस कृपा के लिए मैं सदैव आपका आभारी रहूँगा।

धन्यवाद

आपका आज्ञाकारी छात्र

रंजन

वर्ग-नवम 'ए' अनुक्रमांक-1

2. निगम परिषद् में कार्यालय सहायक के रिक्त स्थान के लिए आवेदन पत्र लिखिए।

सहायक आयुक्त

पटना निगम परिषद्

पटना

विषय : कार्यालय सहायक -पद हेतु आवेदन-पत्र

महाशय

14 जूलाई 08 के रोजगार समाचार में प्रकाशित विज्ञापन क्रमांक 2010 के सांदर्भ में मैं आपके अधीन कार्यालय सहायक के पद के लिए अपना आवेदन-पत्र आपकी सेवा में प्रेषित कर रहा हूँ।

मेरा परिचय, शैक्षणिक तथा अन्य योग्यताओं आदि का पूर्ण विवरण आगे लिखित हैं-

नाम अमृत राज

पिता का नाम राजेन्द्र राज

जन्मतिथि 9 जून 1987

वर्तमान स्थाई–ग्राम–धनेशपुर, पो.–मिर्जापुर जिला–वैशाली (बिहार)।

शैक्षणिक योग्यताएँ–

क्र.	कक्षा	विद्यालय	बोर्ड	उतीर्ण वर्ष	प्राप्तांक	विषय
1.	सेकेंडरी स्कूल परीक्षा	राधा कृष्ण उच्च विद्यालय महनार	बिहार विद्यालय समिति पटना	मार्च/अप्रैल 2003	325/500	हिंदी, गणित, अंग्रेजी, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान
2.	सीनियर सेकेंडरी स्कूल परीक्षा	एन. डी. ए. महाविद्यालय शाहपुर पटोरी	इन्टर कॉन्सील पटना	मार्च/अप्रैल 2005	348/500	अंग्रेजी, वाणिज्य, अर्थशास्त्र राजनीति विज्ञान

अन्य योग्यता–

टंकण गति– हिंदी टंकण–45 शब्द प्रति मिनट
अंग्रेजी टंकण–50 शब्छ प्रति मिनट

आशुलिपि– अंग्रेजी आशुलिपि 100/140 शब्द प्रति मिनट

कम्प्यूटर– छह माह का प्रशिक्षण (एन. आई. सी. पटना)

आशा है आप मुझे साक्षात्कार का अवसर अवश्य देंगे जिससे कि मैं उपर्युक्त पद के लिए अपनी उपयुक्तता सिद्ध कर सकूँ।

धन्यवाद।

अमृत राज

ह. आवेदक

दिनांक 24 जूलाई 2008

संलग्न प्रपत्रों का विवरण–

निम्नलिखित प्रपत्रों की छायाप्रतियाँ संलग्न हैं–

(क) सेकेंडरी स्कूल परीक्षा का प्रमाण-पत्र

(ख) सीनियर सेकेंडरी स्कूल परीक्षा का प्रमाण-पत्र

(ग) टंकण गति प्रमाण-पत्र

(घ) कंम्प्यूटर-प्रशिक्षण-प्रमाण पत्र

(ड) चरित्र-प्रमाण-पत्र

3. बेसिक शिक्षा अधिकारी को प्राइमरी शिक्षक के पद के लिए आवेदन पत्र लिखिए।

बुनियादी शिक्षा अधिकारी
शिक्षा निदेशालय
लखनऊ
विषय : प्राथमिक शिक्षा के पद हेतु
महाशय,

दिनांक 25.06.08 के रोजगार समाचार पत्र में प्रकाशित विज्ञापन संख्या 008 के सदर्भ में मैं आपके अधीन प्राथमिक शिक्षा के लिए अपना आवेदन पत्र आपकी सेवा में प्रेषित कर रहा हूँ।

मेरा परिचय, शैक्षिक तथा अन्य योग्यताओं आदि का पूर्ण विवरण निम्न है–

नाम	राधेयाम अग्रवाल
पिता का नाम	श्री महेन्द्र अग्रवाल
जन्म तिथि	25-10-1983
वर्तमान	ए-1723 गोविन्दपुरी कानपुर (उतर प्रदेश)

शैक्षणिक योग्यताएँ–

क्र.	कक्षा	विद्यालय	बोर्ड	उतीर्ण वर्ष	प्राप्तांक	विषय
1.	सेकेंडरी स्कूल परीक्षा	राजकीय सर्वोदय विद्यालय जनकपुरी, दिल्ली	केंद्रीय माध्यामिक	1994	385/500	हिंदी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान
2.	सीनियर सेकेंडरी स्कूल परीक्षा	राजकीय सर्वोदय विद्यालय जनकपुरी, दिल्ली	केंद्रीय माध्यामिक शिक्षा बोर्ड	1996	390/500	अंग्रेजी, गणित, अर्थशास्त्र राजनीति शास्त्र, इतिहास

3. बी. ए.	श्रद्धानंद कालेज अलीपुर दिल्ली	दिल्ली वि.वि	1999	1000/1200	हिंदी, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र

विशेष–(क) सेकेंडरी स्कूल परीक्षा में अंग्रेजी और गणित में विशेष योग्यता।

(ख) सीनियर सेकेंडरी स्कूल परीक्षा में अंग्रेजी और हिंदी में विशेष योग्यता।

अनुभव–(क) शतरंज, क्रिकेट नृत्य तथा अन्य सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में अनेक पुरस्कार।

(ख) एन.सी.सी मास्टर का प्रशिक्षण प्राप्त।

आशा है कि आप मुझे साक्षात्कार का अवसर अवश्य प्रदान करेंगे जिससे कि मैं उपर्युक्त पद के लिए अपनी उपयुक्तता सिद्ध कर सकूँ।

आवेदन पत्र के साथ मेरी शैक्षणिक योग्यता तथा अनुभव के प्रमाणपत्रों की छाया-प्रतियां संलग्न हैं।

धन्यवाद

राधेश्याम अग्रवाल

ह. आवेदिका

दिनांक 30.06.08

स्थान–कानपुर

4. श्री देवेन्द्र मेहता, राजेन्द्र विद्यालय की प्रबंध समिति के अध्यक्ष हैं। आपके विद्यालय द्वारा प्रदर्शित मॉडल को विज्ञान मेले में सर्वश्रेष्ठ मॉडल के रूप में चुना गया है तथा राष्ट्रीय स्तर भाग लेने का अवसर प्रदान किया गया है। विद्यालय के प्राचार्य, विज्ञान आचार्य तथा मॉडल बनाने वाले छात्रों को पत्र द्वारा बधाई दीजिए।

श्री देवेन्द्र मेहता

अध्यक्ष प्रबंध समिति

.....

राजेन्द्र विद्यालय

दिनांक.....

श्री राजकुमार पाण्डेय

प्राचार्य

प्रिय महोदय,

मुझे विदित हुआ है कि हमारे विद्यालय द्वारा प्रदर्शित मॉडल को विज्ञान मेले का सर्वश्रेष्ठ मॉडल चुना गया है और राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले विज्ञान मेले पर प्रदर्शित किए जाने के लिए चुना गया है तथा हमारे विद्यालय के मॉडल को उ.प्र. में सर्वोच्च स्थान मिला है। इस बात को सुनकर अत्यंत हर्ष हुआ तथा मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया।

यह उपलब्धि आपके कुशल निर्देशन, विज्ञान शिक्षक अनुराग शर्मा तथा उनके छात्रों के अथक परिश्रम एवं प्रयास का ही परिणाम है। विद्यालय की प्रबंध समिति तथा अपनी ओर से मेरी बधाई स्वीकार करें। प्रबंध समिति मॉडल बनाने वाले छात्रों तथा विज्ञान शिक्षक को सम्मानित करने का कार्यक्रम भी बना रही है।

मुझे विश्वास है कि आपके नेतृत्व में भविष्य में भी विद्यालय इसी प्रकार के कीर्तिमान स्थापित करता रहेगा।

भवदीय

श्री देवेन्द्र महतो

अध्यक्ष प्रबंध समिति

6. गणेश प्रसाद यादव, खगेश विद्यालय के आचार्य अभिभावक संघ के प्रधान हैं। खगेश विद्यालय के हिंदी अध्यापक श्री प्रभाकर मिश्र का चयन हौलैण्ड की एक संस्था में हिन्दी निदेशक के रूप में हो गया है। वे इसी माह वहाँ जा रहे हैं। उन्हें शुभकामना देते हुए पत्र लिखिए।

गणेश प्रसाद यादव

प्रधान, आचार्य अभिभावक संघ

खगेश विद्यालय गमा

बिहार

4-5-08

श्री प्रभाकर मिश्र

सादर नमस्कार

यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आपका चयन होलैण्ड की एक संस्था में 'हिन्दी निदेशक' के रूप में हो गया है तथा उस कार्यभार को संभालने के लिए आप शीघ्र ही प्रस्थान करने वाले हैं। इतने उच्च पद पर आपका चयन होना आपकी योग्यता तथा उतम शैक्षिक उपलब्धियों का प्रमाण है। आपका चयन विद्यालय के लिए गर्व का विषय है।

आचार्य-अभिभावक संघ तथा मेरी ओर से आपको ढेर सारी शुभकामनाएँ। मुझे विश्वास है कि आप अपनी कर्तव्यनिष्ठा, कर्मठता तथा कार्य-कुशलता द्वारा सभी को प्रभावित करेंगे।

भवदीय

राजेन्द्र प्रसाद यादव

7. रंजन साह विवेकानन्द विद्यालय के प्राचार्य हैं। आपके पड़ोस के विद्यालय गुलाब राय विद्यालय के विधार्थी मध्यप्रदेश भ्रमण पर गए थे, जहां उनक दुर्घटना हो गई, जिसमें छात्रों को चोटें आई। इनमें से दस छात्रो की स्थिति गंभीर है। विद्ययालय के प्रधानाचार्य श्री उमाशंकर पासवान को संवेदना-पत्र लिखिए।

रंजन साह

प्राचार्य

विवेकानन्द विद्यालय आरा

7 अप्रैल 2008

उमाशंकर पासवान

प्राचार्य

गुलाब राय, आरा

प्रिय उमाशंकर जी,

यह समाचार सुनकर अत्यत दु:ख हुआ कि आपके विद्ययालय के छात्रों को मध्यप्रदेश भ्रमण पर ले जा रही बस इंदौर के निकट दुर्घटनाग्रस्त हो गई, जिससे बहुत से छात्रों को चोटें आई।

चिंता का विषय यह है कि दस छात्रों की स्थिति अत्यंत गंभीर है, जो अस्पताल में जिंदगी और मौत से जूझ रहे हैं।

विवेकानन्द विद्यालय परिवार आपके छात्रों के साथ पूरी संवेदना व्यक्त करता है। हम सब की ईश्वर से प्रार्थना है कि सभी छात्र जल्दी स्वस्थ हो जाएँ और सकुशल अपने घर लौट आएँ।

इंदौर में मेरा पुत्र सिविल सर्जन के रूप में कार्यरत है। यदि किसी भी प्रकार की मदद की जरूरत पड़े तो निस्संकोच बताइगा। इस संबध में मैं स्वयं विद्यालय आकर आपसे बात करूगाँ।

भवदीय

रंजन साह

6

हिन्दी अनुवाद का व्यावहारिक रूप

अनुवाद भाषा के इन्द्रधनुषी रूप की पहचान का समर्थतम मार्ग है। अनुवाद की अनिवार्यता को किसी भाषा की समृद्धि का शोर मचा कर टाला नहीं जा सकता और न अनुवाद की बहुकोणीय उपयोगिता से इन्कार किया जा सकता है। TRANSLATION के पर्यायस्वरूप 'अनुवाद' शब्द का स्वीकृत अर्थ है, एक भाषा की विचार सामग्री को दूसरी भाषा में पहुँचना। अँग्रेजी में TRANSLATION के साथ ही TRANSCRIPTION का प्रचलन भी है, जिसे हिंदी में लिप्यन्तरण कहा जाता है। अनुवाद और लिप्यंतरण का अंतर इस उदाहरण से स्पष्ट है–

उसके सपने सच हुए।

HIS DREAMS BECAME TRUE μTRANSLATION

USKEY SAPNE SACH HUEY μTRANSCRIPTION

इससे स्पष्ट है कि अनुवाद में हिंदी वाक्य को अँग्रेजी में प्रस्तुत किया गया है जबकि लिप्यंतरण में नागरी लिपि में लिखी गयी बात को मात्र रोमन लिपि में रख दिया गया है।

अनुवाद के लिए 'भाषांतर और 'रूपांतर का प्रयोग भी किया जाता रहा है। लेकिन अब इन दोनों ही शब्दों के नए अर्थ और उपयोग प्रचलित हैं। 'भाषांतर और 'रूपांतर का प्रयोग अँग्रेजी के INTERPRETATION शब्द के पर्याय-स्वरूप

होता है, जिसका अर्थ है दो व्यक्तियों के बीच भाषिक संपर्क स्थापित करना। कन्नड़भाषी व्यक्ति और असमियाभाषी व्यक्ति के बीच की भाषिक दूरी को भाषांतरण के द्वारा ही दूर किया जाता है। 'रूपांतर शब्द इन दिनों प्रायः किसी एक विधा की रचना की अन्य विधा में प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त है। जैसे, प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान का रूपांतरण 'होरी नाटक के रूप में किया गया है।

किसी भाषा में अभिव्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में यथावत् प्रस्तुत करना अनुवाद है। इस विशेष अर्थ में ही 'अनुवाद शब्द का अभिप्राय सुनिश्चित है। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है, वह मूलभाषा या स्रोतभाषा है। उससे जिस नई भाषा में अनुवाद करना है, वह 'प्रस्तुत भाषा या 'लक्ष्य भाषा है। इस तरह, स्रोत भाषा में प्रस्तुत भाव या विचार को बिना किसी परिवर्तन के लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद है।

अनुवाद का अर्थ

'अनुवाद' को यौगिक शब्द के रूप में देखा जा सकता है। इसमें 'वद्' धातु में 'ध' प्रत्यय के समावेश से 'वाद' शब्द का निर्माण होता है। वद् धातु का अर्थ है बोलना या कहना। 'अनुवाद' शब्द 'वाद' शब्द में 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से बनता है। इसमें 'अनु' उपसर्ग को अनुवर्तिता के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार अनुवाद शब्द का मूल अर्थ किसी कथन या किसी के कहने के पश्चात् कुछ कहने के आशय से संबंधित है। इस कहने में अर्थ की ही पुनरावृत्ति होती है, शब्द की नहीं। दूसरे शब्दों में इसे अर्थ का भाषांतरण भी कहा जा सकता है। अंग्रेजी में अनुवाद के लिए ट्रांसलेशन (Translation) शब्द प्रयुक्त होता है, जो प्राचीन फ्रांसीसी शब्द 'ट्रांसलेटेर' से बना है, जिसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है–'परिवहन' यानी एक स्थान से दूसरे स्थान-बिंदु पर ले जाना। यह स्थान बिंदु भाषिक पाठ है, इसमें ले जाने वाली चीज अर्थ होती है, शब्द नहीं।

ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में इसका मुख्यार्थ निम्नांकित है–"Translate-Express the sense of (word, sentence, book) in or into another language (as translated Homer into English from the Greek.) अनुवाद में स्रोतभाषा के अर्थ को लक्ष्य भाषा में रूपांतरण की प्रक्रिया को भली-भांति सम्पन्न करना प्रमुख रूप से शामिल बात होती है। 'अनुवाद' संस्कृत का शब्द है, जिसका प्रचलन बहुत प्राचीन समय से हो रहा है। आधुनिक काल में इसके अर्थ में परिवर्तन हुआ है। अनुवाद के लिए 'छाया' शब्द भी बड़ा पुराना है। प्राचीन भारतीय शिक्षा की

गुरु-शिष्य परंपरा में गुरु के कहे हुए वचन को शिष्य दुहराता था। इस पठन-पाठन की प्रक्रिया में गुरु के पाठों को दुहराने की यह क्रिया 'अनुवचन' या 'अनुवाद' के रूप में देखी जाती है। इस क्रम में वेदों की चर्चा की जाती है अर्थात् काफी दिनों तक ये ग्रंथ सुनकर और याद करके अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया में प्रचलित रहे।

'शब्दार्थ चिंतामणि कोश' में अनुवाद का अर्थ है–पूर्व में कथित अर्थ का पुनर्कथन। वैदिक संस्कृत से लेकर लौकिक संस्कृत के अनेक ग्रंथों में 'अनुवाद' शब्द 'ज्ञान का कथन' या 'कही गयी बात को दुहराने' के अर्थ में बार-बार आया है। संस्कृत में 'गुणानुवाद' (गुण + अनुवाद) शब्द का प्रयोग भी गुण के पुनः-पुनः कथन के ही अर्थ में हुआ है, किंतु, 'अनुवाद' का प्रचलित अर्थ पुनः कथन से कहीं पुररुक्ति समझ लिया गया, तो बड़ी भूल होगी, क्योंकि अनुवाद नहीं है, बल्कि 'पुनस्सृजन' का कार्य है। साहित्यिक कृति के अनुवाद को तो एजरा पाउंड ने 'साहित्यिक पुनर्जीवन' की संज्ञा दी है। आजकल तो 'साहित्यिक अनुवाद' की जगह 'साहित्यिक पुनर्सृष्टि' शब्द ही प्रचलन में है। देश-विदेश की सभी भाषाओं में अनुवाद के लिए कई शब्दों का प्रचलन रहा है। जैसे, हिन्दी, उड़िया, असमिया, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में तो 'अनुवाद' शब्द चलता है, किंतु बंगला, कन्नड़, सिंधी में 'अनुवाद' शब्द के अलावा क्रमशः तर्जमा, भाषांतर, तर्ज्जुमा–शब्दों का प्रयोग भी होता है। कश्मीरी में 'तर्जमा', मलयालम में 'विवर्तन', 'तर्ज्जुमा', तमिल में 'मोषिये चर्त्यु' व तेलुगु में 'अनुवादम्' और उर्दू में 'तर्जमा' शब्द प्रचलित है। फारसी तथा उसके माध्यम से अरबी शब्दों के प्रचार के कारण 'तरजुमा' शब्द भी चल पड़ा है। अनुवाद की प्रक्रिया व्यक्त को व्यक्त करने से जुड़ी है, लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार हमारी वाचिक भाषा में निरंतर अव्यक्त व्यक्त के रूप में सामने आता है।

अज्ञेय के अनुसार–''....समस्त अभिव्यक्ति अनुवाद है क्योंकि वह अव्यक्त (या अदृश्यादि) को भाषा (या रेखा या रंग) में प्रस्तुत करती है...'' किंतु प्रचलित अर्थ में एक भाषा में प्रकट किये गये विचारों को किसी दूसरी भाषा में यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना अनुवाद कहलाता है। मूलतः जिस भाषा में विचार प्रकट किये गये वह स्रोत भाषा कहलाती है और स्रोतभाषा के विचार जिस किसी भाषा में रूपांतरित किये जाते हैं, वह लक्ष्यभाषा कही जाती है। इस प्रकार इन्हें अंग्रजी में एस.एल तथा टी.एल जैसे संक्षिप्त अक्षरों के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। अनुवाद किसी स्रोत भाषा

से किसी अन्य लक्ष्य भाषा में किसी लिखित सामग्री के अनुवाद या रूपांतरण की प्रक्रिया है। यह एक सरल कार्य के अलावा कठिन और जोखिमपूर्ण काम भी है। अनुवाद-विज्ञान के मर्मी अनुवाद कार्य को एक दुर्गम पथ पर कठिन चुनौतीभरी यात्रा मानते हैं।

एक अनुवादक को इस बात की अत्यंत सतर्कता बरतने की जरूरत होती है कि लक्ष्यभाषा में किया गया अनुवाद उस भाषा की सहज प्रकृति के सर्वथा अनुरूप हो, वह स्रोतभाषा की छाया नहीं होनी चाहिए। दरअसल हर भाषा का विकास विशेष निजी परिस्थितियों में होता है। भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि अनेक तत्त्व हर भाषा की पृष्ठभूमि में हुआ करते हैं। स्रोतभाषा के ये तत्त्व लक्ष्यभाषा के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तत्त्वों से ईषत् भिन्नता प्रकट करते हैं। इस कारण स्रोतभाषा की पूरी-पूरी बात को लक्ष्यभाषा में शत-प्रतिशत खपाना बड़ा कठिन होता है। अच्छे अनुवादक के लिए स्रोतभाषा के लेखक के व्यक्तित्त्व एवं चर्चित विषय का भी सूक्ष्मता से ध्यान रखते हुए अनुवाद अपेक्षित होता है, क्योंकि व्यक्ति के अनुसार व्यक्ति की भाषा में भिन्नता होती है।

अनुवाद की प्रक्रिया में एक भाषा की अभिव्यक्तिगत विशिष्टताएँ दूसरी भाषा में भिन्न होती है। इस भिन्नता का अभिव्यक्ति में समायोजन अनुवाद के लिए चुनौती की तरह होती है। यह भिन्नता ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपात्मक, वाक्यात्मक आदि विभिन्न रूपों में देखी जाती है।

डॉ. सुरेश कुमार ने अनुवाद को इस रूप में परिभाषित किया है, उनके अनुसार–''अनुवाद एक जटिल, कृत्रिम, आवश्यकताजनित और सर्जनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें असाधारण और विशिष्ट कोटि की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। ''

यह बिल्कुल आवश्यक नहीं कि मूलभाषा की किसी अभिव्यक्ति के पूर्णतः समान अभिव्यक्ति 'लक्ष्यभाषा' में शब्द और अर्थ दोनों स्तरों पर ही हो जाए। यहाँ 'पूर्णतः समान अभिव्यक्ति' से तात्पर्य है कि स्रोतभाषा में व्यक्त विचारों को पढ़कर या सुनकर स्रोतभाषा-भाषी जो अर्थ ग्रहण करे, लक्ष्यभाषा में उसके रूपांतर को पढ़कर या सुनकर लक्ष्यभाषा-भाषी भी ठीक वही अर्थ ग्रहण करे। प्रायः होता यह है कि मूलभाषा से जो अर्थ अभिव्यक्त होता है, वह लक्ष्यभाषा में व्यक्त होने वाले अर्थ की तुलना में या तो विस्तृत हो जाता है या संकुचित हो जाता है या फिर कुछ भिन्न हो जाता है।

इन कठिनाइयों के बावजूद अनुवाद कार्य आज इतना आवश्यक हो गया है कि इसके बिना मानव संस्कृति के विकास-विस्तार की कल्पना बाधित होती है। बीसवीं शताब्दी को अनुवाद का युग कहा जाने लगा है। अब अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के रूप में देखा जाता है। इस तरह इसका स्वरूप एक विषय के रूप में निर्धारित हो गया है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद या भाषांतर को प्रतीकांतर के रूप में देखा है। उनके अनुसार, हमारे विचार किसी-न-किसी प्रकार के प्रतीक के माध्यम से ही अभिव्यक्त पाते हैं। भाषा में ये प्रतीक शब्द होते हैं। इन प्रतीकों का परिवर्तन ही 'प्रतिकांतर' है।

डॉ. तिवारी के शब्दों में–''एक प्रतीक (या प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त विचार (या विचारों) को दूसरे प्रतीक (या प्रतीक-वर्ग) द्वारा व्यक्त करना 'प्रतीकांतर' है। '' प्रतीकांतर तीन प्रकार के होते हैं–शब्दांतर, माध्यमांतर और भाषांतर। जब एक भाषा में व्यक्त किये गए विचारों को हम दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं, तो यह भाषांतर कहलाता है, जिसे 'अनुवाद' या 'तरजुमा' आदि कहा जाता है। भोलानाथ तिवारी के द्वारा अनुवाद को प्रतीकांतर का एक भेद माने जाने के पीछे एक भाषा के प्रतीकों का दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने की बात से प्रमुखतः जुड़ा हुआ है। प्रसिद्ध विद्वान रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने भी अनुवाद के कार्य को दो संदर्भों में देखा है–पहला व्यापक और दूसरा सीमित। संदर्भ में अनुवाद को प्रतीक-सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। संक्षेप में प्रतीक-सिद्धांत यह है कि कथ्य का प्रतीकांतरण अनुवाद है। सीमित संदर्भ यह है कि कथ्य का भाषांतरण अनुवाद है। पहला सिद्धांत प्रतीक-विज्ञान पर आधारित है। इस प्रकार अनुवाद में दो भाषाओं की सामग्री होती है। इसमें एक भाषा में सामग्री निर्मित होती है तथा उस सामग्री को दूसरी भाषा में पुनर्निर्मित किया जाता है।

एक भाषा में जो भाव, विचार या चिंतन व्यक्त हुए हैं, उन्हें दूसरी भाषा में उलथा (उल्था) या रूपांतरित करके प्रस्तुत किया जाता है। इन्हें ही स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा इन दो घटकों के रूप में जानते हैं। इन दो घटकों की भाँति अर्थ और रूप के भी तत्त्व होते हैं। ऐसी संकल्पनाओं के आधार पर तथा अनुवाद की बहुपक्षीयता को देखते हुए अनुवाद की परिभाषाएँ विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत की गयी हैं। विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत इन परिभाषाओं से अनुवाद के स्वरूप को समझने में हमें मदद मिलती है। इनमें इन विद्वानों की परिभाषाओं का व्यापक महत्त्व होता है।

फॉरेस्टन के शब्दों में –''एक भाषा की पाठ्य-सामग्री के तत्त्वों को दूसरी भाषा में स्थानांतरित कर देना अनुवाद कहलाता है। यह ज्ञातव्य है कि हम तत्त्व या कथ्य को संरचना (रूप) से हमेशा अलग नहीं कर सकते हैं। ''

न्यूमार्क के शब्दों में– ''अनुवाद एक शिल्प है, जिसमें एक भाषा में लिखित संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा में उसी संदेश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है। ''

हार्टमन तथा स्टार्क के शब्दों में– ''एक भाषा या भाषाभेद से दूसरी भाषा या भाषाभेद में प्रतिपाद्य को स्थानांतरित करने की प्रक्रिया या उसके परिणाम को अनुवाद कहते हैं। ''

हैलिडे के शब्दों में ''अनुवाद एक संबंध है, जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है। ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य संपादित करते हैं। दोनों पाठों का संदर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होने वाला संदेश भी समान होता है। ''

सैमुएल जॉन्सन के शब्दों में–''मूल भाषा की सामग्री के भावों की रक्षा करते हुए उसे दूसरी भाषा में बदल देना अनुवाद है। ''

जॉन कनिंगटन के शब्दों में–''लेखक ने जो कुछ कहा है, अनुवादक को उसके अनुवाद का प्रयत्न तो करना ही है, जिस ढंग से कहा, उसके निर्वाह का भी प्रयत्न करना चाहिए। ''

नाइडा के शब्दों में– ''मूलभाषा के संदेश के समतुल्य संदेश को लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की यह मूल्य समता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से तथा निकटतम और स्वाभाविक होती है। ''

कैल फोर्ड के शब्दों में– ''एक भाषा की पाठ्य-सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्य सामग्री में प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है। ''

देवेन्द्रनाथ शर्मा के शब्दों में–''विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करना अनुवाद है। ''

डॉ. सीतारानी पालीवाल के शब्दों में–''स्रोतभाषा में व्यक्त प्रतीक-व्यवस्था को लक्ष्यभाषा की सहज प्रतीक-व्यवस्था में रूपांतरित करने का कार्य अनुवाद है।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में–''एक भाषा में व्यक्त विचारों को, यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। ''

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपनी परिभाषा में अनुवाद की वास्तविक प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उन्होंने अनुवाद को परिभाषित करने के अलावा इसकी प्रक्रिया पर भी भलीभाँति इस प्रकार प्रकाश डाला है। ''भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था और अनुवाद है। इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनत: और कथ्यत:) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। '' इस प्रकार डॉ. तिवारी के अनुसार अनुवाद कथनत: और कथ्यत: निकटतम सहज प्रतिप्रतीकन है।

इस प्रकार इन परिभाषाओं से यह प्रकट होता है कि अनुवाद की प्रक्रिया बहुपक्षीय कारकों की क्रियाशीलता से संबंधित है और अनुवाद एक श्रेष्ठ कला के साथ प्रक्रिया में विज्ञान है तथा उसकी सफलता एक कुशल शिल्पी होने पर निर्भर करने के कारण यह एक शिल्प भी है। अनुवाद का मूल लक्ष्य है स्रोतभाषा की सामग्री को लक्ष्यभाषा में यथासंभव अपने मूल रूप में लाना। दूसरी बात कि अनुवाद के लिए स्रोतभाषा में सामग्री को प्रकट करने के लिए जिस संरचना का प्रयोग है उसके यथासंभव समान अभिव्यक्ति या संरचना की खोज लक्ष्यभाषा में हो। उपर्युक्त परिभाषाओं से यह भी संकेत मिलता है कि विभिन्न उद्देश्यों के अनुरूप अनुवाद की परिभाषाएँ भी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। अनुवाद की उपरोक्त प्रस्तुत परिभाषाओं से अनुवाद के जिन पहलुओं की जानकारी हमें उपलब्ध होती है वे इस प्रकार हैं–

1. सामग्री के साथ प्रस्तुति के ढंग में भी समानता हो।
2. स्रोतभाषा की सामग्री लक्ष्यभाषा में संपूर्णता में प्रकट हो।
3. अनुवाद की प्रक्रिया प्रतिस्थापन, पुनरावृत्ति, स्थानांतरण या परिवर्तन की प्रकृति की होती है।
4. मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में रूपांतरित करने में स्वाभाविकता का निर्वाह अनिवार्यत: हो।
5. लक्ष्यभाषा में व्यक्त विचारों में ऐसी सहजता हो कि वह मूलभाषा (स्रोतभाषा) पर आधारित न होकर स्वयं मूलभाषा होने का एहसास पैदा करे।

इसलिए अनुवाद में एक विशेष प्रक्रिया के द्वारा किसी भाषा में व्यक्त भावों और विचारों को किसी अन्य भाषा में रूपांतरित किया जाता है। इस कार्य में आनूदित भाषा में मूल भाषा की सामग्री के सौंदर्य को इस प्रकार समाहित कर लिया जाता है कि मूलभाषा (स्रोतभाषा) और लक्ष्यभाषा का अंतर इसमें खत्म

हो जाता है। इस प्रकार अनुवाद कला, विज्ञान और शिल्प की विशिष्टताओं से युक्त होता है।

वह तभी अनुवाद कार्य में प्रवृत्त हो, जब वह स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा की प्रकृति का निकट परिचय रखता हो तथा विषय का अच्छा ज्ञाता हो। इस प्रकार लेखन के रूप में अनुवाद को भी देखा जा सकता है, लेकिन यह एक कठिन कार्य है। खासकर सर्जानात्मक अनुवाद जिसमें मुख्यत: साहित्य का अनुवाद शामिल है। लेखक और अनुवाद के कार्य में मूलभूत रूप से अंतर है। किसी भी भाषा के लेखक की कृति का अन्य भाषा में अनुवाद किया जा सकता है। इसमें यह संभव है कि किसी कृति का अुनवाद का स्वरूप अच्छा या गुणवत्तापूर्ण नहीं हो।

अनुवाद के रूप

अनुवाद दो प्रकार का होता है–

(i) शाब्दिक अनुवाद, (ii) भावार्थ अनुवाद।

(i) शाब्दिक अनुवाद–इसके अन्तर्गत भाषा की अभिव्यक्ति को पूर्णत, अर्थत:, अक्षरश: एवं शब्दश: अनुवाद करना होता है। (ii) भावार्थ अनुवाद–इसके अन्तर्गत किसी भाषा की सामग्री को लक्षित भाषा के रूप में अनुवाद किया जाता है। इस तरह के अनुवाद संकुचित तथा विस्तृत दोनों हो सकते हैं, लेकिन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ज्ञान के प्रसार की दृष्टि से अनुवादों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) सम्पूर्ण अनुवाद–सम्पूर्ण अनुवाद के अन्तर्गत पत्रिकाओं के सम्पूर्ण अनुवाद जिसमें मुखपृष्ठ से लेकर अन्तिम पृष्ठ तक का अनुवाद किया जाता है। कुछ पत्रिकाओं में इस तरह के अनुवाद प्रस्तुत किये जाते हैं, जैसे–American Institute of Physics का रूसी भाषाओं का अनुवाद। Soviet Journal of Remote Sensing का रूसी भाषा के प्रत्येक पृष्ठ का अनुवाद। इस तरह के अनुवाद से किसी देश में हो रहे वैज्ञानिक अन्वेषण की सामग्रियों से दूसरे राष्ट्रों एवं भाषाओं के वैज्ञानिकों तथा अन्य राष्ट्रों की वैज्ञानिक अन्वेषण प्रगति से प्रेरणा भी मिलती है। सम्पूर्ण अनुवाद में चयनात्मक दृष्टि से अनुवाद नहीं किया जाता है। पत्रिकाओं के स्तरीय प्रलेखों को ही अनुवाद हेतु महत्वपूर्ण माना जाता है। अनुवाद की ऐसी स्थिति में समय का अन्तर बहुत अधिक होता है। जबकि वैज्ञानिक आलेखों की सामयिकता अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं सूचनाप्रद होती है।

साथ ही अनेक भाषाओं में एक ही साथ अनुवाद करना अत्यन्त कठिन होता है तथा प्रकाशन में भी समस्याएँ आती हैं। परिणामतः आलेखों/ प्रलेखों की माँग के अनुसार सेवा का आयोजन श्रेयष्कर माना जाता है।

(2) तदर्थ अनुवाद–तदर्थ अनुवाद के अन्तर्गत सामान्यतया शीध-पत्रिकाओं में प्रकाशित व्यक्तिगत आलेखों के कुछ चुने हुए प्रलेखों को शामिल किया जाता है। इस तरह के अनुवाद की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं। इस तरह के अनुवाद करने में समय, श्रम व धन की बचत होती है और चयनित अनुवाद किए हुए आलेखों में से उपयोगकर्ताओं द्वारा इच्छित आलेखों के चुनाव करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। लेकिन किस आधार पर आलेखों का चुनाव अनुवाद के लिए किया जाना चाहिए और उसे कौन चुनाव करे, ये विचारणीय प्रश्न होते हैं। उपयोगकर्ताओं के कार्य क्षेत्र के अनुसार सूचना आवश्यकता में भिन्नता होती है तथा जो प्रलेख किसी उपयोगकर्ता के लिए सूचनाप्रद होता है अन्य किसी के लिए अनावश्यक हो सकता है। शैक्षिक वैज्ञानिकों की अनिवार्यता औद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों से अलग प्रकार की हो सकती हैं। अतः माँग के आधार पर सामग्रियों की अनूदित प्रतियाँ सुलभ करना श्रेयस्कर सिद्ध होता है।

अनुवाद का क्षेत्र

मानव वाणी को जो शक्ति भाषा से प्राप्त होती है। उसे वृहदाकार करने की क्षमता अनुवाद में निहित है। अतः हम कह सकते हैं कि वाणी का विराट् रूप ही अनुवाद का क्षेत्र है। वाणी स्वयं में शब्द है, जिसका व्यापकता का कोई रूप नहीं और अन्त-सीमान्त नहीं। स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए वह संसार के हर प्राणी को प्राप्त हुआ है। सामुदायिक भावतन्त्र और आत्मीय व्यवहार-बोध के सम्बन्धों की अनुभूतिक गम्भीरता को समझने के लिए मनुष्यों ने उसे अनेक भाषाओं के परिवेश प्रदान करके अपनी सीमाओं में बांधने की चेष्टा की है, लेकिन मनुष्य की ज्ञान की भूख अनन्त है, भाव-व्यवहार संश्लिष्टता भी निस्सीम है, कैसी भी सीमायें उसे स्वीकार नहीं-भाषाओं की भी नहीं। इसी कारण अनुवाद के ध्रु से उसने उसे भंग कर दिया, जो मुक्त रूप में मनुष्य के साथ, उसके हर परिवेश को धारण करने में सक्षम है, अतः उसका क्षेत्र प्राणी के भावतन्त्र और व्यवहार समुच्चय का विराट प्रतिबिम्ब है। उसके क्षेत्र की अभिव्यंजना उसी में निहित है। अतः जब हम कहते हैं कि अनुवाद का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय है, तो हमारा प्रयोजन इसी आशय का द्योतक है, जो हमने उपर्युक्त रूप से प्रकट किया है।

सोचिये कि आप भूल या संयोग से किसी ऐसे स्थान में पहुँच जाएँ, जहाँ के लोग आपकी बोली को नहीं समझते हों, तो आप और उनका आपस में वार्तालाप कैसे होगा। अत: एक दूसरे की बोली समझने के बिन्दु से ही अनुवाद की आवश्यकता होती है। अत: अनुवाद का सबसे बड़ा क्षेत्र बातचीत का है। एक-दूसरे की बातें समझाने का काम वही कर सकता है जो दोनों की बोलियाँ (भाषायें) जानता हो अर्थात् ऐसे दो व्यक्तियों के बीच, दोनों की बोलियाँ समझने वाला व्यक्ति एक की बात को दूसरे की बोली में अनुवाद करके ही दोनों को उनकी बातें समझा सकेगा। इसको और स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझिये कि जब आंध्र प्रदेश का कोई डॉक्टर केरल के अस्पताल में काम करता है तब उसे केरल के मरीजों की भाषा समझनी पड़ती है। उसे उनकी भाषा मलयालय का अर्थ समझना पड़ता है। अगर वह मलयालम नहीं जानता तो और किसी को मलयालम का अनुवाद तेलुगु में करना पड़ता है। अनुवाद के क्षेत्र इस प्रकार हैं-

(1) बातचीत का क्षेत्र—बातचीत में जब हम अपनी मातृभाषा से भिन्न भाषा में बोलते हैं, तब हम स्वयं अनजाने अनुवाद करते रहते हैं। हम पहले मातृभाषा में सोचते है, फिर उसे मन में ही अन्य भाषा में अनुदित करते हैं। यही अनुदित रूप हमारे मुहँ से निकलता है। यही कारण है कि हम कोई भी अन्य भाषा बोलें, उस पर हमारी मातृभाषा का कुछ-न-कुछ प्रभाव नजर आता है। औसत भारतीय की अंग्रेजी भी इसका अपवाद नहीं है।

(2) पत्राचार—पत्राचार का क्षेत्र अनुवाद मांगता है। पत्राचार व्यापार में, कार्यालय में, न्यायालय में सर्वत्र होता है। जहाँ पत्राचार अपने प्रदेश की भाषा में करने से काम चलता है वहाँ अनुवाद की जरूरत नहीं पड़ती, किन्तु एक ही प्रदेश में कई भाषाएँ बोलने वाले पीढ़ियों से रहते हैं। उनके लिए प्रादेशिक भाषा भी परायी रहती है। जैसे-केरल में तमिल-भाषी और कन्नड़-भाषी काफी संख्या में हैं। उनके लिए केरल की प्रादेशिक भाषा मलयालम का पत्राचार अनुवाद को आवश्यक बना देता है जो व्यापारी बड़ी कम्पनियों से माल मंगाते या उन्हें माल बेचते हैं, उन्हें उन कम्पनियों से पत्राचार कम्पनी की भाषा में करना पड़ता है।

(3) धार्मिक क्षेत्र—धर्म के क्षेत्र में प्राय: सभी देश किसी विशिष्ट भाषा का व्यवहार करते हैं। जैसे-भारत में संस्कृत हिन्दू धर्म की भाषा रही है। बौद्धों के धर्म-ग्रन्थ पालि भाषा में है। ईसाई लैटिन या सिरियक का उपयोग करते है, मुसलमान अरबी का। आम लोग इन धर्म-भाषाओं में कुशल नहीं हो सकते। बहुत कम लोग इनके जानकार होते हैं एतएव, ऐसी धर्म-भाषाओं के पण्डित सामान्य

लोगों में प्रचार के लिए धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद करते हैं। इसी प्रकार धार्मिक संस्थानों से जुड़े हुए लोग, यहाँ तक कि मन्दिरों के आस-पास के दुकानदार भी ऐसी भाषा जानते हैं, जिसे अन्य भाषा-भाषी समझ सकें। वह उसी भाषा में अपनी बातें समझाते हैं, अर्थात् वह अपनी बातों को मन ही मन दूसरी भाषा में अनुवाद करके बोलते हैं। दोनों तरफ की यह नुवाद प्रक्रिया प्रत्येक धर्म के पूजा-स्थलों पर देखी जा सकती है।

(4) न्यायालय—न्यायालयों में अनुवाद अनिवार्य हो जाता है। विशेष रूप से वहाँ, जहाँ किसी विदेशी का वाद न्यायालय में उपस्थित हो या फिर भारत जैसे देश में जहाँ न्यायालयों की भाषा आज भी अंग्रेजी ही मान्य हो। वस्तुतः भाषत में अंग्रेजी भाषा इसलिये मान्य है क्योंकि भारत के विभिन्न प्रदेशों में एक-दूसरे की मातृ-भाषाओं को एक-दूसरे प्रदेश के लोग नहीं समझ पाते, परन्तु दोनों भाषा-भाषी अंग्रेजी समझते हैं, अतः वह अपनी बातों का अनुवाद पहले मन ही मन अंग्रेजी में करते हैं और तब आपस में अंग्रेजी में बातें करते हैं अर्थात् पहले वह दोनों ही अपनी बातों का अंग्रेजी में अनुवाद करते हैं तब बोलते हैं। न्यायालय के कर्मचारी, वकील और प्रार्थी लोग अदालत के अंग होते हैं। इसी कारण आज भी भारतीय अदालतों की भाषा अंग्रेजी बनी हुई है। इनमें मुकदमों के लिए आवश्यक कागजात अक्सर प्रादेशिक भाषा में होते हैं, मगर पैरवी अंग्रेजी में होती है।

(5) कार्यालयों में—हमारे देश के अधिकांश कार्यालयों में भाषा अंग्रेजी है। मुश्किल से पंचायत व गाँवों के स्तर पर प्रादेशिक भाषा का व्यवहार किया जाता है। आम लोगों को अपनी अर्जियाँ तक अंग्रेजी में लिखनी पड़ती हैं। यहाँ से अनुवाद की प्रक्रिया शुरू होती है। पुलिस, मजिस्ट्रेट जैसे अधिकारियों के कार्यालयों में अनुवाद का जोर रहता है। देवस्वम, रजिस्ट्रेशन जैसे विभागों में निचले स्तर पर प्रादेशिक भाषा काम देती है और ऊपरी स्तर पर अंग्रेजी। चर्चित विषय प्रान्त का रहता है। इसलिए अनुवाद का प्रसंग बराबर उठता है।

(6) शिक्षा का क्षेत्र—शिक्षा का क्षेत्र अनुवाद के बिना आगे नहीं बढ़ पाता। आधुनिक युग में विज्ञान, समाज-विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित आदि बीसियों विषय सीखे और सिखाये जाते हैं। इनके उत्तम ग्रन्थ अंग्रेजी ही नहीं, अन्य विदेशी भाषाओं में भी लिखे हुए हैं। उनका अनुवाद किए बिना ज्ञान की वृद्धि नहीं हो पाती। भारतीय भाषाओं को अध्ययन का माध्यम बनाने के बाद इसकी अनिवार्यता बढ़ी है। यह अनुवाद भारत में ही हो, ऐसी बात नहीं है। जिन अंग्रेजों या रूसियो

को भारतीय साहित्य का ज्ञान पाना है उन्हें भारतीय साहित्य का अनुवाद अंग्रेजी या रूसी में प्राप्त करना पड़ता है।

(7) सांस्कृतिक सम्बन्ध–सांस्कृतिक सम्बन्धों के लिए तो अनुवाद परम आवश्यक क्रिया है, क्योंकि किसी भी देश को अपनी संस्कृति और कला का परिचय अन्य देश के निवासियों को उन्हीं की भाषा में दिया जा सकता है। यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक देशवासी पड़ोसी व दूर के देशों की भाषाएँ समझे। ऐसी समस्या को सुलझाने का उपाय अनुवाद ही है।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिक (टैक्नोलॉजी) आज सबसे अधिक अनुवाद माँगने वाले क्षेत्र हैं। इसके दो पहलू होते हैं। एक तो यह कि विकासशील राष्ट्रों को वैज्ञानिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के आविष्कारों तथा नई गतिविधियों की जानकारी पाने के लिए उतावले रहते हैं। उनका अन्य भाषा-ज्ञान बहुत सीमित होता है। वे तभी उपयुक्त जानकारी पा सकते हैं जब उनकी जानी हुई भाषा में अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हो। वर्तमान युग में अंग्रेजी भाषा एक प्रकार से सभी राष्ट्रों में समान रूप से एक सम्पर्क भाषा का रूप ले चुकी है। अत: सभी विश्व-भाषाओं के महत्व को कम न होने देने के लिए, अपने यहाँ विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान को अपनी ही भाषा में उपलब्ध कराते हैं। ऐसी अवस्था में विदेशी भाषाओं में लिखी गयी ऐसी पुस्तकों का अनुवाद वह अपनी मातृभाषा में उपलब्ध कराते हैं। इसीलिये अंग्रेजी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य कम होता जा रहा है। हालांकि राजनीतिक परिदृश्य में उसी का बोलबाला है। वैज्ञानिक अनुसंधान में रूस के अग्रसर होने के कारण अब रूसी भाषा को भी समान महत्व दिया गया है। अमेरिका व इंग्लैण्ड में रूसी ग्रन्थों का अनुवाद लोकप्रिय हो चला है।

(9) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी–विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के गहन अनुसंधान के क्षेत्र में तो ससारा लेखन कार्य उन्हीं भाषाओं में किया जाता है। इसीलिए इनके छात्र विदेशी भाषा सीखने को मजबूर होते हैं। वे विदेशी भाषा की सामग्री अपनी परिचित भाषा में अनुदित कर लेते हैं।

(10) संचार माध्यम–संचार के माध्यमों में अनुवाद का प्रयोग अनिवार्य होता है। इनमें मुख्य है समाचार-पत्र, रेडियों एवं दूरदर्शन। ये अत्यन्त लोकप्रिय है और हर भाषा में इनका प्रचार बढ़ रहा है। प्रादेशिक भाषाओं में समाचार-पत्र समाचारों के लिए सरकारी सूचना, न्यूज एजेंसियों की दी हुई सामग्र, प्रादेशिक

संवाददाताओं की डाक आदि पर निर्भर करते हैं। इनमें प्रादेशिक भाषाओं में सीमित सामग्री ही प्राप्त होती है।

उदाहरण के लिये अनुवाद के द्वारा रेडियो सामग्री तैयार की जाती है एवं उसका प्रसारण होता है।

(11) साहित्य–साहित्य अनुवाद के लिए सबसे उर्वर क्षेत्र प्रमाणित हो चुका है। प्रतिभा देश व भाषा की दीवार नहीं मानती, किन्तु अनुवाद के जरिए ही हम अन्य भाषा की प्रतिभाओं को पहचान सकते हैं। प्राचीन भाषाओं के वाङ्मय को आधुनिक युग के पाठक अनुवाद के सहारे ही समझ पाते हैं। हमारे ही देश में कुछ शताब्दियों पहले तक संस्कृत साहित्य खूब पढ़ा जाता था और बहुत लोक संस्कृत जानते थे। अब आधुनिक युग की भाषाओं का जोर है और संस्कृत जानने वाले कम। इसलिए अनुवाद से ही हम संस्कृत की सरसता ग्रहण करते हैं। एक सीमित क्षेत्र की भाषा में लिखे हुए उत्तम साहित्य-ग्रन्थ संसार के व्यापक क्षेत्रों की भाषाओं में जब अनुदित होते हैं तब उनका प्रचार व उनके लेखकों का सम्मान बढ़ता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के बंगला छन्द अगर अंग्रेजी में अनुदित करके प्रकाशित न किए जाते तो उन्हें नोबेल पुरस्कार शायद ही मिलता। नोबेल पुरस्कार अब ऐसी भाषाओं की रचनाओं को भी सम्भव हो सका है जो अत्यन्त सीमित प्रदेश में व्यवह्रत होती है।

(12) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अनुवाद का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों का संवाद आशु अनुवादक की सहायता से ही होता है। सारे प्रमुख देशों में प्रमुख राष्ट्रों के राजदूत रहते हैं और उनके कार्यालय भी होते हैं। राजदूतों को कई भाषाएँ बोलने का अभ्यास कराया जाता है। फिर भी देशों के प्रमुख प्रतिनिधि अपने विचार अपनी ही भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुवाद की व्यवस्था होती है। जब कई भाषाओं के वक्ता एक सम्मेलन में अपनी-अपनी भाषा में विचार व्यक्त करते हैं तब उनके अनुवाद की व्यवस्था कठिन होती है तथापि अनुवाद की व्यवस्था यथासम्भव की जाती है। इसमें काफी प्रगति भी हुई है। इसके द्वारा देशों में मित्रता बढ़ रही है।

हिन्दी साहित्य के अनुवाद का सैद्धान्तिक पक्ष

किसी भी भाषा के साहित्य का दूसरी भाषा में अनुवाद कार्य मूल रूप में एक सांस्कृतिक सेतु निर्माण का कार्य है, जो अन्य सभी प्रकार या विषयों के अनुवाद कार्य की दक्षता, कौशल तथा भावपरक सांस्कृतिक चित्रांकन का

परिचय जो साहित्यिक अनुवाद से प्राप्त होता है, वह अन्य विषय-परक या विधि-व्यापारिक अनुवाद कार्य से प्राप्त नहीं होता, क्योंकि साहित्य किसी भी भाषा, समाज तथा सांस्कृति का मांसल स्वरूप होता है। जब आदमी आन्नद में होता है, तो हर्षित होकर गाता है, नाचता है और जब उसके ह्रदय में पीड़ा होती है, तब वह उसकी कसक और वेदना को गीतों में ही प्रवाहित करता है और जब वह मानवीय दु:ख-सुख के साथ स्वयं संचरित होता है, तो वह मानव-नीवन को कथा-कहानी के ताने बाने में बुनता है, सामाजिक चरित्र को संस्कृति के परिवेश में सजाता है, नीति को उपेदेशों की सीख से रंगता है तथा दर्शन को अध्यात्म के आकाश में विहार कराता है। इसी को हम साहित्य कहते हैं, जिसे मनुष्य चाहे किसी भी बोली के प्रसाद में आतिथ्य प्रदान करे। निस्सन्देह जिस प्रासाद में भी उसे आतिथ्य प्रदान किया जाता है, उसको भी वह अपनी गरिमा से प्रभावित करने से पीछे नहीं रहता। परन्तु आतिथ्य उसके चाल-ढाल को जितनी गम्भीरता से समझकर उसका सत्कार करता है, वह उसके प्रासाद को वैसी ही प्रभा देता है, यह बात भी असत्य नहीं है। इस आतिथ्य को ही हम **अनुवाद** कहते हैं, अंग्रेजी में **'ट्रांसलेशन'** कहते हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' उपन्यास का उदाहरण देकर लेखिका ने अनुवाद की कठिनाइयों को स्पष्ट करने की चेष्टा की है, जो उनके कथन में मूल रूप में निहित है, लेकिन उक्त कथन में परोक्ष रूप से यह बातें भी अन्तर्निहित है-

(1) मैला आँचल जैसी कृतियाँ जो किसी प्रदेश की सांस्कृतिक जटिलता को प्रदर्शित करती हैं, वह आपने आप में एक अनुकरणी कला की प्रतीक भी होती हैं। यदि ऐसी कृतियों का अनुवाद दूसरी भाषाओं में होता है तो उन भाषा-भाषियों को संसार के कोनों में पड़े हुए सांस्कृतिक मण्डलों का परिचय प्राप्त होता है, जिसकी वर्तमान में जब कि संसार को जिसकी गतिशीलता चरम पर है, ज्ञान होना चाहिए।

(2) स्रोत-भाषा को भी सामान्य बनाने वाली कृतियाँ दूसरी भाषाओं में पहुँचकर ज्ञान का तो स्रोत उन तक ले ही जाती है, साथ ही उस भाषा को भी कला की दृष्टि से नया संदेश देती है।

(3) साहित्यिक कृतियाँ सामान्य जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करती हैं, यह बात न तो प्रशासनिक प्रबन्धकीय, वैज्ञानिक या तकनीकी भाषा में होती है। विशेष विषयों से सम्बन्धित भाषा, केवल विषय-विशेषज्ञों के समझने

की वस्तु होती है। विशेष विषयों की भाषा में प्रायः बहुत से बाहरी भाषाओं के शब्दों का समावेश होता है, जबकि साहित्यिक कृतियों में उनका प्रयोग प्रसंगवश ही पाया जाता है।

उक्त कथन में हमें साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के सम्बन्ध में जिन सत्य तथा समस्याओं का ज्ञान होता है, वह है-

(1) कि कभी भी कोई बात अपने मौलिक चलन, गहराई य आकार में, उसकी स्रोत-भाषा में भी अपनी प्रकृतिवश अन्तरित नहीं का जा सकती तो अन्य भाषा में तो उसके यथार्थ का ग्रहण करना कैसे सम्भव है?

(2) कि एक भषा से दूसरी भाषा में किसी कृति के अनुवाद कार्य में या तो कुछ छोड़ना होता है या कुछ जोड़ना होता है।

(3) कि कोई भी अनुवाद अधिक से अधिक अति-समानता की निकटता ही प्राप्त कर सकता है, स्रोत की मौलिक अभिव्यंजना को नहीं। इसका मुख्य कारण भाषाई तथा सांस्कृतिक आधारों की भिन्नता है।

(4) कि अनुवादक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह स्रोत-भाषा के भाव-प्रभाव, से जो अनुभूति स्रोत-भाषा के पाठक को होती हो वही अनुभूति लक्ष्य-भाषा के पाठक को भी कराये, परन्तु ऐसा हो पाना असम्भव ही है। इसका कारण दोनों भाषाओं के बीच शब्द प्रभावी भाव असंतुलन होना है तथा वाक्य संरचना की विभिन्नता भी है।

(5) कि उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त शब्दों का उच्चारण ध्वनि प्रभाव, भाषाओं का कुल साम्य (जैसे यूरोपियन भाषायें समान कुल की भाषाएँ हैं, हिन्दी और अंग्रेजी या अन्य यूरोपीय भाषायें विभिन्न कुल-प्रकृति की भाषाएँ हैं) और असाम्य भी अनुवाद कार्य की समस्यायें भी अनुवाद कार्य में स्रोत-भाषा की मूल भावना को लक्ष्य-भाषा में लाये जाने में बाधक होती हैं। इससे शब्दों की उच्चारणीयता, शारीरिक रचनात्मकता, शब्द रचनात्मकता तथा वाक्य रचनात्मकता के तत्त्व निहित हैं।

फिर भी अनुवाद कार्य एक मानवीय आवश्यकता ही नहीं अनिवार्यता है, क्योंकि यह भाषाओं से ऊपर मानवीय भावाभिव्यक्ति के स्तरों पर मनुष्यों को निकट ला देता है तथा पहचान देता है, पारस्परिकता के नये आधारों की रचना करता है। वस्तुतः साहित्य चाहे किसी भाषा में हो उसमें भाषाई तत्त्वों की बाधाओं से परे एक ऐसा तत्त्व है जिसके कारण मनुष्य, मनुष्य के अंतरंग को स्पर्श करना चाहता है। वह एक भाषा को दूसरी भाषा में अनुवाद करते हुए भले ही कुछ

विभिन्नता प्रकट करे, लेकिन वह एक स्थूल प्रभाव तथा दृष्टि देने के लिए अपना सर्वोपरि महत्व रखता है।

वास्तव में अनुवाद की प्रकृति के आधार पर ये दो ही भेद होते हैं और सभी अनुवाद इन दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत हैं। फिर भी इनके प्रचलित अन्य रूप-भेद इस प्रकार से हैं-

(1) शब्दानुवाद—इसमें लक्ष्य-भाषा की प्रकृति को ध्यान में रख कर स्रोत-भाषा के अवतरण का शब्दशः अनुवाद किया जाता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के अधोलिखित वाक्य का अनुवाद दृष्टव्य है-

He is going to purchase material from the market.

वह है जा रहा को खरीदने सामान से बाजार

अथवा

वह जा रहा है खरीदने को सामान बाजार से।

इस प्रकार के अनुवाद को "मक्षिका स्थाने मक्षिकापातः" मक्खी पर मक्खी मारना कहा जायेगा। कभी-कभी ऐसा अनुवाद उपहास का विषय भी बन जाता है। जैसे हिन्दी के इस वाक्य-वह हवा खाने गया है—का अंग्रेजी अनुवाद-He has gone to eat air.

परन्तु इस प्रकार का अनुवाद विज्ञान और तकनीकी विषयों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

(2) भाषानुवाद—इसमें स्रोत-भाषा की रचना के काव्य को नहीं अपितु उसमें निहित भाव अथवा अभिप्राय को महत्व दिया जाता है। अनुवाद प्रक्रिया के दो पक्षों-अर्थग्रहण और सम्प्रेषण में यहाँ सम्प्रेषण को ही गौरव दिया जाता है। इसे इस प्रकार से भावात्मक सम्प्रेषण कहा जा सकता है।

अनुवाद का यह भेद ललित साहित्य के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होता है क्योंकि अनुवादक इसमें अपनी सर्जकशक्ति का पूरा-पूरा उपयोग कर सकता है। इसकी एक बहुत बड़ी और उल्लेखनीय विशेषता यह रहती है कि मूल लेखक द्वारा लाये गये सौन्दर्य की अनुवाद में पूर्ण रक्षा की जा सकती है।

(3) छायानुवाद—इस अनुवाद में अनुवादक मूल से बंध कर नहीं चलता अपितु उसका केवल प्रभाव ग्रहण करता है। यहाँ तक कि रचना में आये व्यक्तियों और स्थानों के नामों का भी देशीयकरण कर लिया जाता है। मूल रचना की अनूदित रचना में छाया रहने के कारण ही इसे अनुवाद नाम दिया जाता है।

(4) व्याख्यानुवाद—इसमें स्रोत-भाषा की मूल सामग्री की लक्ष्य-भाषा में व्याख्या विस्तृत रूप में की जाती है। फलतः इसमें अनुवादक का व्यक्तित्त्व, पाण्डित्य, शैली, अभिव्यक्ति कौशल आदि प्रतिबिम्ब होते हैं। वस्तुतः यहाँ अनुवादक व्याख्याता का रूप ले लेता है। लोकमान्य तिलक द्वारा 'गीता रहस्य' शीर्षक से लिखा गया 'श्रीमद्भगवद्गीता' का अनुवाद इसका उदाहरण है।

(5) सारानुवाद—किसी के भाषण, प्रवचन अथवा व्याख्यान के अनावश्यक अंशों को छोड़कर केवल उपयोगी सामग्री का सार रूप में अनुवाद सारानुवाद करना कहलाता है। अपनी संक्षिप्पता, सरलता और स्पष्टता के कारण अनुवाद का यह रूप अत्यन्त उपयोगी अवश्य सिद्ध होता है, परन्तु इसमें अनुवादक के विवेक की परीक्षा होती है। यदि अनुवादक त्याग और ग्रहण में विवेक का प्रयोग नहीं कर पाता तो सम्भव है कि उपयोगी छूट जाये और अनुपयोगी आ जाये। लम्बे भाषणें और रिपोटों के अनुवाद के लिये सारानुवाद की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है।

(6) वार्तानुवाद—आजकल विज्ञान के स्थान और समय पर विजय प्राप्त कर विश्व के देशों को एक-दूसरे के समीप ला दिया है। दो भिन्न देशों के विशिष्ट व्यक्ति जब किसी एकसमान हित के विषय पर बातचीत करने के लिए आपसे में मिलते हैं तो दोनों एक-दूसरे की भाषा से अपरिचित होते हैं। उन दोनों की भाषा समस्या को सुलझाने के लिये अनुवाद अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह एक की अपनी भाषा में कही बात को दूसरी की भाषा में अनूदित कर उसे बताता है। यहाँ अनुवादक को 'दुभाषिया' नाम दिया जाता है।

आजकल विदेशी राजनयिकों और विद्वानों के दूसरे देशों में अथवा एक ही देश के राजनेताओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जनता को किये गये सम्बोधनों के भी मूल कथन के साथ-साथ अनुवाद करने की प्रथा चल पड़ी है। इसे आशु-अनुवाद नाम भी दिया जाता है।

(7) रूपान्तरण—स्रोत-भाषा के कथ्य को लक्ष्य में प्रस्तुत करते समय उसके रूप में अन्तर ला देने अथवा उसके रूप को परिवर्तित कर देने (Change in form) का नाम ही रूपान्तरण है। इसमें अनुवादक स्रोत-भाषा की सामग्री की कोई भी विधा-मूल से सर्वथा भिन्न देने को स्वतन्त्र होता है। आजकल अनेक उपन्यासों तथा कहानियों के कथ्य को नाट्यरूप में परिवर्तित करके दूरदर्शन पर प्रदर्शित करने की एक परम्परा चल पड़ी है। यह सब रूपान्तरण है। कविता को कहानी (गद्य रूप) देना तथा श्रव्य विधा को दृश्यविधा का रूप देना रूपान्तरण है। यह विधा आज बहुत ही लोकप्रिय है।

(8) आदर्श अनुवाद–स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के कथ्य में अधिकतम-साम्य जिससे कि लक्ष्य-भाषा की अभिव्यक्ति स्रोत-भाषा की ही अभिव्यक्ति लगे। इस प्रकार दोनों के कथ्य में निकटतम सम्बन्ध का होना आदर्श अनुवाद कहलाता है। इसमें अनुवादक का यही प्रयास रहता है कि उसके अनुवाद में सहजता, सरलता और प्रवाह के अतिरिक्त सौन्दर्य का इस प्रकार समावेश हो कि पाठक उसकी रचना से मूलरचना के पाठक के समान ही आनन्द-लाभ कर सके। इस दृष्टि से आदर्श अनुवाद का आदर्श वाक्य ही यही होता–"Nothing to add a Nothing to leave" अर्थात् अपनी ओर से कुछ जोड़ना नहीं और मूलकथ्य की किसी भी बात को छोड़ना नहीं। पश्चिमी विद्वानों ने आदर्श अनुवादक की सिरिंज की सुई से तुलना की। जिस प्रकार यह सुई शीशी से इंजैक्शन की दवा लेकर रोगी के शरीर में ज्यों-की-त्यों पहुँचा देती हैं, उसी प्रकार स्रोत-भाषा के मूलकथ्य को लक्ष्य-भाषा में ज्यों-का-त्यों पहुँचाने वाला अनुवाक की आदर्श अनुवादक होता है। इसमें उसकी भूमिका तटस्थ दर्शक की होती है। उसे क्या और कैसे कहा गया है, इससे कुछ लेना-देना नहीं होता, उसे तो केवल ज्यों का त्यों उगलना होता है और इसी में उसकी सफलता और विशिष्टता निहित रहती है।

सारानुवाद

मानव संस्कृति में आवश्यकतानुसार अनुवाद कार्य कई प्रकार से आरम्भ हुआ और मूलनिष्ठ अनुवाद कार्य से संभवत: सारानुवाद ही अनुवाद का प्रथम रूप रहा होगा। सारानुवाद का अर्थ तो स्वयं इस शब्द में ही निहित है, अर्थात् स्रोत-भाषा के लेख के संक्षिप्त रूप का अनुवाद, परन्तु उसके ऐसे संक्षेप का जो मूल में वर्णित सभी बिन्दुओं पर समुचित प्रकाश डालता हो। सारानुवाद में स्रोत के समग्र मर्म बिन्दुओं को समेटते हुए उसका निरूपण दूसरी भाषा में करना बहुत बाद में आई होगी, तब जब भाषा का प्रयोग आलेखन के रूप में आरम्भ हुआ। उससे पहले भी दो विभिन्न बोलियाँ बोलने वाले लोग जब मिलते होंगे तो कैसे बात करते होंगे, इस कल्पना के प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि ऐसी भेंट-वार्ता को समझने तथा समझाने के माध्यम संकेत रहे होंगे, परन्तु धीरे-धीरे संकेत संक्रमण के साथ ऐसे दोनों ही विभिन्न बोलियों के बोलने वालों ने एक दूसरे की भाषा को संकेतों से तालमेल बनाकर ही सीषा होगा। तत्पश्चात् जब भी ऐसे दो भाषाओं के जानकारों को कभी एक-दूसरे की बातें एक-दूसरे की बोली

से अनजान दो लोगों के बीच उपस्थित होने का अवसर मिला होगा तो उन्होंने उन दोनों को एक-दूसरे की बातें एक दूसरे की भाषा के अनुवाद करके ही समझाई होंगी। ऐसी स्थिति में आवश्यक नहीं था कि ऐसे माध्यम एक-दूसरे की बातें, एक-दूसरे को बताते समय बातों के हर बिन्दु पर ही प्रकाश डालने की आवश्यकता को समझते हों। वह भी एक-दूसरे को बताते समय बातों के हर बिन्दु पर ही प्रकाश डालने की आवश्यकता को समझते हों। वह भी एक-दूसरे को एक-दूसरे की बातें सरसरी तौर से ही समझाते रहे होंगे। अत: ऐसे लोग ही इस संसार में पहले अनुवाद कहे जाने योग हैं। कालान्तर में इन माध्यमों की आवश्यकता और बढ़ी। शासकों के भी दरबारों में दूसरे भाषा-भाषी आते होंगे तो दो भाषा जानने वालें की विशेष पूछ रही। उस समय सारानुवाद का रूप कुछ बदला होगा और वह उन तत्त्वों को भी वाहक बना होगा जिनकी हम सारानुवाद से आज अपेक्षा करते हैं। लेखन-कला के अभ्युदय के बाद सारानुवाद के स्वरूप का और भी सुगंठित होना स्वाभाविक था ही। एक लम्बी बात को उसके हर पहलू पर विचार करते हुए समझना, फिर उसे उसके हर पहलू के मर्म सहित दूसरी भाषा में प्रकट करना सारानुवाद ही था। मानव जाति का विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के साथ होने वाले संक्रमण तथा सम्मिलन ने अनुवाद की रूपरेखा सारानुवाद के रूप में ही रची।

भाषाओं के परिपक्वता तथा राजकाज में प्राप्त प्रतिवेदनों को पूरी तरह न पढ़ पाने, परन्तु उनको उनके सम्पूर्ण रूपों में समझ लेने की क्रिया का कारक सारानुवाद ही बना। निश्चित रूप से किसी भी आलेख का दूसरी भाषा में अनुवाद इसी क्रिया के समानान्तर रूप में अग्रसर हुआ। इस व्यावहारिक स्थिति के आ जाने के बाद ग्रन्थों के अनुवाद कार्य का आविर्भाव हुआ। मनुष्य की ज्ञान-पिपासा ने दूसरी भाषाओं की रचनाओं को टटोला और उनके अनुवाद भी किये तथा सारानुवाद भी।

कभी आवश्यकतानुसार किसी पूरे आलेख को समझने की जिज्ञासा होती है तो कभी उसके सार को समझ लेने से ही काम चल जाता है। प्राय: ऐसा सदा से होता रहा है तथा आज भी होता है। प्रशासनिक कार्य-व्यवहार में तो यह एक नित्य का ही कार्यक्रम है। जब किसी अधिकारी को अपने सामने रखी पूरी थीसिस को पढ़ लेने का समय नहीं होता, तो वह उसके प्रपत्रों के सारानुवाद की अपेक्षा करता है। यह कार्य छोटे स्तर से लेकर मंत्रिमण्डलीय स्तर तक होता है। बड़ी-बड़ी पुस्तकों के संक्षिप्त सारानुवाद भी बाजार में देखे जाते हैं।

सारानुवाद को पूरी तरह आशु कार्य भी नहीं समझना चाहिए, लेकिन आशुकार्य के रूप में यह वर्तमान संचार-संकृति में बहुत आता है। प्राय: समाचार-पत्रों में राजनीतिज्ञों, नेताओं, धर्मोपदेशकों के भाषण, उपदेशों-प्रवचनों आदि के सारानुवाद ही प्रकाशित किये जाते हैं, जो शीघ्रातिथिघ्र संवाददाताओं द्वारा संचार माध्यमों को उपलब्ध कराये जाते हैं। प्राय: एक दूसरे की भाषा से अनभिज्ञ राजनयिकों, राजनीतिज्ञों और नेताओं के सम्मेलनों में उनके वार्तालाप का सारा दारोमदार उन दोनों की भाषाओं के जानकार माध्यमों, जिन्हें दुभाषिया कहा जाता है, पर होता है। यह पूरा आशु अनुवाद होता है, जिसमें अनुवादक की जरा-सी असावधानी अर्थ का अनर्थ कर सकती है।

प्राय: आजकल बहुपृष्ठी पुस्तकों के संक्षिप्त अर्थात् **एब्रिज्ड** संस्करण होने लगे हैं। इन्ही संक्षिप्तों का अनुवादीकरण भी सारानुवाद ही होता है। ऐसे अनुवाद प्राय: पाठ्य पुस्तकों के रूप में विद्यार्थियों को भी पढ़ाये जाते हैं। प्राचीन काल के माहकाव्य, धार्मिक ग्रन्थों के भी सारानुवादित संस्करण किये गये हैं। आधुनिक युग एक महाव्यस्त युग है, इसमें महाकाय ग्रन्थों को पढ़ने और समझने का समय बहुत कम लोगों के पास ही होता है, अत: सारानुवादों को पसन्द किया जाता है। सारानुवाद में स्रोतकृति के मूल भावों की रक्षा करना अभीष्ट होता है, जो एक कठिन कार्य हैं। निश्चित रूप से अनुवादक द्वारा मूल विवरण के मुख्य बिन्दुओं की अवहेलना नहीं का जा सकती। कई बार मूल पाठ में मुहावरे, लोकोक्तियों, सूत्रवाक्यों का प्रयोग पाया जाता है। अनुवादकों को इनकी रक्षा करने में प्राय: कठिनाई होती है क्योंकि इनकी समभावी लोकोक्तियाँ, मुहावरे, सूत्र आदि लक्ष्य-भाषा में नहीं होते। इसके अतिरिक्त भले ही कोई अनुवादक किसी ग्रन्थ, वचन, भाषण आदि का सारानुवाद कर रहा हो, लेकिन उसे अनुवाद कार्य में अपेक्षित विषय बन्धन से मुक्त होने की स्वतन्त्रता नहीं होती। कहीं-कही अनेक विवरण ऐसे होते हैं, जिनको अनुवादक भावानुवाद द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध करता है, परन्तु ऐसे स्थलों को भावप्रवाही बनाये रखना उसका कर्त्तव्य होता है। इसी कारण हम सारानुवाद को स्रोत विषय की अवयवी रूपरेखा भी कह सकते हैं।

साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में होने वाली समस्याएँ

साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के सम्बन्ध में जिन सत्य तथा समस्याओं का ज्ञान होता है, वह है–

(1) कि कभी भी कोई बात अपने मौलिक चलन, गहराई या आकार में, उसकी स्रोत-भाषा में भी अपनी प्रकृतिवश अन्तरित नहीं की जा सकती तो अन्य भाषा में तो उसके यथार्थ का ग्रहण करना कैसे सम्भव है?

(2) कि एक भाषा से दूसरी भाषा में किसी कृति के अनुवाद कार्य में या तो कुछ छोड़ना होता है या कुछ जोड़ना होता है।

(3) कि कोई भी अनुवाद अधिक-से-अधिक अति-समानता की निकटता ही प्राप्त कर सकता है, स्रोत की मौलिक अभिव्यंजना को नहीं। इसका मुख्य कारण भाषाई तथा सांस्कृतिक आधारों की भिन्नता है।

(4) कि अनुवादक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह स्रोत-भाषा के भाव-प्रभाव से जो अनुभूति स्रोत-भाषा के पाठक को होती है, वही अनुभूति लक्ष्य-भाषा के पाठक को भी कराये, परन्तु ऐसा हो पाना असम्भव ही है। इसका कारण दोनों भाषाओं के बीच शब्द प्रभावी भाव असंतुलन होना है तथा वाक्य संरचना की विभिन्नता भी है।

गद्य अनुवाद तथा पद्य अनुवाद से आशय

गद्यानुवाद—मूल गद्य का गद्य में अनुवाद कहलाता है। प्रायः सभी भाषाओं में पद्य के अर्थ को भली प्रकार समझने के लिए उसका गद्य अनुवाद किया जाता है। इसे अंग्रेजी में `Prose-Order अर्थात् पद्य को गद्य की व्यवस्था देना कहा जाता है। हिन्दी में 'अन्वय' नाम दिया जाता है, परन्तु यहाँ गद्यानुवाद से अभिप्राय एक भाषा के गद्य (प्रोज) की दूसरी भाषा में गद्य में प्रस्तुति है। अनुवाद का यह रूप आज सर्वाधिक प्रचलित है।

पद्यानुवाद—छन्दों में निबद्ध और गये रचना ही पद्य कहलाती है। किसी एक भाषा के पद्यों का दूसरी भाषा के पद्यों में ही अनुवाद प्रस्तुत करना, छन्दोबद्धता का निर्वाह करना, पद्यानुवाद कहलाता है। **मैथ्यू अर्नाल्ड** के 'लाइट ऑफ एशिया' का आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'बुद्धचरित' के रूप में अनुवाद पद्यानुवाद का सुन्दर उदाहरण है। **श्रमद्भगवदगीता, मेघदूत और गीत गोविन्द** जैसे संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी में ही पद्यानुवाद उपलब्ध हैं।

साहित्य तथा साहित्येतर अनुवाद की समस्याएँ

भिन्न-भिन्न आधारों पर अनुवाद में भिन्न-भिन्न भेद किए जा सकते हैं, लेकिन मूलतः अनुवाद के दो प्रकार होते हैं—साहित्यिक अनुवाद व साहित्येतर

अनुवाद। इन दोनो प्रकार के अनुवादों में कुछ भूलभूत अंतर हैं–यदि भाव और शब्दपरक अनुवाद के अनुपात को देखा जाए तो साहित्य में भावपरक अनुवाद की मात्रा बहुत अधिक व शब्दपरक अनुवाद की मात्रा बहुत कम या शून्य होती है, साहित्येतर अनुवाद में ठीक इसका विपरीत होता है। साहित्यिक अनुवाद में मूल शब्दों की हानि होने की संभावना प्रबल होती है जबकि साहित्येतर विषयों में आमतौर पर ऐसा नहीं होता है।

दोनो ही तरह के अनुवाद भिन्न-भिन्न स्तरों पर अनुवादकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की चुनौतियां और समस्याएं उत्पन्न करते हैं। इनमें से कुछ समस्याओं का विश्लेषण हम आगे करेंगे। सबसे पहले साहित्य अनुवाद की समस्याएं।

साहित्य अनुवाद व उससे जुड़ी समस्याएं

स्रोत भाषा में लिखित साहित्य को लक्ष्य भाषा में अनुवाद करने को साहित्यिक अनुवाद कहते हैं। साहित्य की विधाओं में कविता, लघुकथा, कहानी, उपन्यास, अकांकी, नाटक, प्रहसन(हास्य), निबंध, आलोचना, रिपोर्ताज, डायरी लेखन, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, गल्प (फिक्शन), विज्ञान कथा (साइंस फिक्शन), व्यंग्य, रेखाचित्र, पुस्तक समीक्षा या पर्यालोचन, साक्षात्कार शामिल हैं। साहित्यिक कृतियों का अनुवाद, सामान्य अनुवाद से उच्चतर माना जाता है। साहित्यिक अनुवादक कार्य के सभी रूपों जैसे भावनाओं, सांस्कृतिक बारीकियों, स्वभाव और अन्य सूक्ष्म तत्त्वों का अनुवाद करने में भी सक्षम होना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यिक अनुवाद वास्तव में संभव नहीं हैं।

दो संस्कृतियों के बीच अनुवाद रूपी पुल के निर्माण में साहित्यिक अनुवाद की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसका सीधा सा कारण यह है कि किसी भौगोलिक क्षेत्र का साहित्य उस क्षेत्र की संस्कृति, कला और रीतियों का प्रतिनिधित्व करता है। कहा भी गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। बस यही वह चीज है जो साहित्य अनुवाद को बेहद उत्तरदायी और कठिन कर्म बना देती है। किसी भी एक साहित्यिक कृति का उसकी मूल भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय कितनी ही सावधानियां बरतनी पड़ती हैं। ये सभी सावधानियां सांस्कृतिक भिन्नताओं के चलते समस्याओं का रूप ले लेती हैं। क्योंकि सांस्कृतिक भिन्नता को समाप्त करने के लिए भाषा को मूल रचना की भाषा में व्यक्त प्रतीकों, भावों और उन अनेक विशेषताओं को सटीक तरीके से

लक्ष्य भाषा में उतारना होता है और साथ ही यह ध्यान रखना होता है कि लक्ष्य भाषा में उतरी कृति पढ़ने वाले को सहज और आत्मीय लगे।

हम सभी समझ सकते हैं कि यह आसान नहीं है, कारण बहुत सारे हैं, आइये उनकी विवेचना करते है–

काव्यानुवाद की समस्याएं–काव्यानुवाद एक प्रकार का भावानुवाद है जिसे अधिकांशत: कवि ही करते हैं, क्योंकि इसके लिए कवि की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। इसी कारण से तटस्थता बनाए रखना एक बड़ी समस्या हो जाती है। काव्य में शब्द के स्थान पर प्रतीकों का उपयोग बहुतायत में होता है। इस संकृति के प्रतीक को दूसरी संस्कृति के प्रतीक के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है कारण सांस्कृतिक भिन्नता है।

उदाहरण के लिए गंगा नदी पर लिखी किसी कविता का अंग्रेजी अनुवाद करते समय हमको इंग्लैंड की संस्कृति में गंगा जैसी पवित्र और मान्य नदी का प्रतीक खोजना होगा। अन्यथा गंगा के प्रतीक को अगर वैसे ही उपयोग किया गया तो लक्ष्य पाठक को भारत में गंगा की महत्ता को अलग से समझाना होगा।

इसी प्रकार से यह कतई आवश्यक नहीं है हिन्दी में "चरण कमल बंदौ हरिराई" में जिस तरह से चरण को कमल की कोमलता का प्रतीक माना गया है वैसा किसी अन्य यूरोपीय या भारतीय भाषाओं में भी हो।

इस सब के अलावा छंदबद्धता, बिम्ब विधान, कल्पना, मधुरता, लय, संरचना, अलंकारादि भी काव्यानुवाद को जटिल कर समस्याएं पैदा करते हैं। अनुवाद करते समय मूल पाठ के इन गुणों को लक्ष्य पाठ में उतारना भी समस्याओं का जनक होता है।

नाट्यानुवाद की समस्याएं–मंचनीयता की पूर्व-शर्त से जुड़ी यह विधा कभी-कभी काव्यानुवाद जितनी ही जटिल हो जाती है क्योंकि नाट्य विधा का मंचन पक्ष इसे बहुआयामी बना देता है। नाटक का लक्ष्य पूरा हो इसके लिए लेखन से बाहर के कई वाह्य तत्त्व जैसे अभिनेता और निर्देशक भी इसमें शामिल होते हैं। मंचनीयता को पूरा करने के लिए नाटककार को रंगमंच की आवश्यकताओं को दिमाग में रखना पड़ता है। यह इसकी रचना प्रक्रिया को जटिल बना देता है।

नाटक का अनुवाद करने में उसकी सावादात्मक प्रकृति को बनए रखना एक समस्या है क्योंकि उसके पात्रों के समस्त गुणों को लक्ष्य भाषा के पात्रों में ठीक उसी तरह से दिखना चाहिए। समस्या यह है कि वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व

करने वाले पात्र संस्कृति की भिन्नता के प्रतीक होते हैं और उनको मूल रचना से लक्ष्य रचना में पुर्नजन्म लेना होता है। यह अनुवादक के लिए समस्याजनक हो जाता है क्योंकि उदाहरण के लिए भारतीय परिवेश में राजा हरिश्चन्द्र के डोम वाले चरित्र को दर्शाने के लिए अंग्रेजी में उसी प्रकार का कोई कार्य प्रतीक खोजना होगा।

नौकर व स्वामी के बीच के संवाद में यूरोपीय भाषाओं में नौकर द्वारा स्वामी के नाम उपनाम के साथ 'मिस्टर' पूर्वसर्ग लगाकर संवादों को प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन हिन्दी में ऐसा संभव नहीं है। बल्कि हिन्दी में ऐसा करना नाटक के प्रवाह को बाधित करेगा व पढ़ने वालों को यह अजीब सी अनूभूति देगा।

मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी नाटकों में भरपूर उपयोग होता है और अनुवाद की समस्याओं पर चर्चा करते समय हम देख चुके हैं कि इनको लक्ष्य भाषा में पुन:निर्मित करना टेढ़ी खीर साबित होता है। नाटक में संवादों के माध्यम से अभिनेता भावों को प्रकट करता है, अर्थात इसमें (संवादों में) शब्दों का चयन यह सोच कर किया जाता है कि अभिनेता संवाद प्रस्तुत करते समय किस शब्द को कैसे बोलेगा(गी) और उच्चारण की ध्वनि के भाव क्या होंगे। अब मूल भाषा के संवादों के इस भाव या विशेषता को अनुवादक द्वारा लक्ष्य भाषा में उतार पाना एक विकट समस्या होती है।

कथानुवाद की समस्याएं–कविता तथा नाटक की ही तरह कहानी, उपन्यास अथवा कथा साहित्य में सर्जना का स्तर किसी भी तरह से हल्का या कम नहीं होता है, इसीलिए इसका अनुवाद किसी भी तरह से सहज या सरल क्रिया नहीं होती है। कथा का अपना एक विशिष्ट प्रारूप होता है। इसमें साहित्य की अन्य विधाओं के गुण भी अंतर्निहित होते हैं। जिस तरह से नाटक के पात्र अपनी संस्कृति व पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कथा साहित्य में पूरे पाठ को एकल इकाई के रूप में प्रस्तुत व गर्हण करने से ही उसका अर्थ स्पष्ट होता है। अर्थात संपूर्ण पाठ एक श्रंखला जैसा होता है जो आपस में गुथी होती है और प्रत्येक कड़ी अगली या पिछली कड़ी को अर्थ प्रदान करती है। इस तालमेल को अनुवाद में कायम रख पाना एक समस्या हो सकती है।

साहित्य की अन्य विधाओं के अनुवाद की तरह ही इस विधा में भी अनुवादक को कथ्य के विभाजन तथा शिल्पगत प्रयोग पर चिंतन मनन करना

पड़ता है। अनुवादक कभी कुछ जोड़ता(ती) है तो कभी कुछ हटाता(ती) है। इस सारे कार्य और गतिविधि के साथ उसे मूल पाठ के भाव को बनाए रखना पड़ता है। स्रोत व लक्ष्य भाषा में सही प्रतीकों का चयन यहां भी उतना ही कठिन और समस्याप्रद होता है। किसी हिन्दी कहानी में हिन्दू विवाह के 'सात फेरों' के साथ लिए जाने वाले सात वचनों को प्रतीक रूप में दूसरी भाषा में उतारना जहां पर इस तरह की संकल्पना भी समस्याजनक हो तो समझा जा सकता है कि प्रतीक खोजना कितनी दुष्कर समस्या हो सकती है। 'चरण स्पर्श' का समतुल्य यूरोपीय भाषा में खोजना एक समस्या है।

अलंकार, मुहावरे और लोकोक्तियां यहां भी अनुवादक को उतनी ही समस्या देते हैं जितनी कि नाटक या अन्य विधाओं में। 'वह गऊ समान है' जैसे मुहावरे के लिए दूसरे देशों में गाय के जैसे सीधे व सम्मानित पालतू प्रतीक को खोजना एक दुष्कर कार्य है। एक बात और, प्राचीन साहित्य का प्रतीक आज के समय में समतुल्य खोजना भी एक समस्या बन सकती है।

सभी साहित्यिक विधाओं के अनुवाद में अनुवादकों को कमोबेश समान समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अनुवाद के दौरान दो भाषाओं का आपसी संचार, अनुवादक की संवेदना तथा स्रोत साहित्य की मूल संस्कृति की समझ, प्रतीकों, मुहावरों व लोकोक्तियों का भरपूर ज्ञान आदि ऐसे गुण हैं जो साहित्यिक अनुवादक के लिए अपरिहार्य हैं। साहित्यिक अनुवाद के लिए प्रतिभा, क्षमता और अभ्यास तीनों का अत्यधिक महत्व है।

साहित्योतर अनुवाद व उससे जुड़ी समस्याएं–साहित्य में शामिल समस्त विधाओं के अतिरिक्त शेष विषयों को साहित्योतर विषय कहा जाता है इनमें मानविकी विषय, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, कार्यालयीन, वाणिज्यिक, वित्त, कानून आदि विषय शामिल हैं। साहित्यिक और साहित्येतर अनुवादों में मूल अंतर यह है कि साहित्येतर अनुवाद करते समय मूल व स्रोत भाषा के साथ-साथ संबद्ध विषय का भी पर्याप्त ज्ञान आवश्यक होता है। तकनीकि अनुवाद में मूल भाषा में निहित बहुअर्थी तथा संदिग्ध स्थितियों को समाप्त करके लक्ष्य को परिमार्जित करने का प्रयास शामिल रहता है। इन सभी विषयों में अनुवाद की मूल समस्याएं तो वे ही होंगी जो कि किसी साहित्यिक विषय में आती हैं जैसे कि भाषाओं की मूल संस्कृतियों, प्रतीकों, लोकोक्तियों, मुहावरों व विशिष्ट भावों का सटीक प्रस्तुतिकरण। इनमें से प्रत्येक विषय की अपनी विशिष्टताओं के कारण हर एक विषय के अनुवाद में शामिल समस्याएं

विषय विशेष से संबंधित भी हो सकती है, लेकिन मोटे तौर पर समस्याएं समान ही रहती है।

मानविकी विषयों के अनुवाद की समस्याएं–मानविकी वे शैक्षणिक विषय हैं जिनमें प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के मुख्यत: अनुभवजन्य दृष्टिकोणों के विपरीत, मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक, आलोचनात्मक या काल्पनिक विधियों का इस्तेमाल कर मानवीय स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इन विषयों के अनुवाद में भाषाओं (लक्ष्य व स्रोत) की महारत के अतिरिक्त निम्नलिखित समस्याएं हमेशा सामने आती रहती हैं–

1. लक्ष्य भाषा में अनुदित सामग्री का उपयोग क्या होगा? यह जानना इसलिए जरूरी है क्योंकि यह संदर्भित विषय के उस स्तर को निर्धारित करता है जिसका आधार मूल रूप से लक्ष्य पाठक की मानसिक अवस्था तथा विषय विशेष के ज्ञान का स्तर है जिसके लिए अनुवाद किया जा रहा है।
2. लक्ष्य भाषा का अपना स्तर क्या होगा? मान लीजिए कि किसी प्रशिक्षण सामग्री का अनुवाद किया जा है जो कि शिक्षक प्रशिक्षण से जुड़ी है। ऐसी स्थिति में विषय विशेष के ज्ञान के स्तर के साथ अनुवाद में उपयोग की जाने वाली भाषा का स्तर भी मायने रखता है क्योंकि–शिक्षक प्रशिक्षण शिशुशाला के शिक्षकों से लेकर विश्वविद्यालय के शिक्षकों तक, और तो और तकनीकि विषयों के शिक्षकों के भाषा ज्ञान का स्तर भिन्न-भिन्न होगा।
3. मानविकी विषयों में यह जरूरी हो जाता है कि यदि मूल भाषा में किसी तरह के भ्रम की संभावना हो तो लक्ष्य भाषा में उसे समाप्त किया जाए। इस कारण से मानविकी विषयों में अनुवाद करना समस्याप्रद हो जाता है। क्योंकि मूल भाषा में उपयोग किए गए कई शब्द या वाक्यांश यदि लक्ष्य भाषा में ठीक उसी प्रकार रख दिए जाएं तो पाठक के लिए भ्रम पैदा हो सकता है। इसलिए उस भ्रम की स्थिति का न होना अच्छे मानविकी अनुवाद की विशेषता है।
4. मानविकी अनुवाद में एक और समस्या शब्दावली से जुड़ी हुई है क्योंकि हर एक विषय की अपनी एक मानक शब्दावली होती है। यदि अनुवादक मानक और प्रचिलित शब्दावली के सही उपयोग से परिचित नहीं होगा(गी) तो उसका अनुवाद, पाठक की समझ से परे होगा।

5. मानविकी विषयों का ज्ञान अत्यधिक महत्वपूर्ण है और कई विषय जैसे दर्शन शास्त्र में प्रतीकों आदि की उपस्थिति हो सकती है ऐसे में मानविकी विषय भी साहित्य के विषयों जैसा व्यवहार कर सकते हैं। इन परिस्थितियों में ऐसे मानविकी विषय से संबंधित अनुवाद में वे सारी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं जो कि साहित्यिक अनुवाद में होती हैं।

तकनीकि, प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरिंग विषयों के अनुवाद की समस्याएं–

तकनीकि, प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरिंग विषयों के अनुवाद में इन सभी विषयों का पर्याप्त ज्ञान और समझ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि इन सभी विषयों से संबंधित शब्दावली काफी जटिल हो जाती है। इन विषयों के अनुवाद में अनुवादकों की कुछ आम समस्याएं निम्नलिखित हैं–

1. मानक तकनीकि शब्दावली का सीमित होना। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के उपरोक्त विषयों के अनुवादकों की सबसे बड़ी समस्या मानक शब्दावली का सीमित या अनुपलब्ध होना है। ऐसी स्थिति में बेहद जटिल तकनीकि शब्दों के मामले में लिप्यांतरण (Transliteration) से काम चलाया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि पाठक का तकनीकि ज्ञान विशेषज्ञ स्तर का न हो तो अनुवाद अपना मूल्य खो देता है।
2. तकनीकी अनुवाद के क्षेत्र में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अधिकांश अनुवादक कई-कई विषयों पर काम करते हैं, लेकिन उस सभी विषयों पर उनकी विशेषज्ञता संभव नहीं होती है, ऐसी स्थिति में औसत गुणवत्ता वाले अनुवाद का जोखिम बना रहता है।
3. यदि अनुवादक को उस लक्ष्य की सटीक जानकारी न हो तो अनुवाद का मूल अभिप्राय पूरा नहीं होता है–जो कि संप्रेषण है। मान लीजिए कि चिकित्सा के क्षेत्र में किसी आम बीमारी जैसे–टीबी से संबंधित कोई ऐसा पाठ अनुवाद किया जाए जो कि आम जनता के बीच बीमारी की जानकारी व सेके दनशीलता बढ़ाने के लिए हो और अनुवादक 'Tuberculosis' शीर्षक का अनुवाद 'राजयक्ष्मा' कर दे तो ऐसे में इस सूचना या जानकारी वाले पर्चे को आमजन द्वारा समझ पाना असंभव हो जाएगा और अनुवाद अपनी उपादेयता खो बैठेगा।

कार्यालयीन विषयों के अनुवाद की समस्याएं–भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए यह आवश्यक हो जाता कि सरकारी कामकाज की एक देशव्यापी भाषा हो, जो सभी को स्वीकार्य हो। 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को भारत की

राजभाषा स्वीकार किया गया। इसके पश्चात यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी भाषा का प्रचार व प्रसाद अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में सुनिश्चित किया जाए। इसमे आने वाली समस्याओं के क्रम में द्विभाषा फार्मूला अपनाया गया। केन्द्र सरकार ने यह प्रयास किया कि उसके संचार व कार्य संबंधी व्यवहारों में राजभाषा के रूप में हिन्दी का उपयोग किया जाए तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रों के अलावा जो प्रदेश है वहां पर यथासंभव वहां की भाषा में संवाद भी जारी रखे जाएं। रेलवे तथा राष्ट्रीयकृत बैंक व्यवस्था इसका एक सटीक उदाहरण है। इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अनुवाद एक मुख्य हथियार साबित हुआ है।

इस क्षेत्र में भी समस्या कमोबेश वैसी हैं जैसी कि तकनीकि विषयों के क्षेत्र अनुवाद से संबंधित है। कार्यालय विशेष की शब्दावली की अनुपलब्धता, उसकी दुरूहता, व्यावहारिकता तथा अनुवाद की गुणवत्ता।

वाणिज्यिक विषयों के अनुवाद की समस्याएं–आज भूमंडलीकरण के दौर में व्यापार भौगोलिक सीमाओं को लांघ गया है। बहुराष्ट्रीय आकार की कंपनियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उनके उत्पाद और उनकी जानकारियां सभी उपभोक्ताओं को उनकी अपनी भाषाओं में उपलब्ध हों। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अनुवाद की सहायता ली जाए। बहुराष्ट्रीय प्रकृति के व्यापार में नियंत्रण के लिए कंपनियों को भिन्न-भिन्न देशों में स्थित अपने परिचालनों उस देश विशेष का भाषा में संवाद करना होता हैं। यहां पर अनुवाद उपयोगी होता है।

वाणिज्य, वित्त एवं बैंकिंग क्षेत्रों में अनुवाद के लिए अनुवादकों को भी क्षेत्र विशेष का ज्ञान होना परम आवश्यक है। वाणिज्यिक पाठ–साहित्यिक, अर्ध-तकनीकी तथा गैर-तकनीकि तीनों तरह का हो सकता है। इनमें शाब्दिक अनुवाद की अपेक्षा अधिक रहती है तथा सदावली चयन एक समस्या हमेशा रहती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अनुवाद चाहे साहित्यिक हो या साहित्येतर, मूल इन दोनो प्रकार के अनुवादों में कुछ भूलभूत अंतर हैं–यदि भाव और शब्दपरक अनुवाद के अनुपात को देखा जाए तो साहित्य में भावपरक अनुवाद की मात्रा बहुत अधिक व शब्दपरक अनुवाद की मात्रा बहुत कम या शून्य होती है, साहित्येतर अनुवाद में ठीक इसका विपरीत होता है। साहित्यिक अनुवाद में मूल शब्दों की हानि होने की संभावना प्रबल होती है जबकि साहित्येतर विषयों में आमतौर पर ऐसा नहीं होता है।

शबदावली ज्ञान, लक्ष्य पाठक के मानसिक स्तर की जानकारी तथा विषय विशेष का अच्छा ज्ञान साहित्येतर अनुवाद के लिए परम आवश्यक है।

हिन्दी अनुवाद का व्यावहारिक पक्ष

अनुवाद क्रिया अपने स्थूल रूप में अवश्य ही भाषाओं से सम्बद्ध है क्योंकि कभी दो भाषा-भाषी व्यक्ति मिलें और एक-दूसरे को अपनी बापत समझाने का प्रयत्न करें, तो वह तभी समझा सकेंगें जब दोनों किसी तीसरी भाषा का ज्ञान रखते हों। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति पहले अपनी भाषा में सोची हुई बात का अनुवाद उस भाषा में करेगा, जिसे दूसरा भी जानता है, तब उस भाषा में अपनी बात कहेगा। यह प्रक्रिया तुरत प्रक्रिया है। दूसरा व्यक्ति भी एक ह बात का उत्तर देने के लिए इसी तुरत प्रक्रिया को अपनायेगा। यह अनुवाद क्रिया का एक व्यावहारिक पक्ष है।

परन्तु जब दोनों ही न तो एक-दूसरे की भाषा समझते हैं और न कोई तीसरी ऐसी भाषा जानते हैं, जो दोनों के बीच वार्तालाप करा सके। यह स्थिति अनुवाद का मौलिक व्यवहार का पक्ष है, जिसका समाधान परस्पर इशारों द्वारा ही हो सकता है, जिसमें दोनों व्यक्तियों को एक-दूसरे के इशारों का अनुवाद करना पड़ता है। यदि एक को भूख लगी है और वह दूसरे से भोजन माँगता है तो वह भोजन करे के उस ढंग का संकेत करेगा, जो खाना खाने का ढंग उसकी संस्कृति में साम्य रखता है तो दूसरे को इसकी बोली या संकेतों का अनुवाद करने में देर नहीं लगेगी। इसी प्रकार से और बातों के बारे में भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह स्थिति उन दो गूँगे-बहरे लोगों की सी होती है जो कोई भाषा भी नहीं जानते। चूँकि गूँगे-बहरे लोग भी आपसे में बातें कर लेते हैं तथा एक-दूसरे के मन्तव्यों को समझ भी लेते हैं। अभ्यास से यह सम्भव हो जाता हैं यक कार्य संकेतों के अनुवाद द्वारा होता है। बच्चा जब तक कुछ कह नहीं पाता उसकी बातों को भी इसी अनुवाद प्रक्रिया से समझ लिया जाता है। कभी आदिम काल में भी अनुवाद क्रिया की ऐसी ही गति रही होगी। वस्तुतः ऐसे ही व्यवहार से शब्दों और सुरों का जन्म हुआ होगा और भाषाएँ बनने की भूमिका बनी होगी।

प्रथम अनुवाद कार्य मनुष्य जीवन के ही उस व्यावहारिक स्थिति से उत्पन्न हुआ, जो किसी क्रिया को करने या किसी वस्तु के प्रयोग में लाने पर बनी, उसे करते हुए या देखकर और प्रयोग करके जो अनुभूति बनीं, उसी अनुभूति के भावानुवाद द्वारा उस क्रिया और वस्तु का नामकरण हुआ। भौगोलिक भेद से यह

अनुभूतियाँ मनुष्य के मन में अलग-अलग भावातिरेक की रही होंगी, तभी भाषाएँ भी अलग-अलग बनीं, अलग-अलग जगहों पर एक प्रकार की क्रिया और समान प्रकार की वस्तु के नाम अलग-अलग रख लिये गये।

वास्तव में मनुष्य का समग्र व्यवहार ही भावातिरेक है। जब काई व्यक्ति दूसरे से बात करता है, तो उसकी बात सुनने वाला दूसरा मनुष्य बोलने वाले की भाषा का अनुवाद, उसके बोलने के भाव-प्रसंग में अविलम्ब कर लेता है और वह सुनी हुई बात का उत्तर न देकर उसके भावानुवाद का उत्तर देता है। दूसरा व्यक्ति भी उसके उत्तर के भावानुवाद का ही अंगीकार करता है। ऐसी स्थिति में बोली हुई बात के अर्थ भावानुवादी ही होते हैं। अतः मनुष्य यदि कुछ बोलता है तो उसकी वाणी की भाषा का मर्म उसकी भावानुवादित भाषा में होता है, जब वह लिखता है तो उसकी लेखनी से प्रादुर्भूत भाषा का मर्म उसके उन शब्दों में होता है, जिनका वह लेखन के लिये चयन करता है, उस शैली में होता है, जो उसके भावानुकूल शब्दों को पंक्तिबद्ध करती है।

अतः अनुवाद कला की मूल आधारभूमि ही भावसिद्ध है। बाह्यापेक्षी भावपक्ष, अन्तरानुभूतिक वैचारिक उद्वेलन-मंथन में जिस प्रकार भाषा के चित्र बनाता है, उसी प्रकार सृष्टि के भौतिक-अभौतिक, लौकिक-अलौकिक भेदों के प्रति जिज्ञासाओं के झूले पर सदा झूलते रहने वाले मनुष्य को भाषाओं की गोद में खेलने को ज्ञान का दान करता है। दृश्य और अदृश्य के गीत गाने को उत्फुल्ल करता है, दार्शनिक परिकल्पनाओं में खोए रहने को भी विवश करता है। भाषाएँ और भौगोलिक स्थितियाँ भले ही मनुष्य जाति में वैभिन्य की प्रतीति देती दिखाई देती हो, लेकिन उसकी मानसिक उद्बुद्धि और व्यावहारिकता की प्रवाह प्रकृति समान ही है तथा चिन्तर प्रवृत्ति भी भिन्न नहीं है। मानव जाति अनुवाद-संक्रमण द्वारा सदा से इसका निर्वाह करती आई है। इसी कारण मनुष्य जीवन के प्रत्येक चरण पर अनुवाद का क्रम चलता रहा है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चिन्तन में एक-दूसरे से जुड़ने को सचेष्ट रहा है। कभी उसकी ये चेष्टाएँ धार्मिक दर्शन के उपदेशों में प्रकट हुई हैं, कभी धार्मिक आक्रमणों में, कभी व्यापारिक स्वार्थों में। शक्ति और सम्पन्नता का लोभ-लालच सांसारिक व्यवहारों की धुरी है, भाषाओं की विभिन्नता में अनुवाद जिसकी गति है। हमारा नित्य प्रति का जीवन चूँकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए सांसारिक सहयोग व्यवहार से परिचालित रहता आया है, रहता है तथा रहता रहेगा, अतः अनुवाद उसमें उसे स्पष्टता देने के रूप में संश्लिष्ट है।

चूँकि मनुष्य के व्यवहार भावाधीन होते हैं, अतः प्रकारान्तर से यदि हम अनुवाद क्रिया को भी भावरंजित कहें तो अत्युक्ति नहीं होती। भाव मूल रूप में स्वहित, स्वरुचि, स्वसोच तथा परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप प्रकट होते हैं। अतः मनुष्य की इस क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक कार्य पद्धति को ही उसकी व्यावहारिकता कहा जा सकता है। यह उसकी जीवनचर्या को संचालित करने वाला तत्त्व है। अतः वह दूसरों के प्रति उसकी रुचि-अभिरुचि, उसके संपर्को तथा संबद्धों के साथ संश्लिष्ट है। जिन तन्तुओं से यह संश्लिष्ट रूप ग्रहण करती है, अनुवाद उन्हीं तन्तुओं का प्रदर्शन है, चाहे वह वाणी के रूप में हो, भाषा के रूप में हो या क्रिया तथा परिवेश के रूप में।

प्रस्तुत प्रसंग में हमारा प्रयोजन केवल उस वाणी और साहित्य से है जो हमें भाषाओं के माध्यम से उपलब्ध होता है। हम अपने नित्य-प्रति के सब व्यवहारों को प्रकट करने के लिए भाषाओं को ही काम में लाते हैं। इनका रचना रूप किसी न किसी प्रकार का साहित्य बनकर सामने आता है, जिसमें आवश्यकता और प्रसंगानुरूप अनुवादों द्वारा विभिन्न भाषा-भाषी अपने व्यवहारों का परिचालन भी करते हैं और मानव जाति के व्यवहारों से संज्ञानित भी होते हैं। यही अनुवाद का व्यावहारिक पक्ष है।

अनुवाद अभ्यास

अनुवाद कला में सफलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास ही किसी अनुवादक को पारंगत कर सकता है, परन्तु कभी-कभी अभ्यास भी किन्हीं अनुचित अनुवाद क्रियाओं का हो जाता है, इसलिये पहले यह समझ लेना चाहिए कि अनुवाद कार्य का दायित्व लेने वाले विद्वानों को किन दोषों से बचना चाहिए तथा उसे किन गुणों को प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए। अनुवादशास्त्रियों ने अनुवादक में निम्नांकित गुणों का होना आवश्यक बताया है–

(1) पूर्वाग्रह रहित होना–अनुवाद कार्य के लिये प्रयोजित रचना या उसके विषय के प्रति यदि अनुवाक किसी प्रकार के पूर्वाग्रहों से युक्त हो, जैसा कि प्रायः होता है, तो वह रचना मूल रचनाकार की रचना में अभिव्यकित दोष का सृजन कर देता है। यह दोष अनुवाद कार्य का सबसे बड़ा दोष है। अनुवादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अनुवाद करते समय अभिव्यक्ति में स्वतन्त्र नहीं है, अतः उसे स्वयं को मूल रचना के भावों तथा विचारों को दूसरी भाषा में अन्तरण करने से अधिक कुछ नहीं करना है। यह सत्य है कि कभी-कभी उसे

रचना के विषय सम्बन्धी ज्ञान में मूल रचनाकार के ज्ञान से अधिक ज्ञान हो सकता है तथा यह भी सम्भव है कि कभी-कभी अनुवादक मूल रचना के अनेक भाव-विचारों के विपरीत भाव-विचार रखता है अर्थात् मूल रचना के भाव-विचारों के प्रति वह किन्हीं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है या विषय सम्बन्धी उसकी पूर्वाग्रही धारणा सिद्धान्त-संकल्पना में मूल रचनाकार की संकल्पना में, अपनी धारणा को प्रच्छन्न रूप से अनुबद्ध हुई समझ लेता है, तो वह ऐसी धारणा का स्वरूप ही अनुवाद करते समय बदल डालेगा। इसके उदाहरण प्रायः हम संसार के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अनुवादों में देश सकते हैं जिनमें अनुवादकों ने गीता के कुछ मूल दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रायः विशेषण प्रतिबद्धित कर दिया है।

(2) स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा का ज्ञान—अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में किया जाता है। अतः अनुवादक के लिये दोनों-स्रोत और लक्ष्य भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक नहीं अपितु अनिवार्य भी है, परन्तु अनुवादशास्त्री इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दोनों भाषाओं का ज्ञान मात्र से बात नहीं बनती है। अनुवाद कार्य की कठिनता के सम्बन्ध में स्वतन्त्र भारत के प्रथम **राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद** का मन्तव्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। उनके शब्दों में, "एक प्रकार से मौलिक लेख लिखना जितना आसान है, किसी दूसरी भाषा से अनुवाद करना उतना ही कठिन है। मेरा निजी अनुभव है कि मैं अंग्रेजी से हिन्दी में और हिन्दी से अंग्रेजी में उतनी आसानी से अनुवाद नहीं कर सकता जितनी आसानी से बोल या लिख सकता हूँ। गहन विषयों का अनुवाद तो और भी अधिक कठिन हो जाता है। अनुवादक को केवल उन दोनों भाषाओं का जिनमें से कि एक से दूसरी में अनुवाद करना है, अच्छा ज्ञान होना ही अनिवार्य नहीं बल्कि उस विषय पर अच्छा अधिकार भी होना चाहिए जिस विषय से वह अनुवाद किये जाने वाला ग्रन्थ सम्बन्ध रखता है। इसलिए किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि अगर वह दो भाषाओं को मामूली तौर से जानता है तो वह एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कर सकता है।"

डॉ. राजेन्द्र पेसाद के इस उद्धरण से यह बात प्रकट होती है कि प्रायः विद्वान लोग भी जितनी आसानी से वह स्रोत या लक्ष्य-भाषा में स्वाभाविक रूप से कोई विचार प्रकट कर सकते हैं, वह अनुवाद कार्य में ऐसा कर पाना कठिन महसूस करते हैं। इसका भी मूल कारण अभ्यास का अभाव ही होता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के ही अनुसार अनुवादक का स्रोत तथा लक्ष्य भाषानुवाद विद्व-ज्ञान से ही काम नहीं चलता, वरन् उसे अपेाति अनुवाद के विषय का भी ज्ञान होना

ओवश्यक है। यह गुण भी अनुवादक द्वारा विषय सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने के अभ्यास से सम्भव है। आजकल अनेक विद्वान अनुवाद तो करते हैं, परन्तु उन्हें मूल रचना के विषय का ज्ञान नहीं होता। वास्तविक बात यह है कि विषय के ज्ञान से स्रोत कृति में प्रयुक्त अनेक सन्दर्भों को अनुवादक अनूदित कृति में विषय सन्दर्भों की पृष्ठभूमि के आधार पर अनुवाद करने में सक्षम हो सकता है।

(3) भाषा की प्रकृति का ज्ञान—वस्तुतः स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा के शब्दों के अर्थ की सम्यक् जानकारी से काम नहीं चल सकता। सफल अनुवाद के लिये शब्दों की प्रकृति और उनके परिवेश की सूक्ष्म और यथार्थ जानकारी का होना भी अनिवार्य है। अन्यथा अनुवादक स्रोत-भाषा के साथ न्याय कर ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ—अशोक के लिये ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त **'देवाना प्रियः'** संस्कृत शब्द का प्रयोग किया गया है। कई अनुवादक इस शब्द का प्रयोग ब्राह्मणों के दुर्वचन रूप में मानते हैं और इसी सन्दर्भ को लेकर वह अशोक को वैदिक धर्म का विद्वेषी सिद्ध करने के लिए **'देवानां प्रियः'** शब्द का अनुवाद करते हैं। यह अनुवादकों के विषय ज्ञान की कमी का तो परिचायक है ही, संस्कृत भाषा की प्रकृति से अपरिचय का भी द्योतक है। यही स्थिति अंग्रेजी के यू (You) और डियर (Dear) शब्दों की है। इन दोनों शब्दों का प्रयोग छोटों-बड़ों और समान स्तर तथा आयु के व्यक्तियों के लिए एक समान किया जाता है। अनुवादक को देखना होगा कि कहाँ यू का अनुवाद तू करना है, कहाँ तुम और कहाँ आप। इसी प्रकार डियर का अनुवाद कहाँ प्रिय, कहाँ सामान्य और कहाँ आदरणीय करना उपयुक्त होगा—अनुवादक के लिए यह देखना अनिवार्य हो जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों—स्रोत और लक्ष्य-भाषाओं की जानकारी का अर्थ यह कदापि नहीं कि केवल शब्द कोश में निहित अर्थ की अथवा व्याकरणिक रूप की जानकारी होनी चाहिए। यह तो सतही ज्ञान कहलायेगा। सत्य तो यह है कि दोनों भाषाओं की प्रकृति, परम्परा और उनके सांस्कृतिक परिवेश के मर्म को समझे बिना अनुवादक गहराई में उतर ही नहीं पाएगा। उदाहरणार्थ—नर्स के लिए प्रयुक्त 'मिडवाइफ' शब्द का हिन्दी में 'आधी पत्नी' अनुवाद तो कभी सही नहीं माना जायेगा।

वस्तुतः स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की प्रकृति और परम्पराओं का ज्ञान इन भाषाओं के निरन्तर सम्पर्क-अभ्यास से ही सम्भव है। अंग्रेजी समाचार-पत्रों में निरन्तर नये शब्दों का प्रयोग होते हुए देखा जाता है। अनुवादक को यदि अंग्रेजी समाचार-पत्रों के प्रति लगाव नहीं होता और वह अपनी विद्वता के आधार पर ही

अनुवाद में प्रवृत्त होता है, तो यह उसकी भूल है। अंग्रेजी समाचार-पत्रों में प्रायः नई तरह की वाक्य रचनाएँ भी आती हैं, जिनका अनुकरण अंग्रेजी के विद्वान अपनी पुस्तकों में भी करने लगते हैं। प्रायः अंग्रेजी के कुछ शब्दों के प्रयोग तो इस तरह किये जाने लगे हैं, जिन्हें हम सदा से एकार्थक रूप में ही जानते हैं। ऐसे शब्दों के प्रयोग की परम्परा का ज्ञान अभ्यास से ही संज्ञानित रह सकता है।

(4) सामाजिक संस्कृति का ज्ञान—इसके अतिरिक्त अनुवाद के लिये दोनों स्रोत और लक्ष्य-भाषाओं के वक्ताओं की सामाजिक मर्यादाओं और परम्पराओं की जानकारी का भी होना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ किसी अपरिचित अथवा सम्मानित महिला के लिये अंग्रेजी भाषा के 'डियर मैडम' का हिन्दी अनुवाद 'प्रिय श्रीमती जी' सही नहीं होगा। भारतीय समाज में सामान्यतया महिलाओं के विशेष आदर देने की प्रथा एवं परम्परा हैं, अतः यहाँ 'डियर मैडम' का सही अनुवाद 'आदरणीया महोदया' या 'सुश्री' ही होगा।

(5) सन्दर्भ का ज्ञान—अनुवादक के लिये सन्दर्भ और प्रसंग की जानकारी का होना भी सर्वथा अपेक्षित है। इसके अभाव में वह अनुवाद कार्य में न्याय कह ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के सन (Son) का अर्थ सभी स्थानों पर पुत्र ही करना उचित नहीं होगा। 'सन् ऑफ इण्डिया' का सही अनुवाद 'भारत का सपूत' होगा न कि भारत को पुत्र। इसी प्रकार कहीं आत्मज, कहीं बेटा, लड़का तो कहीं कुलदीपक प्रयोग में आएगा। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का यह कथन बड़ा ही उपयुक्त है—"शब्द भाव अथवा विचार की पोशाक नहीं है जो इच्छानुसार बदली जा सके अर्थात् पैंट-कमीज के स्थान पर धोती-कुर्ता पहना दिया जाये।" यह तो भाव या विचार का मांस अथवा उसकी त्वचा है। अतः भाव विचार के अनुकूल एवं अनुरूप शब्दों का प्रयोग करने वाला अनुवाद ही अनुवाद को सफल एवं सजीव बना सकता है। इसी सन्दर्भ में उमर ख"याम की रुबाइयों के अनुवादक फिट्ज जेराल्ड के अनुवाद कार्य की समीक्षा करते हुए डा॰ हरिवंशराय बच्चन का वक्तव्य बड़ा ही सटीक है। उन्होंने सजीवता को ही अनुवाद की सफलता का मूल-तत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है—"यदि अनुवाद का अर्थ यह है कि एक भाषा के शब्द के स्थान पर दूसरी भाषा का शब्द लाकर रख दिया जाये तो फिट्ज जेराल्ड सफल अनुवादक नहीं है और अगर अनुवाद का अर्थ यह है कि मूलभावों को दूसरी भाषा के माध्यम से जाग्रत किया जाये तो फिट्ज जेराल्ड आदर्श अनुवादक हैं।" वस्तुतः यदि अनुवाद मूल भाषा में अभिव्यक्त संवेदना को सम्प्रेष्य नहीं बना पाता तो वह सर्वथा निष्फल और निरर्थक है।

अनुवाद का सजीव होना आवश्यक है यदि उसमें किसी कारणवश मूल प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती तो उसमें अपनी ही सांसों का संचार कर देना चाहिए।

'अपनी ही सांसों का संचार' शब्द भी बहुत वृहत् भावी शब्द है। अवश्य ही अनुवादक को यह अधिकार है कि वह स्रोत-भाषा के भाव और मूल यथार्थ की रक्षा करे, लेकिन कैसे? ऐसे नहीं कि जहाँ स्रोत भाषा की मूल सांसों का भी अतिक्रमण हो' या 'अतिक्रमण हो रहा है' इसकी प्रकृति का ज्ञान भी अभ्यास के क्षेत्र की ही बात है।

(6) मुहावरों और लोकोक्तियों में निहित मर्म का ज्ञान—प्रत्येक भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों के रूप में कुछ मुहावरों और जीवन के किसी सत्य को सजीव रूप देने के लिये लोकोक्तियों की रचना तथा उनका प्रचलन हो जाता है। उनका शब्दानुवाद करना न तो सम्भव होता है और न ही वांछनीय। उदाहरणार्थ—हिन्दी में पुत्र को 'बुढ़ापे की लकड़ी' कहा जाता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद `A stick of old age' कभी उस अर्थ को सूचित नहीं कर पायेगा। इसी तरह भारत की भाषाओं में 'मुंह में तिनका दबाना' का भावार्थ अधीनता स्वीकार करना ही लेना होगा। ऐसी लोकोक्तियों तथा मुहावरों के अनुवाद के लिए लक्ष्य-भाषा में, स्रोत-भाषा में प्रयुक्त लोकोक्तियों तथा मुहावरों की ही खोज करनी पड़ सकती है, परन्तु यह तब तक सहज रूप में सम्भव नहीं है जब तक गहनपूर्वक किये गये अभ्यास द्वारा उनका संकलन अनुवादक के पास नहीं हो। इसके लिये केवल कोशों से काम नहीं चलता। बहुत-सी लोकोक्तियाँ और मुहावरों की समकक्ष लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे कोशों में होते ही नहीं। कभी-कभी ऐसे मुहावरों आदि के समकक्ष मुहावरे आदि गढ़ लेने के अनुवादक के अधिकार को भी अमान्य नहीं किया जा सकता, परन्तु ऐसे अधिकार का प्रयोग अनुवादक तभी कर सकता है जब इस प्रकार के सृजन को अपने अभ्यास में लाता रहा हो।

(7) विषय का ज्ञान—अनुवादक के लिये जहाँ स्रोत-भाषा का पर्याप्त और गहन ज्ञान अपेक्षित है, दोनों भाषाओं के शब्दों की प्रवृत्ति और परिवेश की जानकारी अपेक्षित है, वहाँ उसके लिये अनूदित की जाने वाली रचना में निरूपित समय, स्थान, विषय और सयान आदि की भी सही, पूरी और गहरी जानकारी का होना आवश्यक है अन्यथा वह अनुवाद कार्य के लिए न्याय कर ही नहीं सकता। अनुवादशास्त्रियों ने अनुवाद कार्य में इसे परम उपयोगी माना है, लेकिन ऐसा प्रायः अनुवादकों के लिये सम्भव नहीं होता। फिर भी स्रोत रचना में इनकी जानकारी कराने वाले तत्त्व अवश्य होते हैं। यह स्रोत-भाषा की

सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं के होते हैं, जिनकी जानकारी अनुवादक को कम-से-कम सीमा तक होनी चाहिए कि वह उनके वर्णन को उनकी यथार्थता का प्रसंग प्रदान कर सके। यह सामान्य ज्ञान की भी बात है और सामान्य ज्ञान सामान्य अभ्यास के बिना नहीं होता।

वस्तुतः अनुवाद की सभी समस्याओं का निदान अनुवाद करते रहने के अभ्यास में हो सकता है। जिनको अपने भाषा प्रवाह को आकर्षक और रुचिपूर्ण बनाने की इच्छा होती है, वह इसके लिए निरन्तर अभ्यास करते हैं। प्रायः स्रोत-भाषा की मूल रचना और लक्ष्य-भाषा के विभिन्न अनुवादों को पढ़ने का अभ्यास तो आवश्यक है ही, परन्तु इसके लिये सर्वोत्कृष्ट क्रिया है, स्वयं अनुवाद करते रहने का अभ्यास। इसके लिये अनुवाद कार्य में अनुकूल परिणाम प्राप्त करने के लिए निम्नांकित रूप में अभ्यास किया जा सकता है–

(1) स्रोत-भाषा की मूल रचना का स्वयं अनुवाद करके उसी किसी आदर्श अनुवाद से मिलाना और यह पहचान करना कि ऐसे आदर्श अनुवाद की शैली और शब्द-रचना कैसी है। क्या वैसा निर्वाह करने में आप सक्षम हैं?

(2) किसी स्रोत-भाषा का स्वयं लक्ष्य-भाषा में अनुवाद करना, तदुपरान्त अपने लक्ष्य अनुवाद को स्रोत-भाषा में अनूदित करना और अपनी कमियों को स्वयं लक्षित करना। समाचार-पत्रों के लिये अनुवाद करने वालों के लिये तो यह प्रक्रिया बहुत आवश्यक है।

7

हिन्दी मीडिया लेखन

मीडिया के लिए लेखन साहित्यिक लेखन से अलग है। साहित्यिक लेखन में जहां शब्दजाल रचे जाने की लेखक के सामने स्वतंत्रता होती है। वह अपने शब्दों के विन्यास में अपनी भावनाओं को बांधकर एक कसी हुई कथा लिख सकता है। लेकिन निश्चित तौर पर उसका अपना निश्चित पाठक वर्ग होगा। पत्रकारिता की भाषा में जिसे लक्षित समूह यानी Target Audience कहा जाता है, उसके बारे में आम अवधारणा है कि पत्रकारिता के पाठक या दर्शक वर्ग की समझ साहित्यिक पाठक वर्ग की तुलना में कहीं ज्यादा सामान्य होती है। लिहाजा माना जाता है कि वह गंभीर और संष्लिष्ट भाषा को पचा नहीं पाएगा। इसलिए सहज भाषा का इस्तेमाल करने की सीख हर अनुभवी मीडियाकर्मी हर नए मीडियाकर्मी को देता है।

सहजता के नाम पर एक तर्क बोलचाल की भाषा का भी दिया जाता है। सहज भाषा का यह प्रवाह जब तक संप्रेषण को आसान बनाता रहे, तब तक इस पर कोई विवाद नहीं हो सकता। लेकिन इसके भी अपने खतरे हैं। अपनी हिंदी में तो यह खतरा कुछ ज्यादा ही बढ़ रहा है। यहां बोलचाल के नाम पर ना सिर्फ अंग्रेजी के उन शब्दों के प्रयोग भी धड़ल्ले से हो रहे हैं, जिनके लिए हिंदी के सहज शब्द उपलब्ध हैं। दुनिया में हर भाषा दूसरी भाषाओं की शब्द संपदा को अपनी जरूरत के मुताबिक अभिव्यक्ति को प्रवाहमान बनाने के लिए अपनाती रहती है। लेकिन उनकी शर्त बस इतनी सी होती है कि वे दूसरी

भाषाओं के शब्दों को अपनाकर उन्हें अपनी भाषिक संस्कृति में ढाल लेती हैं। उन्हें अपने व्याकरणिक नियमों में बांधती है और उन्हें अपनी परंपरा और संस्कृति में ऐसे रचाती-खपाती हैं, जिन पर बाहरी का मुलम्मा नजर भी नहीं आता। हिंदी ने भी कुछ सालों पहले तक इसी तरह विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपनाया और उन्हें रचाते-खपाते रही। लेकिन पिछले कुछ साल से यह परंपरा टूट रही है। अब हिंदी के नए अगुआ अंग्रेजी के शब्द स्वीकार तो कर रहे हैं। लेकिन उन्हें खपाते नहीं, बल्कि अंग्रेजी के व्याकरणिक विन्यास को भी पूरी दबंगई से स्वीकार कर रहे हैं। ऐसा भाषिक अनाचार शायद ही दुनिया में कहीं और नजर आए।

अपने देश में टेलीविजन का विस्तार आपाधापी के साथ उदारीकरण के दौर में हुआ, लिहाजा यहां टीवी सामग्री निर्माण की आधारभूत सैद्धांतिकी विकसित नहीं हुई। चुकि यूरोप और अमेरिका में टेलीविजन पचास क दशक में ही आ गया, लिहाजा वहां एक सैद्धांतिकी ना सिर्फ विकसित हुई है, बल्कि वह कामयाबी के तौर पर कार्य भी कर रही है। लेकिन यह भी सच है कि आज के दौर में टेलीविजन न्यूज रूप में खबरों का दबाव बढ़ा है, इसलिए सैद्धांतिकी कई बार प्रसारण के दबाव में पीछे रह जाती है। क्योंकि कई खबरों की उम्र बहुत कम होती है, फिर भी टीवी सामग्री निर्माण की मान्य सैद्धांतिक निम्न है–

1. सबसे पहले विषय की तलाश
2. शूटिंग, इंटरव्यू, बाइट लेना
3. शूटिंग के बाद उचित विजुअल/बाइट का सेलेक्शन (चयन)
4. स्पेशल इफेक्ट की तैयारी, जरुरी ग्राफिक्स का निर्माण
5. समग्री के लिए स्क्रिप्ट लेखन
6. तैयार स्टोरी को डिजिटल फॉर्म में तैयार करना
7. डिजिटल स्टोरी को अपनी साइट, सिस्टम में प्रकाशित करना, नेट पर अपलोड करना।

चूंकि टेलीविजन जनसंचार का सबसे लोकप्रिय व सशक्त माध्यम है। लिहाजा इसमें ध्वनियों के साथ-साथ दृश्यों का भी ना सिर्फ समावेश होता है, बल्कि उस पर जोर होता है। इसके लिए समाचार लिखते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शब्द व पर्दे पर दिखने वाले दृश्य में समानता हो और कहीं दोनों बेमेल नजर नहीं आए।

मीडिया लेखन के सिद्धांत

मनुष्य अपने आसपास के परिवेश और प्रकृति से विभिन्न रूपों में प्रभावित होता है। इसके फलस्वरूप उसके मन पर पड़ने वाली विभिन्न छाया उसकी अनुभूतियों को जगाती है। यही मनुष्य की अभिव्यंजना के विषय बनते हैं, इन्हें अभिव्यंजक करने के लिए साहित्यकार अपनी प्रतिभा कौशल द्वारा कल्पना और यथार्थ का ऐसा रूप तैयार करता है कि, वह भोगताध्पाठक के मन पर कथाकार के समतुल्य प्रभाव पैदा कर देता है। लेकिन ऐसा लेखन व्यक्ति की निजी अनुभूतियों और विचारों तक ही सीमित रह जाता है। आधुनिक अनुभूतियों के जन संचार के विभिन्न माध्यमों में लेखन का सबसे अधिक महत्व है। इन माध्यमों के आरंभिक दौर में इनके लिए लेखन कर्म करने वाले अधिकांश लेखक मूलत: सृजनात्मक लेखक ही थे। लेकिन जैसे-जैसे जनसंचार के माध्यमों ने एक विशाल वर्ग तक अपनी पहुंच बनाई, वैसे–वैसे इसने व्यवसायिक रूप धारण कर लिया। इन माध्यमों के लेखन कर्म करने वाले सृजनात्मक लेखकों ने भी अपनी रचना भ्रमिता को एक नया आयाम देते हुए स्वयं को प्रजा के अनुसार ढाल लिया। यह सत्य है कि लिखना एक कला है, और यह कला मनुष्य को जन्मजात नहीं होती। इसे मनुष्य प्रगाढ़ साधना से ही ग्रहण कर पाता है, विभिन्न विद्वानों ने माना है कि पढ़ने से भी लिखना एक अधिक सुखद कला है। एक अच्छा पाठक ही रचना के भाव व विस्तार को आत्मसात करता है, लेकिन उस भाव व विचार की वास्तविकता को अभिव्यक्ति देना प्रत्येक लेखक के लिए संभव नहीं होता। इसके लिए एक श्रेष्ठ लेखक अपनी रचनात्मक प्रतिभा द्वारा उस भाव और विचार को लेखन की विविध विधाओं में से किसी एक का चयन कर उसमें अभिव्यक्ति देता है।

किस प्रकार के लेखक को हम मीडिया लेखन मान कर चलें, कि जिससे उसके विषय जानकारी रखते हुए उससे संबंधित विधाओं के स्वरूप तत्त्व एवं लेखक पद्धति का विचार किया जा सके। सामान्यत: समग्र लेखन कलाएं साहित्य के अंतर्गत आती है, साहित्य अपने आपमें व्यापक अर्थ के दायरे में आते हैं, फिर भी विशेष अर्थ में साहित्य की विभिन्न श्रेणियों को प्रमुखता प्रदान की जा सकती है।

प्रथम

ऐसी साहित्य जो हमारा ज्ञानवर्धन करती है, जो हमारी अनुभूति को कम उत्तेजित करती है। वह सूचनात्मक साहित्य कहा जा सकता है। वह साहित्य मीडिया के अंतर्गत आता है।

दूसरा

ऐसी सामग्री जिससे ज्ञानवर्धन होने के साथ-साथ हमारी बौद्धिकता निरंतर जागरूक रहती है। उसे विवेचनात्मक साहित्य कहा जाता है, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान, गणित, शिक्षा आदि विषय इसके अंतर्गत आते हैं।

तीसरा

इन दोनों से विभिन्न तीसरी श्रेणी का संबंध मनुष्य के जीवन संवेदना और अनुभूति से है, इसके द्वारा मनुष्य को आनंद प्रदान किया जाता है। इसे ही सृजनात्मक या रचनात्मक साहित्य कहते हैं। इसके अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाएं आती हैं।

मीडिया के मूलभूत सिद्धांत

1 समाचार व उनकी तकनीकी का ज्ञान–प्रत्येक संचार माध्यम की अपनी कुछ विशेषता होती है, जिसके विषय में मीडिया लेखक को अच्छी तरह जानकारी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए प्रिंट माध्यमों की तकनीक में अपेक्षित अंतर है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में रेडियो के लिए लेखन कर्म करते समय लेखक को इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि, उसमें ध्वनि व संगीत का सार्थक प्रयोग किया जा सके। वही टेलीविजन के लिए लेखन कार्य करते समय लेखक को विषयों के प्रस्तुतीकरण की तकनीक को समझना आवश्यक होता है।

2 विधा चयन भेंटवार्ता कहानी आदि–जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में अनेक विधाएं हैं, सभी विधाओं में हर व्यक्ति परांगत नहीं हो सकता। इसलिए मीडिया लेखक को अपने आप को भी अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त विधा का चयन करना आवश्यक है। वह श्रेठ विधा के अभाव में संबंधित विषय के साथ वह न्याय नहीं कर पाएगा।

3 लक्षित वर्ग–मीडिया लेखक को अपने लक्षित माध्यम और उसके वर्ग को दृष्टि में रखकर ही अपना लेखन करना होता है। जैसे समाचार तत्त्वों में आर्थिक जगत के लोगों, ख खेल में रुचि रखने वाले लोगों बच्चों, महिलाओं, किसानों आदि के लिए अनेक प्रकार की सामग्री होती है।

इन सभी वर्गों के लिए विशेष प्रकार के लेखन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार रेडियो, टेलीविजन के लिए भी विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। इसके प्रत्येक कार्यक्रम को समाज के हर एक वर्ग–समुदाय, रुचि व

भाषा के स्तर को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। इसलिए लेखक लक्षित को ध्यान में रखकर लेखन कार्य करता है।

4 स्थान एवं समय सीमा

प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक दोनों ही जनसंचार के माध्यम है, इसलिए इनके प्रकाशन व प्रसारण को ध्यान में रखकर ही लेखन कार्य किया जाता है। प्रिंट माध्यमों में विशेष रूप से समाचार पत्रों के मुख्य समाचारों के लिए अधिक और गूढ़ समाचारों के लिए कम स्थान निर्धारित होता है। संपादकीय लेखन, फीचर एवं विविध स्तंभों के लिए भी पहले से ही स्थान सुनिश्चित होता है। इसलिए इस स्थान को दृष्टि में रखकर ही लेखन कार्य करना चाहिए।

इसी तरह रेडियो, टेलीविजन प्रसारण के लिए समय सीमा की उपलब्धता को ध्यान में रखकर ही लेखक कोई लेखन कार्य करता है। समय सीमा तय होने के कारण कार्यक्रम का विस्तार होना संभव नहीं होता। तय सीमा के भीतर ही लेखक को अपनी पटकथा तैयार करनी चाहिए। टेलीविजन में तो चित्र व दृश्यों के प्रकाशन की भी आवश्यकता पड़ती है, इसलिए उसमें इनके लिए भी पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक होता है।

5 मीडिया के आचार संहिता का ज्ञान

जनसंचार के माध्यम की पहुंच और क्षमता के अनुरूप उसका विशाल पाठक श्रोता और दर्शक वर्ग है। हमारा समाज विभिन्न संप्रदायों, भाषा–भाषियों, वर्गों आदि से बना है। इन सभी को ध्यान में रखकर पत्रकारिता की एक आचार संहिता का निर्माण किया गया है। इस आचार संहिता का पालन करना प्रत्येक जनसंचार माध्यमों के लिए आवश्यक है। किसी भी माध्यम द्वारा किसी जाति, संप्रदाय या भाषा विशेष के व्यक्ति पर नकारात्मक टिप्पणी ना करना तथ्यों की सत्यता को तोड़-मरोड़ कर छेड़-छाड़ करना, किसी पर भी आधारहीन आरोप ना लगाना, मित्र देशों की आलोचना न करना, आदि कुछ नियम हैं जिन्हें जानना प्रत्येक मीडिया लेखक के लिए आवश्यक है।

मीडिया लेखन की विभिन्न विधाएँ

फिल्म कथा लेखन–मनोरंजन के लिये सुलभ दृश्य और श्रृव्य साधनों यथा–रेडियो, टेप, दूरदर्शन आदि की कुशलता के बावजूद समस्त संसार में

फिल्मों अथवा सिनेमा सर्वाधिक जनप्रिय माध्यम है साथ ही लाभदायक व्यवसाय भी। स्पष्ट है कि लोकप्रियता की नयी चुनौतियों तथा व्यावसायिकता की मुश्किल अपेक्षाओं के साथ एक फिल्म का सृजन किया जाता है। फिल्म लेखन इसी ऐन्द्रजालिक सृजन प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है। फिल्म लेखन में उत्सुक व्यक्ति को आरम्भिक चरण में ही यह समझ लेना चाहिए कि इस क्षेत्र में सैद्धांतिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक दक्षता का गुण अत्यंत है। वजह यह है कि पाँच दस पेज की कहानी या कल्पना को लंबी पटकथा में परिवर्तित हेतु उसमें अनेकों बातें जोड़नी घटानी पड़ती हैं। ऐसा करते समय परदा माध्यम के अनेक तत्त्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। अभिनय बजट स्थान छायांकन वातावरण दर्शकों की मानसिकता को ध्यान में रखना होता है। ये सब करते हुए कथा कल्पना में आवश्यक परिवर्तन तो होने ही हैं। फिल्म लेखन में इस आवश्यक परिवर्तन की समझ व व्याख्या ही लेखकीय व्यक्तित्त्व का निर्धारण करती है। फिल्म लेखन के समय इन बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है–कथा-विचार, संक्षिप्त कथा, विकसित कथा, पटकथा और संवाद।

आलेख लेखन–यह विशिष्ट लेखन सामग्री और मात्रा दोनों के नजरिये से भिन्न होता हैं। लेख में दिए गए मुद्दे अथवा विषय पर लेखक की व्यक्तिगत राय व्यक्त की जाती है और इस संदर्भ में लेखक लेखन की विषय निष्ठता से कोई समझौता नहीं करता। किंतु यह जरूरी है कि लेख संतुलित, निष्पक्ष और उद्देश्यपरक हों। इससे लेखक के किसी मत अथवा वाद के प्रति लगाव का भी पता चलता है। लेख किसी विशिष्ट समाचार, व्यक्ति, स्थान अथवा घटना पर काफी विशद लेखन होता है। लेख अनिवार्यत: विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक स्वरूप का होता है और इनका समाचारों पर आधारित होना जरूरी नहीं है।

रिर्पोट लेखन–रिर्पोट लेखन की सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसे सदैव समाचार पर आधारित होना चाहिए। यह हमारे आस-पास की घटनाओं के बारे में सूचनाएं प्रदान करती है। अत: यह पाठकों/श्रोताओं तक पहुँचने का प्रत्यक्ष अथवा सीधा माध्यम है। रिर्पोट विवरणात्मक और सूचनात्मक स्वरूप की होती है। इससे हमें पाँच प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं और ये प्रश्न हैं–कब, कौन, क्या, कहाँ एवं क्यों।

कोई भी जानकारी जो नई हो, समाचार बनती हैं। उदाहरण के लिए, हाल में घटी घटनाओं से संबंधित कोई भी जानकारी समाचार बनती है।

समाचार रिर्पोट को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) सीधे समाचारों की रिर्पोटें

(ii) खोजी समाचार रिर्पोटें

सीधी रिर्पोटें घटनाओं की तथ्यात्मक और स्पष्ट रिपोर्टिंग करती हैं। इनमें समाचार के प्रस्तुतकर्ता को अपनी कोई भी राय अंतर्निहित नहीं होती। खोजी रिपोर्टिंग के दावों अथवा तथ्यों के पीछे की सच्चाई को उजागर करने का प्रयत्न किया जाता है और उनकी वैधता की समीक्षा की जाती है। इस तरह की रिपोर्टिंग में घटना की गम्भीरता में जानने का प्रयास किया जाता है।

रूपक लेखन–इस तरह के लेखन में समाचारों, घटनाओं और मुद्दों की चर्चा, वृत्तांत अथवा समीक्षात्मक लेख के रूप में विशद विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। वर्तमान समय में रूप लेखन में घटना से संबंधित फोटो एवं चित्रों का प्रयोग होता है। इसका ढाँचा निबंध अथवा परिचर्चा में समान होता है और किसी घटना विशेष पर लेखक के माध्यम से अपनी सुस्पष्ट राय भी व्यक्त की जाती है। इस तरह का लेखन प्रायः वरिष्ठ रिपोर्टरों, संपादकों अथवा विषय के विशेषज्ञों के माध्यम से किया जाता है। इसमें प्रस्तुत की गई सूचना अनिवार्यतः विषय-निष्ठ होती है और भाषा अत्यधिक परिमार्जित होती है। ऐसा लेखन निबंध की शैली का अनुपालन करता है जिसे किसी समाचार-पत्र अथवा पत्रिका में प्रकाशित किए जाने हेतु लिखा जाता है।

साक्षात्कार लेखन–साक्षात्कार किसी भी पत्रकार हेतु सूचना संग्रहीत करने का एक प्रमुख स्रोत है। साक्षात्कार फोन पर, व्यक्तिगत रूप में आमने-सामने बैठकर अथवा प्रेस कॉन्फ्रेन्स के माध्यम से लिए जाते हैं। पत्रकारों से समाचार की रिपोर्टे में अपनी स्वयं की सलाह देने की अपेक्षा नहीं की जाती। रूपक अथवा रूप लेखन भी कभी-कभी साक्षात्कार का रूप ले लेता है। रूप लेखन में साक्षात्कार को सूचना के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

प्रेस विज्ञप्ति लेखन–प्रेस विज्ञप्ति प्रायः सरकार के द्वारा किये गए किसी महत्वपूर्ण निर्णय की घोषणा करने हेतु जारी की जाती है। यह पूर्णतः औपचारिक और शासकीय स्वरूप की होती है एवं नियमों को जारी करने हेतु यह जरूरी है कि उन्हें संबंधित मंत्रालय अथवा विभाग के लैटर हेड पर जारी किया जाए। प्रेस विज्ञप्ति की महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इसे संपादित अथवा संशोधित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें पूरी जिम्मेदारी, इसे जारी करने वाले विभाग की ही होती है।

समाचार लेखन—समाचार-लेखन, न तो निबन्ध-लेखन है, न पुस्तक-लेखन, न कहानी-लेखन और न ही पत्र-लेखन। इसे लिखने की अपनी एक अलग कला है। जिसका मूल उद्देश्य पाठक तक त्वरित गति और सरल ढंग से भावों की अभिव्यक्ति है। जिसमें सरलता, सुस्पष्टता, तारतम्यता, छः कारकों का उत्तर, पृष्ठभूमि उद्धरण और कालक्रम जैसे तत्त्वों का समावेश करके, समाचार को प्रभावोत्पादक बनाया जाता है।

पूर्व पीठिका लेखन—यह किसी विशिष्ट समाचार, घटना आदि के संबंध में आधार सामग्री उपलब्ध कराती है। पूर्व पीठिका सामान्य स्वरूप की होती है जिनमें तथ्यों को इसी रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिस रूप में वे घटित होते हैं, ताकि रिपोर्ट अथवा लेख के लेखन में पृष्ठभूमि सामग्री का इस्तेमाल किया जा सके। प्रायः इनका उद्देश्य घटना की याद ताजा करने अथवा संबंधित अद्यतन जानकारी प्रदान करना होता है।

रेडियो संवाद लेखन—वार्ता का सामान्य अर्थ है, दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य बातचीत। लेकिन रेडियो से प्रसारित होने वाली वार्ता इस सामान्य वार्ता से भिन्न होती है। रेडियो वार्ता का अर्थ कुछ विशेष होता है। इसमें दो पहलू होते हैं—वक्ता और श्रोता। रेडियो वार्ता में संवाद की संभावना का प्रतिनिधित्व जरूरी है। इसके लिये वार्ता में वार्ताकार को दो चार वाक्यों के बाद एक ऐसा वाक्य या भाव लाना चाहिये, जिससे यह स्पष्ट होता हो कि वह और श्रोता आमने सामने हैं। रेडियों वार्ता में श्रोता पक्ष की संवादी प्रवृति की जिम्मेदारी वार्ताकार की ही होती है। दूसरी भाषा में अपनी वार्ता में वार्ताकार यह समझ ले कि श्रोता उसकी वार्ता के साथ अपनी मानसिकता को पकड़े हुए है और उसकी अभिव्यक्तियों के साथ श्रोताओं का भाव बोध जुड़ा होता है। अतएव रेडियो वार्ता लेखन में इन सब बातों का ध्यान रखा जाता हैं।

नाटक लेखन—नाटक को दृश्य काव्य की संज्ञा दी जाती है क्योंकि इसे अभियान द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। नाटक के पात्र, उसका कथोपकथन, उसके दृश्य, उसमें वर्णित घटना-स्थिति आदि सभी को रंगमंच पर रूपायित किया जा सकता है। नाटक में प्रभाविकता लाने के लिए उसमें यर्थाथ और कल्पना दोनों को शामिल किया जाता है, जिससे रंगमंच पर नाटक जीवंत लगता है। काव्यों में नाटक अत्यंत ही मनोरम, प्रभावोत्पादक एवं चित्ताकर्षक होता है। नाटक में साधारणीकरण की शक्ति सबसे ज्यादा होती है। एक आदर्श नाटक लेखक को नाटक लेख के समय इन सभी बातों का ध्यान रखना होता है।

रेडियो नाटक लेखन–रेडियो नाटक वह विधा है जिसमें संवादों, विविध प्रकार के संगीत तथा ध्वनियों की सहायता से रुचिपूर्ण, मनोरंजक और संवेदनाशीलता को प्रभावी तरीके प्रस्तुत किया जाता है। सामान्यरूप से किसी विषय का केवल वाणी को माध्यम बनाकर नाटकीय ढंग से प्रसारित कर पाना रेडियो नाटक कहलाता है। रेडियो नाटक हम देख नहीं सकते लेकिन सुनने से ही एहसास की दुनिया में आ जाते हैं। यह बात बहुत समझने की है जो केवल सुना जा सकता है और जो केवल सुनने से देखा जा सकता है उसमें वही सब कुछ नहीं उपलब्ध है जो दिखाया जा रहा है, लेकिन बहुत कुछ योगदान उस अदृश्य का है जो हमारी कल्पना में वर्तमान में है।

यह कल्पना, सुनकर मन की आँखें खोलती हैं, विचार या कल्पना का विस्तार किसी छोटे बड़े पर्दो पर नहीं होता बल्कि मंच सजता है मन में। आँखें बंद कीजिये उससे सजता है और उसके अनुभव की कोई सीमा नहीं है, कोई गतिरोध नहीं है। जहाँ जब जिस समय जिस जगह जाना चाहे, श्रोता जा सकता है, धरती पर, पानी में, आकाश पर, पाताल में जहाँ तक वह चाहे उड़ानें भरे। कहीं किसी दृष्टिगत दृश्य के लिये कैमरे की जरूरत नहीं है। जो कैमरे की आँखें नहीं देख सकती वह मन की आँखे देख लेती हैं। जितना विस्तार श्रोता के मन का होता है उतना ही विस्तार इस माध्यम का है। मन का विस्तार अपने-अपने तौर पर होता है। एक शब्द लें रात जो दृश्य टेलीविजन पर आपको कैमरा दिखायेगा आप वही देखेंगे। मंच रात लाइट के माध्यम से दिखाया जायेगी तो आप रात देखेंगे किन्तु रेडियो पर आप रात शब्द सुनते ही जैसी-जैसी रात देखी है या जो आपकी यादों में जुड़ी है आप वैसी ही रात अपनी कल्पना में बना लेंगे। यह जरूरी नहीं कि वह रात लेखक द्वारा सोची हुई रात हो। अतः श्रोताओं के मन का जैसा विस्तार होगा वैसा ही वह विस्तार ग्रहण करेगा इस माध्यम की यही सफलता या विवशता है। अतएव रेडियो नाटक लेखन में इन्हीं बातों को आवश्यक ध्यान में रखना चाहिए।

वृतचित्र अथवा डाक्यूमेंटरी लेखन–अंग्रेजी शब्दकोशों के अनुसार ''डाक्यूमेन्ट्री शब्द का संबंध डॉक्यूमेंट शब्द से है। डॉक्यूमेंट का कोशीय अर्थ होता है लेख का प्रमाण पत्र। इसके साथ डाक्यूमेन्ट्री के हिन्दी रूपान्तरण वृत्तचित्र के सम्बन्ध में कोश में वर्णन है शिलालेख, विशेष घटना या कार्य की जानकारी के लिए दिखाया जाने वाला सिनेमा चित्र (न्यूजरील)। डाक्यूमेन्ट्री

के उपर्युक्त शब्दकोशीय अर्थ देखने से ''डाक्यूमेन्ट्री'' एवं वृत्तचित्र शब्द में प्रथम बार कोई समानता नहीं दिखायी पड़ता, लेकिन जब गहनता से विश्लेषण किया जाता है तो इन दोनों अर्थों में एक तत्त्व में समान परिस्थिति होती है, वह है प्रमाण और सत्यता। ''डीड'' सरकारी स्वीकृति प्राप्त प्रामाणिक प्रपत्र है और ''न्यूज'' भी सत्यता और साबूत की माँग करती है। शिलालेख प्रचार के प्रामाणिक, ऐतिहासिक माध्यम होते हैं और घटना का घटित होना सत्यता पर प्रकाश डालता है। लेख में सत्य तथ्यों और प्रमाण की माँग करती है। अर्थात् उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जाये तो यह कहा जा सकता है कि डाक्यूमेन्ट्री वह विधा है जो कि किसी तथ्य सूचना, सत्य घटना व्यक्तित्त्व और परिस्थिति पर आधारित होती है जिसका उद्देश्य सच्चे अर्थों में मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा और सूचना प्रदान करना होता है। जब यह कार्य दृश्यों द्वारा जाता है। तो इस प्रक्रिया को फिल्म अथवा टेलीविजन डाक्यूमेन्ट्री कहते हैं और जब ध्वनि माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया जाये तो ध्वनि या रेडियो डाक्यूमेन्ट्री कहलाती है। ध्वनि या रेडियो डाक्यूमेन्ट्री रेडियो की विधा है, इसे रूपक में समाहित कर सकते हैं।

हिन्दी मीडिया लेखन हेतु भाषा दक्षता एवं अनुवाद कला

सम्पादक भाषा में निपुणता हासिल कर ही समाचार-पत्र व पत्रिकाओं का सम्पादन प्रभावशाली ढंग से कर सकता है। अतः सम्पादक को भाषा की सही-सही जानकारी होना परम जरूरी है। भाषा दक्षता से तात्पर्य यह है कि संचार माध्यमों की प्रस्तुति के अनुरूप किन परिस्थितियों में कैसी अभिव्यक्ति देनी है यह तय करके 'लक्ष्य' पाठकों की विचारधारा व सम्मति के अनुसार भाषा का स्वरूप प्रस्तुत करना।

समाचार-पत्र स्वयं भी भाषा का निर्माण करते हैं। नवीन घटनाओं के समाचारों में नित्य नए शब्दों का निर्माण आवश्यक हो जाता है। गूढ़ विषयों के समाचार भी सरल व बोधगम्य भाषा में देना, उसके लिए मार्ग निर्धारण करना, हिन्दी की मौलिकता का संरक्षण, वर्तनी की एकरूपता, शुद्ध व सटीक प्रयोग आदि भी भाषा-दक्षता के स्रोत हैं। सबसे महत्वपूर्ण इसमें यह है कि भाषा को संपूर्णता के साथ माध्यम की आवश्यकता का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत किया जाए। उपर्युक्त सभी अर्थों व लक्ष्यों को प्राप्त कर पाना ही 'भाषा दक्षता' है।

समाचार-पत्रों की भाषा

अगर देखा जाए तो समाचार-पत्र अपनी भाषा का निर्माण स्वयं करते हैं। समाचार, घटना व प्रस्तुति के सन्दर्भों को लेकर वे अपनी सहज प्रक्रिया को क्रियान्विति देते हैं।

समाचार की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। समाचार की अभिव्यक्ति किसी भी रूप में हो उसे अभिव्यक्ति करने का सबसे समर्थ और एकमात्र माध्यम भाषा है। अतः समाचारों की भाषा के प्रमुख रूप से दो अंग होते हैं : (i) वाक्य (ii) शब्द। शब्दों का वह समूह जिसका कोई अर्थ निकलता है 'वाक्य' कहलाता है। यूं तो बात को पूर्णता और सार्थक रूप देने के लिए कर्म, कारण, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि का प्रयोग आवश्यक होता है। वाक्य यथासम्भव छोटे और परिपूर्णता लिए होने चाहिए। इससे भाषा में सहजता आती है।

प्रत्येक शब्द का एक निर्धारित अर्थ होता है। कुछ शब्दों के एक से अधिक अर्थ भी होते हैं। प्रायः हर शब्द का एक मूल अर्थ होता है। जो प्रायः प्रचलित होता है और दूसरा अपेक्षाकृत अप्रचलित होता है। समाचार-पत्र में शब्दों के प्रयोग में उनके सामान्य अर्थ ही लिए जाने चाहिए। अधिक उक्ति-समत्कार व अलंकार से समाचार की प्रकृति में भ्रम पैदा होता है और समाचार-पत्र के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं है।

समाचार में विवरण किए जा रहे विषय की प्रकृति के अनुसार ही भाषा का इस्तेमाल उसे रुचिप्रद बनाता है। समाचार-पत्र में खेलकूद, वाणिज्य, व्यवसाय, शेयर-बाजार आदि के लिए अलग पृष्ठ निर्धारित होते हैं। इन पृष्ठों पर छपने वाली सामग्री में विशिष्ट प्रकार की शब्दावली का प्रयोग होता है। इसलिए समाज में उनके प्रचलित स्वरूप का इस्तेमाल करने से उनकी छाप अलग ही पड़ती है।

विषय के अनुसार भी समाचार की भाषा में अन्तर रहता है। स्थान व प्रकृति के अनुसार भी समाचार विशिष्टता लिए होते हैं। कम शब्दों में अधिकाधिक भाव-सम्प्रेषण के लिए स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया जाता है। समाचार-पत्र भाषा-विकास के साधन भी हैं। समाचार-पत्रों की शब्दावली में शब्द प्रयोग होकर एक व्यापक अर्थ प्राप्त कर लेता है। समाचार-पत्र के लिए कोई भी शब्द अग्राह्य नहीं है। यदि शब्द के प्रयोग से बात अधिक स्पष्ट व ग्राह्य हो जाती हो तो उसे प्रयोग करना हितकर है।

आकाशवाणी की भाषा

आकाशवाणी आम आदमी का माध्यम है। उसके कार्यक्रमों में सार्थकता तभी आ सकती है जबकि उसके प्रयोग में लाई जा रही भाषा सरल हो। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन की गतिविधियों से आकाशवाणी का जुड़ाव अत्यन्त व्यापक रहा है। वैसे भी आकाशवाणी भारत के राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है। सूचना, शिक्षा, मनोरंजन की त्रिवेणी को यह व्यापक स्वरूप में आगे बढ़ा रही है।

रेडियो 'स्पोकन मीडियम' (Spoken Medium) है। सारा का सारा सम्प्रेषण इसमें शब्दों की सहायता से किया जाता है। इस माध्यम की खूबी यह है कि यह सहज में उपलब्ध है और साधारण आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में भी यह आसानी से मिल जाता है।

'स्पोकन मीडियम' होने के कारण इसका सारा खेल उच्चारित शब्दों पर ही निर्भर होता है। उच्चारित होने वाले शब्द केवल एक बार ही सुने जाते हैं यदि उसका कोई अंश समझ में नहीं आया तो वह अधूरा ही रहता है उसे समाचार-पत्र की तरह पिछले सन्दर्भों से या डिक्शनरी, सन्दर्भ कोश आदि के माध्यम से नहीं समझा जा सकता है। इसीलिए 'रेडियो' भाषा की पहली व बुनियादी आवश्यकता है 'सरलता।' यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। निरन्तर बढ़ती शिक्षा, वैज्ञानिक संसाधन व सामाजिक विकास से लोगों की समझ व व्याप्ति का दायरा भी बढ़ रहा है। उसी के अनुरूप आकाशवाणी कार्यक्रमों की भाषा रखने का यत्न किया जाता है। साथ ही शब्दों के उच्चारण में स्पष्टता, सहजता, मधुरता का ध्यान रखा जाता है। शब्द चयन में यह ध्यान रखा जाता है कि उसकी सम्प्रेषणीयता में कोई भ्रम या नकारात्मकता न निकले। दुरूह शब्दों के प्रयोग से बचा जाता है। भाषा के प्रचलित रूप का इस्तेमाल करने से उसकी अर्थ-व्यंजना में बाधा नहीं पहुंचती।

आकाशवाणी प्रसारण में वाक्यों की संरचना का भी महत्वपूर्ण योगदान है। वाक्य छोटे व सरल हों। उनका अर्थ सहज ही निकले। उच्चारण को ध्यान में रखकर लिखे गए वाक्य, उच्चारण-दोष के कारण श्रोताओं को भ्रम की स्थिति में डालते हैं। कठिन शब्दों का उच्चारण करते हुए वाचक को कठिनाई होती है व कई बार उसे अटकना भी पड़ता है। ऐसे में न केवल कार्यक्रम में व्यवधान होता है बल्कि तारतम्यता भी भंग होती है। अतः ऐसे शब्दों के प्रयोग से यथासम्भव बचा जाना चाहिए।

टेलीविजन की भाषा

टेलीविजन भी संचार माध्यम के अन्तर्गत आता है। यह संचार माध्यम का विकसित रूप है। वर्तमान समय में इसकी लोकप्रियता काफी बढ़ गई है। क्योंकि यह किसी विषय-वस्तु को चित्र के रूप में प्रस्तुत करता है। दूरदर्शन कार्यक्रमों में भाषा से जुड़ा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वहां भाषा के साथ चित्र भी प्रदर्शित होते हैं। इससे दर्शकों को कार्यक्रम की प्रभाविता अधिक लगती है।

किन्तु इस दृश्य माध्यम में भाषा और भी अधिक सरल व सुबोध बनाने की आवश्यकता है। वाक्य बहुत छोटे हों, चूंकि दर्शक चित्र के साथ भाषा सुनता है। ऐसे में उसका आधा ध्यान चित्र व आधा ध्वनि पर होता है। यदि भाषा दुरूह होगी तो वह सही अर्थ-प्रवाह ग्रहण करने से चूक जाएगा। वर्तमान में दूरदर्शन ने अपने दर्शक-वर्ग को दृष्टिगत रखते हुए हिन्दी-अंग्रेजी की खिचड़ी भाषा को ज्यादा प्राथमिकता दे दी है।

आकाशवाणी पर लागू अन्य भाषा-सम्बन्धी प्रावधान दूरदर्शन पर भी लागू होते हैं। पर मूलत: दूरदर्शन सजीव दृश्य दिखा रहा है अत: सहूलियत यह है कि उसका विवरण पक्ष एकदम छोटा होता है। ताजमहल पर कार्यक्रम में दूरदर्शन का कैमरा पूरे ताजमहल की खूबसूरती को दर्शकों तक पहुंचाता रहेगा और सिर्फ एक छोटे से वाक्य 'शिल्प की अद्‌भुत रचना है ताजमहल' कहने से पूरा शाब्दिक विवरण प्राप्त हो जाएगा।

विज्ञापन की भाषा

वर्तमान युग विज्ञापन का युग है ऐसा लगता है कि जैसे हम विज्ञापन की दुनिया में जी रहे हैं। चैतन्य रूप में हम जिस ओर भी दृष्टि डालते हैं एक विज्ञापन हमारे समक्ष मुंह बाएं खड़ा होता है। विज्ञापन जैसी छोटी सी चीज इतनी प्रभावी होती है कि हम अनायास ही उसकी 'कथ्य-शक्ति' में खो जाते हैं।

विज्ञापन की भाषा में चार तत्त्वों का प्रमुखता से प्रयोग होता है–

1. निश्चय
2. आज्ञा
3. प्रश्न
4. विस्मय।

निश्चय अर्थ वृत्ति के विज्ञापन विज्ञापित सामग्री की विशेषताओं की जानकारी देते हैं : 'हॉर्लिक्स परिवार का महान पुष्टिदाता है।'

आज्ञा अर्थ वृत्ति के वाक्यों में विज्ञापित सामग्री को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है : टी वी एस मोटर साइकिल में : 'रगड़ों मगर स्टाइल से'।,

प्रश्न वृत्ति में वाक्य ध्यान खींचते हैं तथा संदेश को बलपूर्वक प्रेषित करते हैं जैसे:

'आप नए लाइफबॉय से नहाए हो क्या?'

'विस्मय' अर्थ वृत्ति वाले वाक्य श्रोता को अपना उद्‌बोधन विस्मय स्वरूप में देते हैं और उसका ध्यान बरबस ही आकृष्ट करते हैं :

'सफेदी चौंकाए, दाम बजट में समाए।'

इनके अतिरिक्त विज्ञापनों में भाषा, वाक्य, व्याकरण, विशेषण, क्रियाविशेषण, शब्दवर्ग, मिश्रिय वाक्य विन्यास आदि के द्वारा भी विज्ञापनों की भाषा के रचनात्मक प्रभाव उत्पन्न किए जाते हैं। अलंकारों, अनुप्रास, मुहावरों, कहावतों आदि के रोचक प्रयोग द्वारा भी विज्ञापनों की भाषा को ऐसा बनाया जाता है कि वह अनायास ही लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करे।

अनुवाद

पत्र-पत्रिकाओं में खबरों को तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। इन खबरों के लिए अनेक बार भाषाओं की प्रकृति, संरचना और सामाजिक सन्दर्भो में भिन्नता होने के कारण जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है उसमें समानार्थी अभिव्यक्ति की तलाश में कठिनाइयां आती हैं। इसमें कहीं अर्थ-विस्तार हो जाता है तो कहीं अर्थ-संकोच। समाचारों में तथ्य और जानकारी की प्रधानता होती है। इसलिए इनके अनुवाद में नाटक या कहानी की तरह शैली सुरक्षित रखी जा सके ऐसा नहीं होता। अच्छे अनुवाद के लिए घटना-प्रवाह की जानकारी के साथ मूल व लक्ष्य भाषा की असमानताओं का ज्ञान भी आवश्यक है। समाचार माध्यमों से अपेक्षा की जाती है कि उनके समाचार ग्राह्य हों।

किसी भी भाषा के व्याकरण की तरह समाचार की एक प्रक्रिया और व्याकरण होता है। अनुवाद में यह समस्या आती है कि किस प्रकार मूल आत्मा की रक्षा करते हुए अनुवाद को व्यवहार में लाया जाए। प्राय: इस तत्त्व की अनुपस्थिति के कारण अप्राणयुक्त और फीके अनुवाद से हमारा सामना होता है।

अनुवाद की प्रक्रिया प्रायः निम्नलिखित स्वरूप में चलती है–

स्रोत सामग्री	अनुवाद
आकलन/ विश्लेषण	पुनः रचना

अंतरण

लक्ष्य भाषा के प्रतीक शब्दों, वाक्यांशों, मुहावरों आदि का चयन में कितनी ही सटीकता अपनायी जाए किन्तु निकटतम अनुवाद ही सम्भव हो पाता है। सम्पूर्ण आत्मायुक्त अभिव्यक्ति के लिए बहुत सी सीमाएं हैं।

स्तरीय अनुवाद शिल्प की तरह है। मूल को मन में आत्मसात करके अनुवादक पाठ–सामग्री को इंगित भाषा में ढालता है। दो व्यक्ति यदि एक ही टेक्स्ट (Text) का अनुवाद करें तो उनके अनुवाद में भिन्नता होगी।

अनुवादक का उत्तरदायित्व

किसी विषय–वस्तु का अनुवाद करते समय अनुवादक को भारी अत्यन्त सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि अनुवादक की थोड़ी सी भूल तिल का ताड़ बना सकती है। अतः अनुवादक को अनुवाद करते समय अपने विवेक का अधिक सहारा लेना चाहिए क्योंकि अपने विवेक के आधार पर ही वह अनुवाद की पद्धति, तकनीक, प्रणाली का निर्धारण कर सकेगा। उसे अनुवाद करते समय टार्गेट आडियेंस (Target Audience) का भी ध्यान रखना होगा।

विज्ञान एंव विधि के अनुवाद में व सतर्क होकर शब्दशः अनुवाद की ओर प्रवृत्त होगा। यदि सामान्य रिपोर्ट एवं भाषण है तो सहज रूप के अनुवाद भी सार्थक सिद्ध होगा। समाचार, घटनाओं के अनुवाद में संक्षेपण भी चल सकता है। साहित्यिक कृति के अनुवाद में उसकी मूल भावना व आत्मा को बनाए रखना आवश्यक होता है। विषय एवं प्रस्तुति किसके लिए की जाए उस परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए सारानुवाद करे। साथ ही यह उसका उत्तरदायित्व बनता है कि विषय की प्रकृति के अनुरूप शब्दावली व शैली का प्रयोग करे। उदाहरणार्थ विज्ञान व तकनीकी विषय वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों की मांग करते हैं। साहित्यिक विषयों के लिए अनुवाद भी साहित्यिक परिप्रेक्ष्यों की मांग रखते हैं।

सटीक कार्यवाही के लिए अनुवादक शब्दकोश, विश्वकोश, सन्दर्भ कोश आदि के प्रयोग के साथ विवेकपूर्ण कार्यवाही कर अनुवादक के उत्तरदायित्व का वहन कर सकता है।

साहित्यिक अनुवाद

साहित्यिक शब्दों में साधारण शब्दों की अपेक्षा अधिक अर्थवत्ता होती है। यह अर्थ बेहतर वाक्य-विन्यास, छन्दों के कौशल, ऐतिहासिक ज्ञान व व्यक्तिगत अनुभव से पनपता है। कोई भी लेखक विशिष्ट भावनाओं व लाक्षणिकता को लेकर लिखता है। साथ ही उसके लेखन में उस युग की धड़कन भी विद्यमान रहती है।

एक भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा में लिख देने मात्र से ही अनुवाद नहीं हो जाता है। साहित्यिक अनुवाद एक कठिन प्रक्रिया है। भाषा का भाव, सहजता, गति, लक्ष्य यदि अनुवाद में अक्षुण्ण रहे तो ही साहित्यिक अनुवाद की सार्थकता है, अन्यथा अनुवाद प्राण-रहित ही रहेगा।

सृजनकर्ता साहित्य में अभिधा से अधिक व्यंजना की भूमिका होती है। जहां शब्द के अधिक भाव महत्वपूर्ण होता है। यदि अनुवादक की अनुभूति सूक्ष्म है व उसकी अभिव्यक्ति समर्थ है तो वह साहित्यिक अनुवाद में सफल हो सकता है। अनुवाद में वही सजीवता, वही भाव व्यंजना होना अनुवाद ही पहली प्राथमिकता है। विश्व के महान साहित्य की यह विशेषता रही है कि भले ही उसकी भाषा सांकेतिक रही हो पर उसमें सरसता का भाव व्याप्त रहता है।

साहित्यिक अनुवाद में सीमित के द्वारा असीम को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता जिस अनुवाद में रहती है वही जीवन अनुवाद का पर्याय बन जाती है। संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं का आधार साहित्यिक अनुवाद की कसौटी होता है:

(1) विवेक-भावना व युक्ति का ध्यान रखा जाना चाहिए।
(2) साहित्यिक कृतियों का परिवेश, भावना व व्यंजना कालजयी व समाज-साक्षेप होती है। अत: उस पक्ष का विशेष ध्यान रखा जाए।
(3) विषय की प्रकृति व स्वभाव के अनुसार न्याय किया जाए।
(4) मूल भावना का वर्णन अनुवाद में यथावत् रहे।
(5) अनुवादक के मूल व लक्ष्य दोनों भाषाओं में पारंगत होना चाहिए।

सरकारी अनुवाद

सरकार की रीति-नीति, प्रशासन के कार्य, विभिन्न स्तरों पर प्रशासन व जनता का आपसी व्यवहार, दैनिक जीवन व समाज की विभिन्न सरकारी प्रक्रियाओं के लिए 'अनुवाद' की आवश्यकता महसूस की जाती है।

भारत की स्वतन्त्रता के बाद देश की राजभाषा 'हिन्दी' घोषित की गई। सरकारी क्षेत्रों में अनुवाद की दृष्टि से इसे दो भागों में बांटा जा सकता है : (i) प्रशासनिक कार्यों में अनुवाद (ii) विधि सम्बन्धी कार्यों में अनुवाद।

प्रशासनिक अनुवाद करते समय अनुवादक को अग्रलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना परम जरूरी है–

(1) पत्र व्यवहार, शब्दावली व प्रयुक्तियों में जहां अंग्रेजी मुहावरों व तरीकों का प्रयोग हो वहां हिन्दी अनुवाद में समाज प्रकृति व सन्दर्भ उपयुक्त रूप में अपना लेने चाहिए।

(2) अंग्रेजी शब्दों के पर्याय हिन्दी में करते हुए दोनों भाषाओं में अन्य शब्द व्युत्पत्ति का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(3) अनुवाद की भाषा विशेष रूप से सरल हो ताकि जनसामान्य उन प्रक्रियाओं का उपयोग करते समय परेशानी में न पड़े।

(4) ध्यान रखा जाना चाहिए कि अंग्रेजी व हिन्दी के वाक्य-विन्यास की प्रकृति में अन्तर है। अतः अनुवाद में भाषा की प्रकृति को बनाए रखें।

संचार-माध्यमों हेतु अनुवाद

संचार माध्यम देश की धड़कन हैं। समाज के व्यक्तियों के बीच आपसी व्यवहार और कार्यकलापों में इनका इस्तेमाल किया जाता है। इन माध्यमों हेतु अनुवाद के मुख्य बिन्दु हैं–

(1) संचार माध्यम समाज में क्रान्तिकारी भूमिका निभाते हैं। अतः अनुवाद में धर्म-जाति-वर्ग पर आधारित नकारात्मकताएं न हों।

(2) संचार माध्यमों के अनुवाद में दृष्टिकोण प्रगतिगामी व वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यों से युक्त हो।

(3) अनुवाद में माध्यम की स्थिति, उसका व्यवहार व प्रयोग ध्यान रखे।

(4) संचार माध्यम छोटे से तबके से लेकर उच्च-वर्ग तक का व्यक्ति इस्तेमाल करता है अतः अनुवाद का दायरा व्यापक हो।

(5) दूरदर्शन-आकाशवाणी जैसे माध्यमों में भाषा-विचार का प्रस्तुति सहज सरल हो ताकि 'टार्गेट ऑडियेंस' उससे लाभान्वित हो।

❐❐❐